मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड सं. 495–499

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आईएसओ 9001: 2008 प्रमाणित

(मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान)

ए–24/25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62, नोएडा–201309 (उ.प्र.)

मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम
पाठ्यक्रम कोड 495-499

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए–24–25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62, नोएडा–201309 (उ.प्र.)

सलाहकार समिति

अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश

निदेशक (व्या. शिक्षा)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश

पाठ्यचर्या समिति

श्रीमती सरिता शर्मा
पाठ्यचर्या समिति अध्यक्ष
निदेशक, योगसरिता
एशियाड विलेज, नई दिल्ली

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज
योग विभागाध्यक्ष, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

प्रोफेसर सुरेशलाल बरनवाल
योग विभागाध्यक्ष, देवसंस्कृति
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

योगाचार्य कुन्दन कुमार
पाठ्यक्रम निदेशक, योग संभाग
भारतीय विद्याभवन, नई दिल्ली

प्रोफेसर जी.डी. शर्मा
योग विभागाध्यक्ष, पतंजलि
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. लक्ष्मी नारायण जोशी
योग विभागाध्यक्ष, उत्तराखण्ड संस्कृत
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

श्रीमती सीमा सिंह, योगाचार्या
इंटीग्रल योग केन्द्र, वैशाली
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. एस.के. त्यागी, सहा. प्रोफेसर
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

श्री विवेक योगी, योगाचार्य
इंटरनेशनल विश्वगुरु मेडीटेशन एवं
योग संस्थान, ऋषिकेश, उत्तराखंड

पाठ्यक्रम समिति

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, पाठ्यक्रम समिति अध्यक्ष
योग विभागाध्यक्ष, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

लेखन दल

डॉ. ऊधम सिंह (सहा. प्रोफेसर)
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

योगाचार्य कुन्दन कुमार
पाठ्यक्रम निदेशक, योग संभाग
भारतीय विद्याभवन, नई दिल्ली

श्रीमती रेखा शर्मा
योग शिक्षक, योग संभाग
भारतीय विद्याभवन, नई दिल्ली

डॉ. पवन कुमार चौहान
व.का. अधिकारी, व्या.शि.वि.
रा.मु.वि.शि. संस्थान, नोएडा, उत्तर प्रदेश

सहायक सदस्य

डॉ. तबस्सुम
प्राकृतिक चिकित्सक, योग एवं
प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, मुम्बई

श्रीमती प्रगति सक्सेना
रिसर्च स्कॉलर (योग)
जैन विश्वभारतीय, विश्वविद्यलय लाडनूं

संपादन

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज
योग विभागाध्यक्ष
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. राजीव रस्तोगी
स. निदेशक, केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक
चिकित्सा अनुसंधान परिषद,
आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

प्रोफेसर सुरेशलाल बरनवाल
योग विभागाध्यक्ष, देवसंस्कृति
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

योगाचार्य कुन्दन कुमार
पाठ्यक्रम निदेशक, योग संभाग
भारतीय विद्याभवन, नई दिल्ली

प्रोफेसर जी.डी. शर्मा
योग विभागाध्यक्ष, पतंजलि विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. ऊधम सिंह (सहा. प्रोफेसर)
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. पवन कुमार चौहान
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी, व्या. शि.वि.
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उ.प्र.)

ग्राफिक्स/पिक्चर तथा अन्य सहयोग

श्री पवन कुमार, रिसर्च स्कॉलर (योग)
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड
श्री गणेश प्रसाद, रिसर्च स्कॉलर (योग)
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड
श्री विवेक योगी, योग शिक्षक
इंटरनेशनल विश्वगुरु मेडीटेशन एवं योग संस्थान, ऋषिकेश, उत्तराखंड

लेज़र कम्पोजर

टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर्स, सी–206, शाहीन बाग, जामिया नगर, नई दिल्ली–110025

मन की बात...

प्रिय शिक्षार्थियो

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के व्यावसायिक पाठ्यक्रम – 'योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम' में आपका स्वागत है।

'योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम' योग विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम है। जो लोग योग के क्षेत्र में रुचि रखते हैं, इसमें कार्य कर रहे हैं या 'योग शिक्षक' बनने के इच्छुक हैं उन सभी लोगों को ध्यान में रखते हुए इस पाठ्यक्रम को विकसित किया गया है। यह पाठ्यक्रम यौगिक अभ्यास और योग शिक्षा का ज्ञान प्रदान करता है। भारतीय नागरिकों के साथ–साथ विदेशी नागरिक भी इस पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग का बहुत महत्व है। प्राचीनकाल से ही योग हमारी जीवन शैली के अंग के रूप में समाहित रहा है। योग स्वस्थ जीवन जीने की कला है जो मन व शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। योग अनुशासन का विज्ञान है जो शरीर, मन तथा आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास कर व्यक्तित्व का निर्माण करता है। आज योग सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। स्वस्थ एवं चुस्त–दुरुस्त रहने की दृष्टि से भी योग शिक्षा की समाज में विशेष रूप से मांग है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में, शिक्षार्थियों को योग में प्रशिक्षित करना है। योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के सफल शिक्षार्थी यौगिक संस्थानों, योग प्रशिक्षण केंद्रों, स्वास्थ्य क्लबों, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सालयों, विभिन्न विद्यालयों–महाविद्यालयों, कॉर्पोरेट सेक्टर आदि में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस समारोह के दौरान 21 जून 2016 को माननीय राज्यमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार श्री उपेंद्र कुशवाहा जी एवं एनआईओएस अध्यक्ष, प्रोफेसर चन्द्र भूषण शर्मा ने कई योग कार्यक्रमों को विकसित करने घोषणा की। इन योग के प्रोफेशनल पाठ्यक्रमों में से सबसे पहले एनआईओएस अध्यक्ष जी के मार्ग–दर्शन में, 'योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम' विकसित किया गया। इस पाठ्यक्रम विकास में विशेष सहयोगी रहे प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, योग विभागाध्यक्ष, गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डॉ. राजीव रस्तोगी, स. निदेशक, केंद्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली एवं श्रीमती सरिता शर्मा, निदेशक, योग सरिता संस्थान, दिल्ली का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, तथा गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, पतंजलि विश्वविद्यालय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, भारतीय विद्या भवन, दिल्ली आदि से सहयोगी रहे अन्य विशेषज्ञों का भी मैं, आभार प्रकट करता हूँ, जिनके अतुलनीय सहयोग से यह पाठ्यक्रम विकसित हो सका।

यह जानकारी देते हुए मुझे विशेष हर्ष हो रहा है कि इस पाठ्यक्रम का प्रारम्भ जनवरी 2018 से होने जा रहा है जिसके माध्यम से तैयार हुए योग शिक्षक, राष्ट्रीय स्तर पर एक निश्चित योग पाठ्यचर्या के अनुसार योग सिखा सकेंगे।

पाठ्यक्रम का संचालन दो प्रकार से किया गया है – एक माह का आवासीय पाठ्यक्रम और एक वर्षीय विस्तारित (ओपन) पाठ्यक्रम। दोनों ही प्रकार की स्थितियों में न्यूनतम संपर्क घंटे 240 घंटे रहेंगे। उक्त पाठ्यक्रम में कुल पांच पेपर हैं जिसमें सिद्धांत (थ्योरी) के तीन (योग दर्शनशास्त्र और क्रियाविज्ञान, मानव शरीर, आहार और शुद्धि, व्यावहारिक योग विज्ञान) और व्यावहारिक प्रशिक्षण के दो (व्यावहारिक योग प्रशिक्षण एवं योग शिक्षण कौशल) पेपर शामिल हैं।

सम्पूर्ण स्व–अनुदेशात्मक अध्ययन सामग्री में शिक्षार्थी सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाया गया है। प्रत्येक पाठ सरल व सुव्यवस्थित ढंग से तैयार किया गया है। शिक्षार्थी की पाठ्–संबंधी समझ का विश्लेषण करने के लिए प्रत्येक पाठ में पाठगत प्रश्नों को शामिल किया गया है साथ ही कक्षा के बाहर का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी गतिविधियां शामिल की गई हैं।

उक्त पाठ्यक्रम के संबंध में, आपके महत्वपूर्ण सुझावों का हम स्वागत करेंगे। यदि कोई संदेह अथवा समस्या है तो आप निःसंकोच हमें लिख सकते हैं।

हमें आशा है कि यह कार्यक्रम आपके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा और आपके कैरियर को सही दिशा प्रदान करेगा। हम आपके सफल और उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं।

शुभकामनाओं सहित,

कार्यक्रम समन्वयक और समिति
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम

पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम योग विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम है। जो लोग योग के क्षेत्र में रुचि रखते हैं, इसमें कार्य कर रहे हैं या योग शिक्षक बनने के इच्छुक हैं उन सभी लोगों को ध्यान में रखते हुए इस पाठ्यक्रम को विकसित किया गया है। भारतीय नागरिकों के साथ–साथ विदेशी नागरिक भी इस पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग का बहुत महत्व है। प्राचीनकाल से ही योग भारतीय जीवन शैली के अंग के रूप में समाहित रहा है। योग स्वस्थ जीवन जीने की एक कला है जो मन एवं शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। योग अनुशासन का विज्ञान है जो शरीर, मन तथा आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास कर व्यक्तित्व का निर्माण करता है। आज स्वस्थ एवं चुस्त–दुरुस्त रहने की दृष्टि से समाज में योग शिक्षा की विशेषरूप से मांग है।

उद्देश्य :

इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में, शिक्षार्थियों को योग में प्रशिक्षित करना है। उक्त पाठ्यक्रम को पूरा करने के पश्चात, प्रशिक्षु सक्षम होंगे –

- मानव शरीर विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान की मूलभूत जानकारी हासिल करने में;
- योग सिद्धांतों तथा योग क्रिया विज्ञान को समझा पाने में;
- स्वास्थ्य, स्वच्छता, आहार और यौगिक संस्कृति की अवधारणाओं को जानने और इन पर प्रकाश डालने में;
- योग के एकीकृत दृष्टिकोण के अनुप्रयोगों को लागू करने में;
- योग कक्षाएं संचालित करने में;
- शिक्षार्थियों को योग शिक्षा देने में।

रोजगार के अवसरः

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के सफल शिक्षार्थी यौगिक संस्थानों, योग प्रशिक्षण केंद्रों, स्वास्थ्य क्लबों, योग और प्राकृतिक चिकित्सालयों, विभिन्न विद्यालयों–महाविद्यालयों, कॉर्पोरेट सेक्टर आदि में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं।

प्रवेश योग्यता :

- शैक्षिक योग्यता : किसी भी मान्यता प्राप्त शिक्षा बोर्ड /विश्वविद्यालय से 12 वीं कक्षा पास या समकक्ष
- न्यूनतम उम्रः प्रवेश के समय उम्र 18 वर्ष या ऊपर

लक्ष्य समूहः

सभी भारतीय और विदेशी नागरिक, जो लोग पात्रता की शर्तें पूरी करते हों।

पाठ्यक्रम अवधि

पाठ्यक्रम का संचालन दो प्रकार से हैः

- **एक माह का आवासीय पाठ्यक्रम :** आवासीय पाठ्यक्रम दौरान शिक्षार्थी को अपने प्रशिक्षण केन्द्र पर एक महीने के लिए रहना अनिवार्य होगा।
- **एक वर्षीय ओपन पाठ्यक्रम :** एक वर्षीय ओपन पाठ्यक्रम में 10–10 दिन की तीन कार्यशालाएं होंगी जिनमें अनिवार्यरूप से शिक्षार्थी को कार्यशालाओं में भाग लेना होगा। शेष वर्ष भर में, सप्ताह के दौरान दो दिन की कक्षा, केन्द्र द्वारा आयोजित की जाएगी, जिसमें शिक्षार्थी सुविधानुसार भाग ले सकते हैं।

(दोनों प्रकार की स्थितियों में न्यूनतम संपर्क घंटे समान अर्थात् 240 घंटे ही रहेंगे)

अध्ययन योजनाः

- सिद्धांत – 30%
- प्रशिक्षण – 50%
- शिक्षार्थी पोर्टफोलियो – 20%

अनुदेशात्मक योजना :

- स्व–निर्देशित मुद्रित सामग्री
- एवीआई/व्या. अध्ययन केन्द्रों पर सम्पर्क कक्षाओं तथा व्यावहारिक–प्रशिक्षण की सुविधाएं
- श्रव्य–दृश्य सामग्री

पाठ्यचर्या :

पाठ्यक्रम में कुल पांच पेपर हैं जिसमें सिद्धांत (थ्योरी) के तीन और व्यावहारिक प्रशिक्षण के दो पेपर शामिल हैं।

- **सिद्धांत के तीन पेपरः**
  1. योग दर्शनशास्त्र और क्रिया विज्ञान
  2. मानव शरीर, आहार और शारीरिक शुद्धि
  3. व्यावहारिक योग विज्ञान

- **व्यावहारिक प्रशिक्षण के दो पेपरः**

  4. प्रायोगिक योग प्रशिक्षण (योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि)
  5. योग शिक्षण कौशल (माइक्रो/मैक्रो–टीचिंग)

मॉडयूल –1: योग दर्शन शास्त्र और क्रिया विज्ञान

1. **योग और योगिक ग्रंथ**

   - योग – मूल परिचय
   - अर्थ और परिभाषा
   - योग दर्शन (योग के दर्शनशास्त्र का परिचय)
   - यौगिक शरीर विज्ञान (योगिक ग्रंथों) की अवधारणा
   - योग के विभिन्न पथ : ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, अष्टांग योग और हठ योग

2. **अष्टांग योग**

   - यम
   - नियम
   - आसन
   - प्राणायाम
   - प्रत्याहार
   - धारणा
   - ध्यान
   - समाधि

3. **यौगिक संस्कृति और मूल्य शिक्षा**

   - यौगिक संस्कृति – चार पुरुषार्थ : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
   - चार आश्रमः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास
   - चार सिद्धांतः विवेक, वैराग्य, षट संम्पती, और मुमुक्षुत्व
   - नैतिक मूल्य
   - आधुनिक जीवन के संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों की प्रासंगिकता

मॉडयूल –2: मानव शरीर, आहार और शुद्धि

4. **मानव शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान**

- मानव शरीर रचना विज्ञान और फिजियोलॉजी का परिचय
- कोशिकाओं और ऊतकों
- अंगों और शरीर में उनकी स्थिति
- मानव शरीर की प्रणालियों का परिचय

5. **यौगिक आहार**

- भोजन, इसकी आवश्यकता और महत्व
- आहार की यौगिक अवधारणा – सात्विक, राजसिक, तामसिक और मिताहार (अमृत भोजन)
- अम्लीय और क्षारीय खाद्य पदार्थ (20:80 अनुपात)
- आयु, रोग, मौसम और समय के अनुसार यौगिक आहार
- चिकित्सा के रूप में खाद्य पदार्थ और विभिन्न बीमारियों के उपचार में भोजन का महत्व।

6. **षट्कर्म (शरीर शुद्धि)**

- धौति
- बस्ती
- नेति
- नौली
- त्राटक
- कपालभाती

मॉडयूल –3 : व्यावहारिक योग विज्ञान

7. **सूक्ष्म व्यायाम (क्रियाएँ)**

- यौगिक अभ्यास के लिए तैयारी और सावधानियां
- पवनमुक्त आसन सीरीज (1–3)
- नेत्र अभ्यास
- विश्रामात्मक आसन
- ध्यानात्मक आसन

8. **योग आसन**
    - योग आसन
    - अभ्यास से पूर्व तैयारी और सावधानियाँ
    - सूर्य नमस्कार
    - विभिन्न योग आसन
9. **प्राणायाम और ध्यान साधना**
    - प्राणायाम
    - अभ्यास से पूर्व तैयारी और सावधानियाँ
    - मुद्रा और बंध
    - ध्यान
    - योग निद्रा
10. **स्वास्थ्य संवर्धन के लिए योग (सभी के लिए योग)**
    - बच्चों के लिए योग
    - किशोरावस्था के लिए योग
    - युवाओं के लिए योग
    - महिलाओं के लिए योग
    - बुजुर्गों के लिए योग

मॉडयूल – 4 : प्रायोगिक योग प्रशिक्षण

1. षटकर्म
2. सूक्ष्म व्यायाम (सूक्ष्म क्रिया)
3. योग आसन
4. सूर्य नमस्कार
5. प्राणायाम
6. बंध
7. मुद्रा
8. ध्यान
9. योग निद्रा

10. मंत्र चिंतन
11. स्वास्थ्य संवर्धन के लिए योग
12. योग केंद्र की विजिट

मॉडयूल – 5 : योग शिक्षण कौशल (माइक्रो/मैक्रो–टीचिंग) और अभ्यास

1. प्रदर्शन के सिद्धांत और शिक्षण
2. अवलोकन, सहायता और सुधार करना
3. निर्देश, शिक्षण शैलियों, शिक्षकों के गुण
4. आवाज प्रक्षेपण, शिक्षार्थियों की प्रगति पर प्रोत्साहन, देखभाल और मार्गदर्शन
5. कक्षा की योजना और संरचना को सीखने की शिक्षार्थियों की प्रक्रिया
6. संरेखण और हाथों से समायोजन
7. सुरक्षा सावधानी
8. योग की जीवन शैली और योग शिक्षक की नैतिकता
9. योग शिक्षण अध्यापन योग शिक्षण

निर्देश का माध्यमः हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत

प्रवेश प्रक्रिया

- प्रॉस्पेक्टस के साथ उपलब्ध आवेदन पत्र, जिसे एनआईओएस या इसके प्रशिक्षण केंद्र या एनआईओएस वेबसाइट www.nios.ac.in से प्राप्त किया जा सकता है।
- शिक्षार्थी प्रशिक्षण केंद्र में वर्ष भर में अपना आवेदन पत्र जमा कर सकते हैं या ऑनलाइन प्रवेश ले सकते हैं।
- प्रवेश पांच साल के लिए मान्य होगा।

पाठ्यक्रम शुल्क :

पाठ्यक्रम का शुल्क 10,000 रुपये है, जिसमें प्रवेश, पाठयसामग्री, और प्रथम बार का परीक्षा शुल्क भी सम्मिलित है। विदेशी नागरिकों के लिए यह शुल्क 500 डॉलर है।

व्यावसायिक अध्ययन केंद्र आवासीय व्यवस्था, भोजन और अन्य विविध सुविधाओं के लिए, यदि चाहे तो सीमित शुल्क, सुविधा अनुसार अलग से ले सकते हैं।

मूल्यांकन और प्रमाणन के लिए योजना :

परीक्षा में बैठने के लिए, परीक्षार्थी परीक्षा हेतु निर्धारित आवेदन पत्र पर आवेदन करेंगे। पाठ्यक्रम के दोनों घटकों (सिद्धांत और व्यावहारिक) का मूल्यांकन किया जाएगा। उत्तीर्ण शिक्षार्थियों को एनआईओएस अंतिम प्रमाणपत्र प्रदान करेगा।

क्र. सं.	योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के पेपर	कोर्स कोड	अधिकतम अंक व समयकुल		अंक
			अधिकतम अंक	समय (घंटे में)	
1	योग दर्शन शास्त्र और क्रिया विज्ञान	495	50	3	50
2	मानव शरीर, आहार और शुद्धि	496	50	3	50
3	व्यावहारिक योग विज्ञान	497	50	3	50
4	प्रायोगिक योग प्रशिक्षण (योगासन. प्राणायाम, ध्यान साधना आदि)	498	150+ 50	5	200
5	योग शिक्षण कौशल (माइक्रो / मैक्रो– टीचिंग) और अभ्यास	499	100+ 50	3	150
	महायोग =				500

उत्तीर्णता मापदंड : सिद्धान्त और व्यावहारिक दोनों ही घटकों में परीक्षार्थी को अलग–अलग 50% अंक प्राप्त करने होंगे।

विषय सूची

यूनिट सं.	यनिट का नाम	पृष्ठ सं.
	योग दर्शन शास्त्र और क्रिया विज्ञान	
1.	योग और यौगिक ग्रंथ	1
2.	अष्टांग योग	17
3.	यौगिक संस्कृति (नैतिक शिक्षा)	33
	मानव शरीर, आहार और शारीरिक शुद्धि	
4.	मानव शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान	57
5.	यौगिक आहार	87
6.	षट्कर्म	99
	व्यावहारिक योग विज्ञान	
7.	यौगिक सूक्ष्म व्यायाम	117
8.	योग आसन	155
9.	प्राणायाम, मुद्रा–बंध और ध्यान साधना	193
10.	योग द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन (सभी के लिए योग)	229

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम

मॉड्यूल 1: योग दर्शन शास्त्र और क्रिया विज्ञान

(पाठ्यक्रम कोड 495)

1

योग और यौगिक ग्रन्थ

योग प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है, जो हमें हमारी भारतीय परम्परा से विरासत में मिला है। योग, न केवल एक अमूल्य धरोहर है, अपितु स्वस्थ रहने के लिए एक अनमोल उपहार भी है जो मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाता है। यह केवल व्यायाम नहीं बल्कि जीवन शैली को आनंदमय बनाने की कला भी है। प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि मुनि यौगिक जीवन का अनुसरण करते आ रहे हैं। क्या आप जानते हैं कि योग अब मात्र आश्रमों और साधुसंतों तक ही सीमित नहीं रह गया है बल्कि पिछले कुछ दशकों में इसने हमारे दैनिक जीवन में अपना स्थान बना लिया है।

इस यूनिट में हम, योग के सिद्धांत और उसकी उत्पत्ति का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप :

- योग के सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- योग का सही अर्थ समझा सकेंगे;
- योग को परिभाषित कर सकेंगे;
- योग दर्शन का वर्णन कर सकेंगे;
- योग की विभिन्न धाराओं को अभिव्यक्त कर सकेंगे;

1.1 योग : एक परिचय

जब योग का विषय शुरू होता है तो अचानक हमारे मन में साधु–संन्यासी या गेरुआ वस्त्र धारण किए बाबाओं की तस्वीर उभरने लगती है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि योग तो साधु, संन्यासियों का ही विषय है, तो कुछ लोग इसे हाथ का जादू या चमत्कार समझते हैं। आमतौर पर योग को स्वास्थ्य और फिटनेस के लिए एक थिरेपी के रुप में समझा जाता है। तो आइए, इन सब भ्रान्तियों से हटकर योग के वास्तविक स्वरूप को समझने के प्रयास करते हैं।

योग स्वस्थ जीवन जीने की एक कला है जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में योग का बहुत महत्व है। प्राचीन काल से ही योग हमारी जीवन शैली के अंग के रूप में समाहित है। आज योग सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग ग्रंथ –'पातंजल योग सूत्र' में वर्णन किया है कि ***"तदा द्रष्टुः स्वरुपेऽवस्थानम्"*** अर्थात मानव जीवन का परम लक्ष्य अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना है। (पातंजल योग सूत्र 1/3) और यही योग विद्या का ध्येय भी है। योग विद्या हमें अपने स्वयं के अस्तित्व का बोध कराती है।

योग शब्द का अर्थ बहुत व्यापक और विस्तृत है। शास्त्रों के अनुसार इसके अनेक अर्थ मिलते हैं। योग शब्द का सामान्य अर्थ है – जोड़ना, जुड़ना, मिलना, युक्त होना आदि। संस्कृत में योग शब्द की उत्पत्ति युज् धातु से मानी गई है। (योग शब्द 'युज' धातु के बाद करण और भाव वाच्य में घन् प्रत्येय लगाने से बना है) जिसका अर्थ है –'स्वयं के साथ मिलन'।

शरीर का मन से, मन का आत्मा से और आत्मा का परमात्मा से जुड़ना योग कहलाता है।

जैसा कि हम आपको बता चुके हैं कि योग का अर्थ बहुत व्यापक है। विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व भाव के अनुसार योग के अर्थ को स्पष्ट किया है। 'योग अनुशासन का विज्ञान है' यह शरीर, मन तथा आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है।

योग सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक आध्यात्मिक विषय भी है जो मन एवं शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह स्वस्थ जीवन जीने की एक कला है, जो भौतिक व आध्यात्मिक दोनों तरह के उत्थान को संभव बनाता है। इसका स्पष्ट प्रमाण सिंधु सरस्वती घाटी की सभ्यता से ही मिल जाता है, जिसका इतिहास 2700 ईसा पूर्व से है।

योग के महान दार्शनिक—महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में योग को आरंभ करते हुए लिखा है – 'अथ योगानुशासनम्' (पा.यो.द.–1/1) अर्थात अब योगानुशासन –परंपरागत योगविषय शास्त्र को आरंभ करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि महर्षि पतंजलि ने 'योग को अनुशासन का विज्ञान' बताया है।

योग के अर्थ को गहराई से समझने के लिए आइए, योग की कुछ मुख्य परिभाषाओं पर विचार करते हैं।

टिप्पणी

1.2 योग की परिभाषा

आपने योग के परिचय में पढ़ा कि योग, संस्कृत के युज् धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है 'जोड़ना'। योग से हम अपने को दूसरों से जोड़ पाते हैं। तद्नुसार आत्मा को सर्वव्यापी परमात्मा से जोड़ने के साधन के रूप में भी योग को समझा जा सकता है।

उपनिषद, महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता में योग पर काफी चर्चा की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग और राज योग का अद्भुत उल्लेख मिलता है।

आइए, अब यहाँ पर योग की कुछ परिभाषाओं पर विचार करते हैं –

1) ***योगश्चित्तवृत्ति निरोधः*** (पा.यो.द. 1/2)

अर्थात महर्षि पतंजलि के अनुसार **'चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।'**

आपने महसूस किया होगा कि मन प्रायः अस्थिर रहता है। यह अस्थिरता हमारी चंचल वृत्तियों के कारण है। वृत्ति का अर्थ है चित को व्यवहार में लाना। जिस वस्तु के प्रति हम जैसा सोचते हैं या व्यवहार करते हैं, उसे वृत्ति कहते हैं। सुखद दृश्यों को सोच कर या देखकर उन दृश्यों के प्रति, प्रीति की भावना, लगाव की भावना, स्वाभाविक है। इसे **'रागयुक्त'** वृत्ति कहते हैं। इसके विपरीत किसी दुखद घटना को याद करते हुए या ग्रस्त होते हुए, उसके प्रति दुःख की भावना का आना स्वाभाविक है और इसे **'द्वेषयुक्त वृत्ति'** कहते हैं। हर समय हमारे मन में एक न एक वृत्ति का संचार होता रहता है। हमारी वृत्तियां हमारे पूर्व संस्कारों और वर्तमान में ग्रहण किए जाने वाले विषयों के कारण होती हैं।

आप पूछेंगे कि विषय क्या है? विषय पांच हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। इन्हीं विषयों के अधीन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या, द्वेष आ जाते हैं।

हमारी वृत्तियों के आधार पर जो–जो विषय स्वयं को ठीक लगते हैं वही चित्त द्वारा आत्मा के सम्मुख लाए जाते हैं। जब–जब हम अज्ञानवश अपने आप को चित्त मानते हुए उन्हें ग्रहण करते हैं, तब–तब मन में रागयुक्त या द्वेषयुक्त वृत्ति का संचार होता रहता है। इन वृतियों को चित्त की बाह्य–वृत्ति कहते हैं। अभ्यास द्वारा चित्त की वृत्तियों को बाहर की वस्तुओं (विषयों) से हटाकर अंदर की ओर करते रहने से, वृत्तियों का भटकना बंद हो जाता है। उन वृत्तियों को पूर्णतः शांत और एकाग्र कर लेने का नाम योग है। इसे ही 'योगः चित्तवृत्ति निरोध' कहते हैं।

2. योगः कर्मसु कौशलम्। (श्रीमद्भगवदगीता–2/50)

अर्थात्

कर्मों में 'कुशलता ही योग है।''

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि कर्मों

को पूर्ण कुशलता पूर्वक किया जाए और वे आसक्ति रहित हों। इस परिभाषा के स्पष्टीकरण के लिए यहां स्पष्ट करना आवश्यक है कि कर्मों का आशय निश्चित रूप से सत्कर्म करने से है अर्थात – वे कर्म जो मानव को करने योग्य हैं। निषिद्ध कर्म जैसे – चोरी करना, ईर्ष्या करना, बेईमानी करना आदि इस परिधि में नहीं आते।

कर्मों को कुशलता पूर्वक न कर पाने के कारण ही जीव को बार–बार जन्म लेना पड़ता है। वे फलों की इच्छा से कर्म करते हैं और आसक्तिपूर्वक किए गए कर्मों का फल भोगने के लिये फिर से जन्म लेना पड़ता है। इसलिए जीव कर्मों एवं कर्मफलों के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता और जन्म-मरण का यह क्रम चलता रहता है।

चित्र 1.1: योगेश्वर कृष्ण का योग संदेश

3. समत्वं योग उच्यते (श्रीमद्भगवद्गीता–2:48)

अर्थात समत्व भाव ही योग है।

समत्व का अर्थ है – विभिन्न परिस्थितियों यथा सुख–दुखः लाभ–हानि में सम बने रहना या एक जैसा बने रहना। अधिकांशतः देखने में यह आता है कि सुखद परिस्थितियों में हम फूले नहीं समाते, हमारे अंदर अहंकार आ जाता है और हम जैसा व्यवहार पहले करते थे सामान्यतः वैसा नहीं कर पाते। इसी प्रकार अधिकांश लोग परिस्थिति के थोड़ा–सा प्रतिकूल होते ही बड़े निराश, हताश और उदास हो जाते हैं और अपने आप को बड़ा दीन–हीन मानने लगते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में वे अपने आप पर संयम नहीं रख पाते और भावुक हो उठते हैं। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में अपने मन की शांति और स्थिरता को बनाए रखना एवं लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रहना ही समभाव अथवा 'समत्व' कहलाता है।

4. योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजो रेतसो तथा।
सूर्याचनद्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।।
एवं तु द्वन्द्वजालसरू संयोगो योग उच्चते।। – योग शिखोपनिषद्

'अर्थात् अपान का प्राण से, स्वरज का स्वरेत से, सूर्य (नाड़ी) का चन्द्र (नाड़ी) से व जीवात्मा का परमात्मा से संयोग (मिलन) को ही योग कहा गया है।'

हर जीव में आत्मा होती है, उसी आत्मा की शक्ति से यह सारा शरीर और मन काम करता है। शरीर और मन अपने आप काम नहीं करते, ये तो जड़ हैं। किन्तु आत्मा जड़ नहीं, चेतन है और आत्मा की चेतन शक्ति से ही शरीर और मन भी चेतन दिखाई पड़ते हैं। शरीर जड़ है और पांच तत्वों से बना है। ये पांच तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और

टिप्पणी

पृथ्वी हैं। इन पांच तत्वों के साथ जीवात्मा के संयोग को जन्म और वियोग को मृत्यु कहते हैं। **जीवात्मा, शक्ति** का ऐसा पुंज है जो न कभी मरती है और न ही कभी जन्म लेती है, बल्कि जन्म लेता और मरता तो शरीर है। अच्छे कर्म करते हुए जीवात्मा पुण्यात्मा बन जाती है और बुरे कर्म करते हुए जीवात्मा पापात्मा बन जाती है। निरंतर योगाभ्यास से धीरे–धीरे हमारा शरीर निरोग और स्थिर होने लगता है, मन पवित्र और शांत होने लगता है; अंततः हमें आत्मा के सही स्वरूप का भान होने लगता है। आत्मा के सही स्वरूप को पहचानने के पश्चात ही हम परमात्मा के आंशिक स्वरूप को जानने की सामर्थ्य जुटा पाते हैं।

जैसे–जैसे हमारी जीवात्मा पवित्र और सबल होती जाती है वैसे–वैसे वह परमात्मा के नजदीक होने लगती है। इस स्थिति की ओर बढ़ते–बढ़ते हमें परमानंद की अनुभूति होने लगती है और **आत्मा–परमात्मा** के मंगल–मिलन की इस अवस्था को योग कहा गया है।

यूनिटगत प्रश्न 1.1

1. योग का क्या अर्थ है?

   .....

   .....

   .....

2. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार योग की परिभाषा बताइये।

   .....

   .....

   .....

1.3 योग का इतिहास और मुख्य यौगिक ग्रन्थ

योग की उत्पत्ति के विषय में सही समय का अनुमान लगाना तो कठिन है लेकिन योग का प्रार्दुभाव हजारों वर्ष पहले हुआ है। योग हमारे ऋषि–मुनियों की देन है। उन्होंने जो आत्म साक्षात्कार और अनुभव किया उसको उसी सुव्यवस्थित ढंग से प्रतिपादित किया है यह, आज के वैज्ञानिक युग में भी, सर्वमान्य व लोकप्रिय है।

1.3.1 योग का इतिहास

योग का इतिहास बहुत पुराना है। यह पुरातनकाल से ही चला आ रहा है। याज्ञवलय स्मृति (12/5) में उल्लेख मिलता है कि –

'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।

अर्थात – सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही योग के प्रथम वक्ता हुए हैं ऐसा महाभारत में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि

"सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।"

महाभारत 2/394/65

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय–4 में उल्लेख मिलता है कि –

1) **इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।**
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।

श्रीभगवान् बोले – मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा।

2) **एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।**
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।

हे परंतप अर्जुन! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना; किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्तप्रायः हो गया।

3) **स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।**
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है; क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।

अर्जुन उवाच

4) **अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।**
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।

अर्जुन बोले – आपका जन्म तो अर्वाचीन अर्थात अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है अर्थात् कल्प के आदि में हो चुका था; तब मैं इस बात को कैसे समझूँ कि आप ही ने कल्प के आदि में सूर्य से यह योग कहा था।

श्रीभगवानुवाच

5) **बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं तेत्थ परन्तप।।

टिप्पणी

श्रीभगवान् बोले –हे परंतप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत–से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ।

6) **अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ।

7) **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

हे भारत! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

8) **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिये और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये मैं युग–युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि योग पुरातन काल से ही चला आ रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग एवं राज योग पर वृहद चर्चा की है।

मार्शल (1931) ने अपनी पुस्तक 'Mohenjo-daro and the indus civilizations' में उल्लेख किया गया है कि मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा की खुदाई में जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वे उस काल में प्रचलित योग साधना का संकेत करते हैं। आसन में बैठे पशुपति और ध्यानस्थ योगी की प्रतिमा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पॉल ब्रन्टन की पुस्तक 'गुप्त भारत की खोज' में उल्लेख है कि हिमालय के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले साधक आज भी योग साधनाओं में लीन है। स्वामी राम ने भी अपनी पुस्तक 'Living with Himalayan Masters' में इस तरह योग पद्धतियों की विकासात्मक चर्चाएं की हैं।

1.3.2 कुछ मुख्य यौगिक ग्रंथों का सामान्य परिचय

आइये, अब हम कुछ मुख्य यौगिक ग्रन्थों के सामान्य परियच पर चर्चा करते हैं :–

सभी भारतीय दर्शन एक ही ज्ञान के पथ हैं। प्रत्येक दर्शन उप मार्ग का एक सोपान है। परमपद तक पहुंचने के लिए पहले सोपान को पार करना ही होगा।

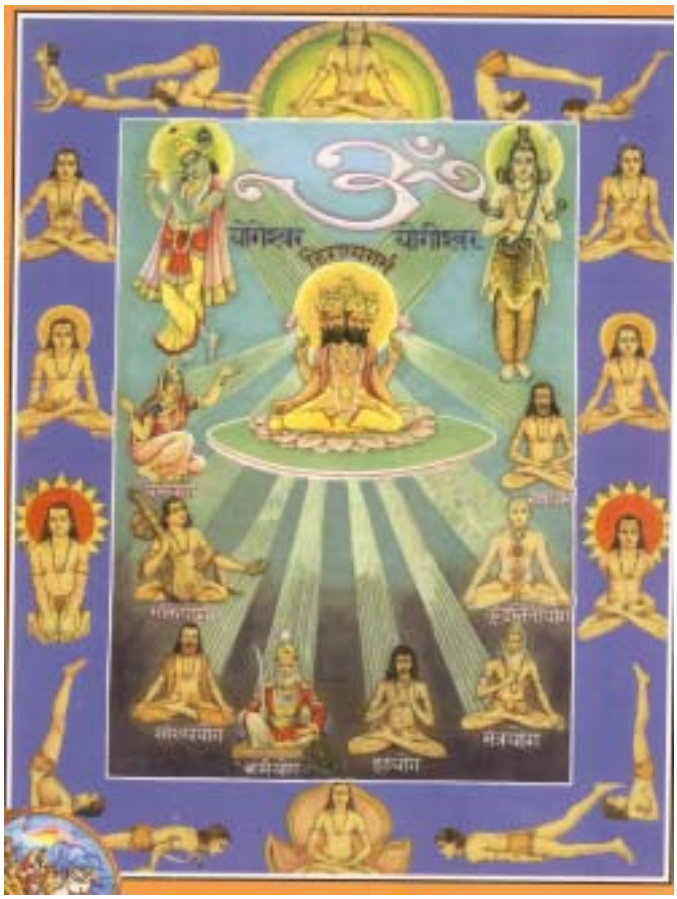

चित्र 1.2: योग–दर्शन

योग के दार्शनिक रूप में तत्वों पर विचार करने के लिए **महर्षि पतंजलि** द्वारा योगसूत्र महत्वपूर्ण दर्शन है। 'योग सूत्र' योगशास्त्र का मूल ग्रंथ है। इसमें चार पाद हैं–

1. समाधिपाद 2. साधनपाद 3. विभूतिवाद 4. कैवल्यपाद

1) प्रथमपाद के अंतर्गत योग के स्वरूप, चित्तवृत्ति, समाधि तथा उनके भेदों का निरूपण है।

2) द्वितीय पाद में क्रियायोग, अविद्याादि क्लेश एवं उनके निवारण के उपाय एवं अष्टांग योग (बहिरंग) आदि महत्वपूर्ण विषयों का निरूपण है।

3) तृतीय पाद के अंतर्गत धारणा, ध्यान, समाधि संयम एवं संयम जन्य विभूतियां निरूपित की गई हैं।

4) चतुर्थ पाद (कैवल्य) का प्रमुख विषय कैवल्य है तथा समाधिसिद्धि (अंतरंग), चित्तनिर्माण, आत्मभाव, भावनानिवृत्ति, धर्ममेघ, समाधि आदि का निरूपण भी किया गया है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा योग दर्शन की एक विशेषता यह है कि यह सैद्धान्तिक ही नहीं व्यवहारिक भी है।

टिप्पणी

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने जिस योग की शिक्षा दी है, उसे लोग सप्तांग योग के नाम से जानते हैं। अन्य ग्रंथों में अष्टांग योग की चर्चा की गई है, लेकिन हठयोग के कुछ ग्रंथों में योग के छह अंगों का वर्णन मिलता है। गोरखनाथ द्वारा लिखित गोरक्ष शतक में षडंग योग की चर्चा की गई है।

घेरण्ड संहिता में सबसे पहले शरीर शुद्धि की क्रियाओं की चर्चा की गई है जिन्हें षटकर्म कहा जाता है। इनमें प्रमुख हैं – नेति– नाक की सफाई, धौति–पाचन तंत्र सफाई, वस्ति– बड़ी आंत की सफाई, जिससे हमारे शारीरिक विकार दूर हो जाएं, नौलि – पेट, गुर्दे इत्यादि का व्यायाम, कपालभाति और त्राटक–अग्र मस्तिष्क की सफाई व मानसिक एकाग्रता की एक विधि है। इसके बाद आसनों की चर्चा की गयी है जिनसे शरीर की दृढ़ता और स्थिरता प्राप्त होती है। तीसरे आयाम में पच्चीस मुद्राओं की चर्चा मिलती है, चौथे आयाम में प्रत्याहार पांचवें आयाम में प्राणायाम के अभ्यास को जोड़ा है। छठे आयाम के अंतर्गत ध्यान की चर्चा मिलती है जोकि तीन प्रकार के हैं – स्थूल, सूक्ष्म और ज्योतिध्यान। सातवें आयाम में समाधि का वर्णन मिलता है।

इस प्रक्रिया या समूह को उन्होंने एक दूसरा नाम भी दिया है– घटस्थ योग।

इस प्रकार महर्षि घेरण्ड ने भी **'घटस्थ योग'** के बारे में बताया है कि घटस्थ योग शरीर पर आधारित योग है। घट का अर्थ होता है घड़ा। जब हम घड़े की कल्पना करते हैं, तब मिट्टी से बनी आकृति मन में उभरती है। हम उसकी बाह्य आकृति को देखतेहैं, परन्तु हमें यह मालूम नहीं रहता कि इसके अंदर क्या भरा है? हो सकता है, घड़ा खाली हो या उसमें पानी भरा हो, हो सकता है उसमें अन्न रखा हो। घड़े के भीतर कोई भी चीज हो सकती है, लेकिन घट कहने से केवल बाह्य आकृति का ज्ञान मिलता है। शरीर को तो हम देखते हैं। उसे सुखी व संतुष्ट बनाने के लिए हम पुरुषार्थ या कर्म करते हैं। शरीर को ठंड लगती है तो कपड़े पहनते हैं। गरमी लगती है तो कपड़े उतारते हैं, पंखा चलाते हैं। शरीर विश्राम चाहता है तो सोते हैं। शरीर के इन सब बाह्य क्रिया कलापों को तो हम अपने जीवन में देखते हैं, अनुभव करते हैं, लेकिन शरीर के भीतर कौन–कौन से तत्व हैं यह कोई नहीं जानता।

शरीर की रचना एक विचित्र संयोग से हुई है। उस संयोग को आप चाहे प्रकृति कहिए, ब्रह्मा कहिए या ईश्वर कहिए। जब हम शरीर पर आधारित योगाभ्यास करते हैं, तो हमारे मस्तिष्क पर उसका सीधा प्रभाव पड़ता है, और मस्तिष्क की गतिविधियां शांत हो जाती है। शारीरिक योग का प्रभाव मन पर पड़ता है, उसके माध्यम से मानसिक चंचलता शांत हो जाती हैं शांति की प्राप्ति के पश्चात हम अपने कर्मों और संस्कारों को परिमार्जित कर सकते हैं।

अतः शरीर को निर्मित करने वाले स्थूल एवं सूक्ष्म तत्वों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। जब स्थूल एवं सूक्ष्म तत्वों का परिचय हमें प्राप्त होता है, तब यह कहा जा सकता है कि घटस्थ योग की शुरुआत हो रही है।

श्रीमद्भगवद्गीता विभिन्न योग पद्धतियों का सुविस्तृत ग्रन्थ है जिसमें से मुख्य योग परिभाषाओं का वर्णन निम्नवत है–

श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग के बारे में स्पष्ट अभिमत प्रस्तुत करता है। कर्मयोग समत्व भाव, अनासक्त कर्म, ईश्वर अर्पित कर्म आदि अनेक भावों से युक्त है यथा श्रीमद्भगवद्गीता (2/48) मतानुसार

'योगस्थ कुरू कर्माणि संगंत्यक्तवा धनंजय।

सिद्धयसिद्धयो : समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

अर्थात् योग में स्थित होकर कर्म करो, हे धनन्जय उससे (कर्म से) आसक्ति त्यागकर कार्य सिद्धि (कर्मपस) या असिद्धि दोनों में समान भाव होकर कर्म करो यही समत्व भाव योग है।

इसी क्रम में अगले श्लोक 2/49 में भगवान ने कहा है कि 'इस बुद्धि योग के द्वारा किया काम तो बहुत ऊँचा है। अतः समत्व वाले बुद्धियोग की शरण लो क्योंकि काम को फल की इच्छा से करने वाले अत्यन्त दीन हैं। 'अतः कर्मों में कुशलता के लिए अच्छे और बुरे दोनों कर्मों से स्वयं को निवृत्त करना ही कर्मयोग कहा गया है।' श्लोक 2/50 में कहा गया है कि

'बुद्धियुक्तों जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्'

एक अन्य परिभाषा में श्लोक 6/23 में कहा गया है कि

'तं विद्याद्दुःख संयोग वियोग योग संज्ञितम्।

स निश्चयेन सोक्तष्यो योगो निर्विष्णचेतसा।।

अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है वह विद्या (ज्ञान) ही योग है, उसको जानना चाहिए। इस योग को धैर्य और उत्साहपूर्वक निश्चय चित्त से करना चाहिए।

स्थितप्रज्ञ के निम्नलिखित लक्षणों का उल्लेख गीता के दूसरे अध्याय में मिलता है—

1. क्षमाशील
2. करुणानिधि
3. एक विचार दृष्टिवाला
4. कर्मयोगी
5. जीवन मुक्त
6. योगारुढ़
7. भगवत्भक्त
8. गुणातीत
9. ज्ञाननिष्ठ

टिप्पणी

हठयोग प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने सहयोग परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इसके चार अंगों का विस्तृत वर्णन किया है:

आसन, प्राणायाम, मुद्रा व नादानुसंधान

इस प्रकार स्वात्माराम ने उपर्युक्त चार अंगों का निर्देश किया है। हठयोग का अभ्यास प्रायः राजयोग के लिए ही किया जाता है। हठयोग (प्रदीपिका 2/76)।

इसमें बाधक एवं साधक तत्वों का उल्लेख भी मिलता है। (हठयोग प्रदीपिका 1/15, 16)

प्रथम उपदेश

इसमें आसनों की संख्या 15 बतायी गई है। सिद्धासन और पद्मासन पर विशेष महत्व दिया गया है अंत में हठाभ्यासियों के लिए पथ्य व अपथ्य आहार का विस्तार से विवेचन किया गया है।

द्वितीय उपदेश

इसके प्रथम भाग 1–20 में प्राणायाम की उपयोगिता व विशेषता के साथ नाडी शोधन की आवश्यकता पर महत्व दिया गया है और 21–37 में षटकर्म और अष्टकुम्भकों का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय उपदेश

इसमें 10 मुद्राओं व कुण्डलिनी का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ उपदेश

इसमें नाद, नादानुसंधान व समाधि की विस्तृत चर्चा की गई है।

वशिष्ठ संहिता में महर्षि वशिष्ठ जी ने 14 नाड़ियों का वर्णन किया है। इनमें तीन प्रमुख हैं– इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना।

इसके साथ ही यहां यम की चर्चा भी मिलती है, प्राणायाम को यहां दो प्रकार से समझाया गया है :

1. सहित कुम्भक 2. केवल कुम्भक

इसमें प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान के बारे में भी चर्चा मिलती है।

यूनिटगत प्रश्न 1.2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) योग के चार पाद हैं ....., ..., ...और .... ।

ख) गोरखनाथ द्वारा लिखित 'गोरक्षशतक' में ..... की चर्चा की गई है ।

ग) घेरण्ड संहिता ..... आयाम में प्राणायाम की चर्चा की गई है ।

घ) स्थितप्रज्ञ का उल्लेख गीता के ..... अध्याय में मिलता है ।

ड़) हठयोग प्रदीपिका में .....उपदेशों की चर्चा की गई है ।

1.4 योग की प्रमुख परम्पराएँ

अब तक आप योग और पतन्जलि योग दर्शन के चार पादों के विषय में जान चुके हैं ।

योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि मानव दिव्य जीवन जिये, और आध्यात्मिक शिखर की सीढ़ियाँ चढ़ता चला जाए जिससे जीवन के वास्तविक आनंद की प्राप्ति की जा सके । योग साधना के रहस्य को समझने के लिए निम्न प्रमुख परम्पराएं हैं–

1. हठयोग, 2. अष्टांग योग 3. कर्म योग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग ।

1. हठ योग

स्थूल शरीर को सीधे–सीधे प्रभावित करने वाले योग अभ्यासों का आविष्कार योगांगों के रूप में किया गया है, जिनके द्वारा साधक प्रथम अवस्था में स्थूल शरीर की क्रियाओं की साधना करता हुआ उस पर अधिकार प्राप्त कर लेता है और उस शक्ति के द्वारा शरीर प्राण व मन को वश में करता हुआ परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है । इसी योग प्रणाली को हठयोग कहते हैं ।

हठयोग प्रदीपिका में हठयोग के निम्न प्रमुख अंगों का वर्णन है–

1. आसन 2. प्राणायाम 3. मुद्रा 4. नादानुसंधान

महर्षि घेरण्ड ने हठयोग के सात साधन बताए हैं –

1. षट्कर्मों से शरीर शुद्धि
2. आसनों से दृढ़ता
3. मुद्राओं से स्थिरता
4. प्रत्याहार से धैर्य
5. प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति (हल्कापन)
6. ध्यान से आत्म साक्षात्कार
7. समाधि से निर्लिप्तता तथा मुक्ति की प्राप्ति ।

टिप्पणी

2. अष्टांग योग

मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों का प्रतिपादन किया है जो अष्टांग योग के नाम से लोकप्रिय है। इन्हीं आठ अंगों को राजयोग भी कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने निम्न आठ अंग बताये हैं :—

1. यम (आत्म संयम)
2. नियम (आत्म शोधन)
3. आसन (शारीरिक मुद्राएं)
4. प्राणायाम (श्वास—प्रश्वास का नियमन)
5. प्रत्याहार (इंद्रियों को उनके विषय से रोकना अर्थात अन्तर्मुख व आत्मोन्मुख करना)
6. धारणा (चित्त की एकाग्रता)
7. ध्यान (तल्लीनता)
8. समाधि (पूर्ण लक्ष्य मात्र में तन्मय हो जाना)

अष्टांग योग के विषय पर हम आपके साथ अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

3. कर्म योग

मनुष्य का जीवन कर्म प्रधान जीवन है। कर्म के बिना जीवन शून्य अथवा निरर्थक कहा जाता है। श्रीमद्भगवतगीता में इस बात का बारम्बार उपदेश मिलता है कि हमें निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म स्वभाव से ही सत्—असत् से मिश्रित होता है। प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुण—दोष से मिश्रित रहता है। परन्तु फिर भी शास्त्र हमें सतत सत् कर्म करते रहने का ही आदेश देते हैं।

अच्छे और बुरे दोनों कर्मों का अपना अलग—अलग फल होता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा होगा और बुरे कर्मों का फल बुरा। परन्तु अच्छे और बुरे दोनों ही आत्मा के लिए बंधन रूप हैं। श्रीमद्भगवतगीता के अनुसार यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों तो हमारी आत्मा किसी प्रकार के बंधन में नहीं फंसती। इस प्रकार आसक्ति को त्याग कर हानि—लाभ तथा यश—अपयश में समान भाव रखते हुए, ईश्वर को समर्पित होकर किया जाने वाले कर्म ही 'कर्मयोग' कहलाते हैं। कामना रहित कर्त्तव्य, कर्म के लिए कर्मयोग के स्थान पर, लोक में निष्काम—कर्मयोग अधिक प्रचलित है। यह आत्म साक्षात्कार में विशेष सहायक माना गया है।

4. भक्ति योग

भक्ति योग का अभिप्राय यह है कि सभी रूपों, सभी नामों और सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु का या अपने परम् ईष्ट का दर्शन करना। श्रद्धा और विश्वास भक्ति के दो प्रमुख

तत्व हैं। ईश्वर में श्रद्धा, विश्वास होने के बाद ही उनका साक्षात्कार हो सकता है। ईश्वर से निष्काम भाव से ही प्रेम करने को 'विशुद्ध भक्ति' कहते हैं। मोह का अभाव हो जाने पर सांसारिक भोग अच्छे नहीं लगते, उस समय भगवान की स्मृति अधिक समय तक बनी रहती है जिससे भक्त ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है। यही भक्ति योग की पराकाष्ठा है। योग की समस्त धाराओं में भक्ति योग श्रेष्ठतम है।

5. ज्ञान योग

मन, इन्द्रियों तथा शरीर से होने वाली समस्त क्रियाओं में कर्त्ता भाव के अभिमान से शून्य होकर, आत्मज्ञान से युक्त होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम ज्ञान योग है। इसी को श्रीमद्भगवद् गीता में कर्म संन्यास योग भी कहते हैं। इस योग में योगी अपनी आत्मा का अवलोकन करते हुए परम् सन्तुष्ट रहता है।

ज्ञान योग तथा कर्मयोग साधन–शैली में भिन्न होते हुए भी परमात्मा की प्राप्ति में एक ही हैं। दोनों ही परम् कल्याण कारक हैं।

ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान रुपी अहंकार नष्ट हो जाता है। अज्ञान से 'कामना– (इच्छा) और कामना से 'कर्म' उत्पन्न होते हैं। ज्ञान योग साधना के द्वारा अज्ञान के नष्ट हो जाने पर कर्म स्वतः समाप्त हो जाते हैं। संपूर्ण कर्मों की समाप्ति ज्ञान में ही होती है।

यूनिटगत प्रश्न 1.3

1. हठयोग के प्रमुख अंगों का नाम बताएँ?

.....

.....

.....

2. कर्मयोग का सार क्या है?

.....

.....

.....

3. ज्ञान योग के बारे में समझाइए।

.....

.....

टिप्पणी

4. योग की प्रमुख परम्पराओं के नाम बताएँ।

.....

.....

.....

आपने क्या सीखा

इस यूनिट के अंतर्गत हमने सीखा कि –

- योग अनुशासन का विज्ञान है जो मानवता के विकास का सर्वोत्तम मार्ग है। साथ ही, योग परमात्मा से संबंध स्थापित करने की कला भी है। हमने योग की विभिन्न परिभाषाओं को जाना: ***योगश्चित्तवृत्ति निरोधः*** (पा.यो.द. 1/2)

  अर्थात महर्षि पतन्जलि के अनुसार **'चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।'**

- श्रीमद्भगवद्गीता विभिन्न योग पद्धतियों का सुविस्तृत ग्रन्थ है जिसमें से मुख्य योग परिभाषाओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

  यथा श्रीमद्भगवद्गीता (2/48) मतानुसार

  'योगस्थ कुरू कर्माणि संगंत्यक्तवा धनंजय।
  सिद्धयसिद्धयो : समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

  अर्थात् योग में स्थित होकर कर्म करो, हे धनन्जय उससे (कर्म से) आसक्ति त्यागकर कार्य सिद्धि (कर्मपस) या असिद्धि दोनों में समान भाव होकर कर्म करो यही समत्व भाव योग है।

- इसी क्रम में अगले श्लोक 2/49 में भगवान ने कहा है कि 'इस बुद्धि योग के द्वारा किया काम तो बहुत ऊँचा है। अतः समत्व वाले बुद्धियोग की शरण लो क्योंकि काम को फल की इच्छा से करने वाले अत्यन्त दीन हैं। 'अतः कर्मों में कुशलता के लिए अच्छे और बुरे दोनों कर्मों से स्वयं को निवृत्त करना ही कर्मयोग कहा गया है।' श्लोक 2/50 में कहा गया है कि

  'बुद्धियुक्तों जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
  तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्'

- एक अन्य परिभाषा में श्लोक 6/23 में कहा गया है कि

  'तं विद्याद्दुःख संयोग वियोग योग संज्ञितम्।
  स निश्चयेन सोक्तष्यो योगो निर्विष्णचेतसा।।

अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है वह विद्या (ज्ञान) ही योग है, उसको जानना चाहिए। इस योग को धैर्य और उत्साहपूर्वक निश्चय चित्त से करना चाहिए।

हमने योग की सारगर्भित जानकारी प्राप्त की। साथ ही हमने योग की विभिन्न धाराओं के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जिसमें स्पष्ट किया गया कि योग की पांच प्रमुख परम्पराएं हैं –

1. हठ योग 2. अष्टांग योग (राज योग) 3. कर्म योग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग

यूनिटांत प्रश्न

1. योग क्या है? योग की किन्हीं तीन परिभाषाओं को देते हुए उनका आशय स्पष्ट कीजिए।
2. पातांजलि योगदर्शन के सभी सोपानों को विस्तार पूर्वक समझाइए।
3. घेरण्डसंहिता, हठप्रदीपिका एवं वशिष्ठ संहिता में बताए गए योग से अंगो को स्पष्ट कीजिए।
4. योग की प्रमुख परम्पराओं का उल्लेख कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. योग का अर्थ है – जोड़ना
2. कर्मों में कुशलता ही योग है।

1.2

क) (i) समाधिपाद (ii) साधनपाद (iii) विभूतिपाद (iv) कैवल्यपाद

ख) अष्टांग योग

ग) पाँचवें

घ) दूसरे

ङ) पाँच

1.3

1. आसन 2. प्राणायाम 3. मुद्रा 4. नादानुसंधान
2. आसक्ति को त्यागकर हानि–लाभ तथा यश–अपयश में समान भाव रखते हुए, ईश्वर को समर्पित होकर किया जाने वाला कर्म ही 'कर्मयोग' कहलाता है।
3. मन, इंद्रियों तथा शरीर से होने वाली समस्त क्रियाओं में कर्ताभाव के अभिमान से शून्य होकर सर्वव्यापी सच्चिदानंदघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम 'ज्ञान योग' है।
4. (1) हठयोग (2) अष्टांग योग (3) कर्मयोग (4) भक्ति योग (5) ज्ञान योग

2

अष्टांग योग

पिछले अध्याय में आपने योग की परिभाषा, योग दर्शन और योग की मुख्य धाराओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में योग व योगांगों के विभिन्न पहलुओं को क्रमबद्ध रूप से प्रतिपादित किया है, जिससे साधक भलीभांति अवगत हो सके और अपना सर्वांगीण विकास करने में समर्थ हो सके।

इस यूनिट के अंतर्गत हम अष्टांग योग का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप –

- महर्षि पतंजलिकृत अष्टांग योग दर्शन को अभिव्यक्त कर पाएंगे;
- योग के आठ अंगों के क्रमिक नामों का उल्लेख कर सकेंगे;
- यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ अंगों को परिभाषित कर सकेंगें; और
- अष्टांग योग के व्यावहारिक स्वरुप और लाभ को स्पष्ट कर पाएंगे।

2.1 अष्टांग योग

अष्टांग योग साधकों के लिए महत्वपूर्ण और परम उपयोगी दर्शन है। इसमें अन्य दर्शनों की भांति खंडन–मण्डन के लिए युक्तिवाद का अवलम्बन न करके सरलतापूर्वक, बहुत ही कम शब्दों में योग के व्यावहारिक पहलू का निरूपण किया गया है। अष्टांग योग को महर्षि पतंजलि के द्वारा परिष्कृत ढंग से प्रतिपादित किया गया है जिसमें उन्होंने योग के आठ अंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

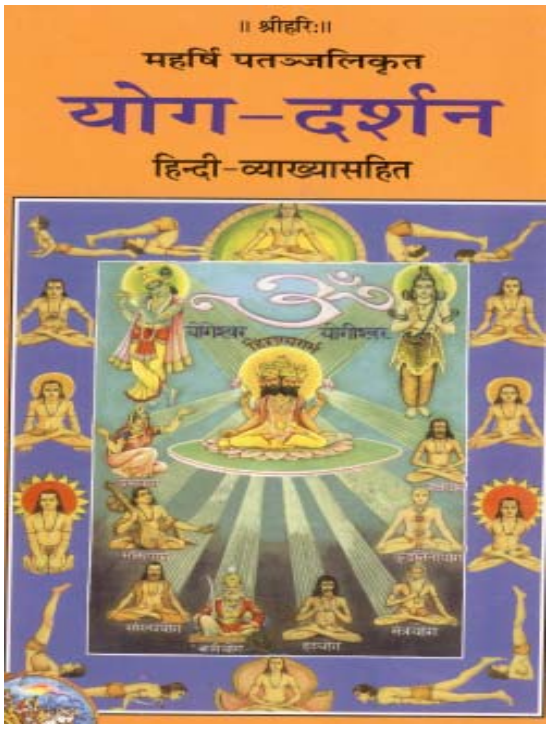

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि। (पा.यो. सूत्र/29)

योग के ये आठ अंग हैं –

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

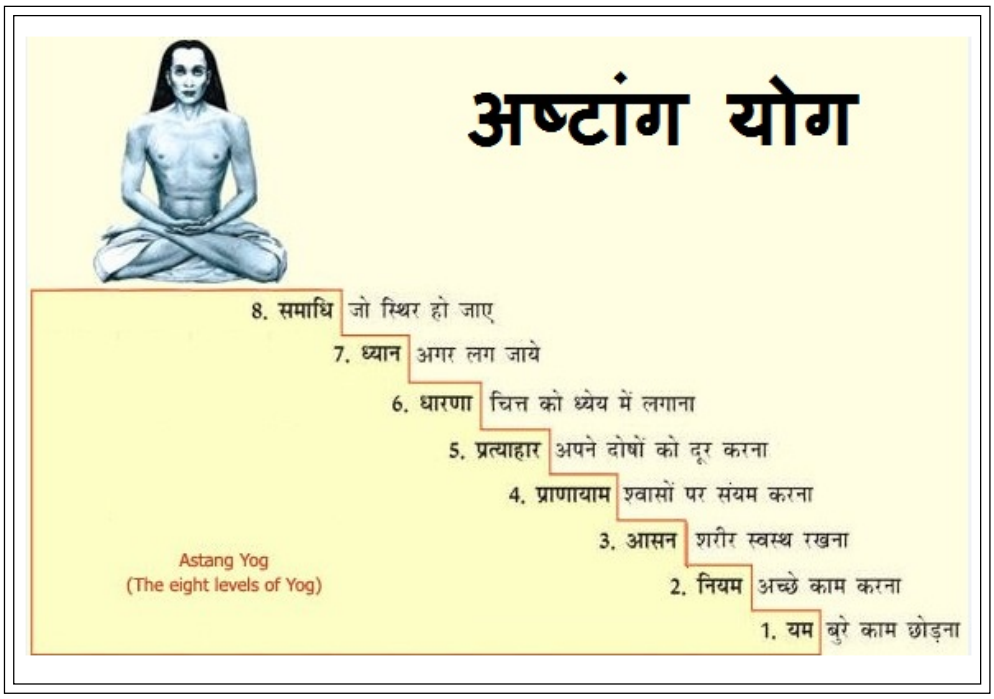

टिप्पणी

इन सब योगांगों का पालन किए बिना कोई भी व्यक्ति योगी नहीं हो सकता। यह अष्टांग योग केवल योगियों के लिए ही नहीं अपितु जो भी व्यक्ति जीवन में पूर्ण सुखी होना चाहता है तथा प्राणिमात्र को सुखी देखना चाहता है, उन सबको अष्टांग योग का पालन करना परम उपयोगी साधन है। अष्टांग योग धर्म, अध्यात्म, मानवता एवं विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। अष्टांग योग में जीवन के सामान्य व्यवहार से लेकर ध्यान एवं समाधि सहित अध्यात्म की उच्च अवस्थाओं का अनुपम समावेश है। यदि कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व की खोज में लगा है तथा जीवन के पूर्ण सत्य से परिचित होना चाहता है, तो उसे अष्टांग योग का अवश्य ही पालन करना चाहिए।

आइए, पतंजलि योग दर्शन में दिए गए योग के आठ अंगों के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं:—

महर्षि पतंजलि ने योग के समूचे क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया है—

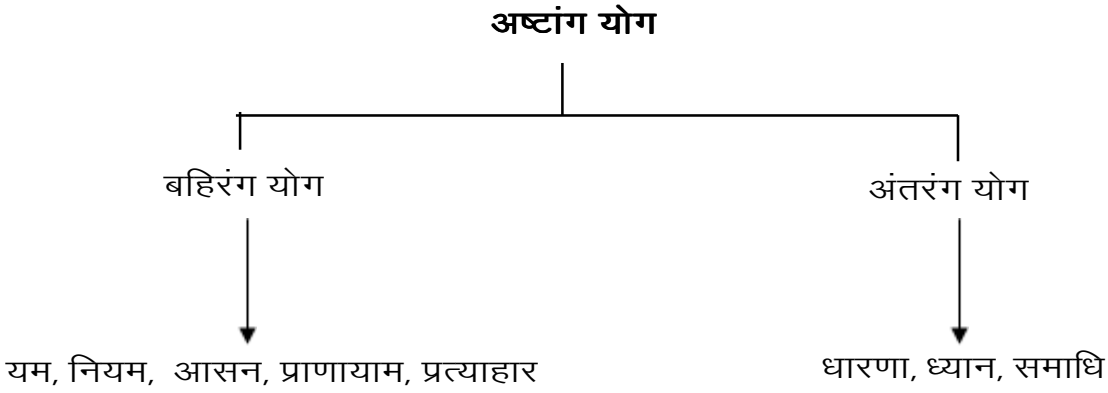

1. **बहिरंग योग** — बहिरंग योग का तात्पर्य उन अभ्यासों से है जिनका उद्देश्य बाहरी तौर पर मानव जीवन का परिशोधन करना है। इसके माध्यम से क्रमशः सामाजिक, वैयक्तिक, शारीरिक, प्राणिक व इन्द्रियगत शुद्धि करना संभव है। जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार आते हैं।

2. **अंतरंग योग** — अंतरंग योग के अभ्यास (धारणा, ध्यान व समाधि) में साधक का उद्देश्य आत्म जागृति व विवेक ख्याति की प्राप्ति है। बहिरंग योग और अंतरंग योग परस्पर आश्रित होते हैं। साधनों में साधक को इन अंगों का सम्बन्धित अभ्यास करते हुए आगे बढ़ना आवश्यक होता है। धारणा, ध्यान व समाधि तीनों को महर्षि पतंजलि का संयम भी कहते हैं।

   समझदार साधक वही माना जाता है जो धैर्यपूर्वक धीरे—धीरे अष्टांग योग के सभी अंगों का अभ्यास करता है। अष्टांग योग के अंगों का अभ्यास समूह में किया जाए तो बड़ा लाभ होता है क्योंकि साधक को कुछ समय तक अन्य साधकों के साथ रहने का अवसर

मिलता है तथा उसे समुचित वातावरण भी प्राप्त होता है। प्रारंभ के कुछ महीने या वर्ष साधक किसी अच्छे योग अध्यापक के पवित्र सान्निध्य में रहकर साधना करे तथा अपने शरीर और मन को परिस्थिति के अनुकूल कर ले जिससे आगे चलकर कठिनाई का सामना न करना पड़े।

यूनिटगत प्रश्न 2.1

1. अष्टांग योग के आठ अंगों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2. बहिरंग योग से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

2.1.1 यम

आठ अंगों में प्रथम अंग है– यम। यम से अभिप्राय है– सामाजिक नियम व अनुशासन। यम को महाव्रत भी कहा जाता है। व्रत से तात्पर्य होता है 'शपथ के रूप में लिया गया संकल्प। इस प्रकार महाव्रत का अर्थ हुआ सर्वमान्य सार्वभौम व्रत। यानि ऐसा संकल्प जो हर समय, हर स्थान पर और हर देश में पालन करने योग्य है। योग–मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए यम, नींव के पत्थर के समान है। इसके पालन से ही योग की भव्य इमारत का निर्माण संभव हो पाता है। आइए, यम के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें :

यम पांच हैं–

अहिंसासत्यास्तेयब्रहमचर्यापरिग्रहाः यमाः।। (पा.यो.सू. 2/30)

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. ब्रह्चर्य
5. अपरिग्रह

टिप्पणी

1. अहिंसा :

अहिंसा का अर्थ है – बुद्धि, वाणी और शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना।

सभी प्राणियों से प्रेम करना, दूसरों का अहित न करना, जीव हत्या न करना, दूसरों को कष्ट न पहुँचाना, शत्रुता के विचारों को मन में न आने देना तथा दूसरों को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाना, आदि अहिंसा के दायरे में आता है।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात् सभी भूतों (प्राणियों) में एक ही आत्मा को देखना। ऐसी अनुभूति से जब जीवन रंग जाता है तब किसी प्राणी के द्वारा कष्ट, अपमान और हानि पाकर भी उत्तेजित न होना, अहिंसा की असली साधना है।

'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैर त्यागः' (पा.यो.सू. 2) अर्थात् अहिंसा में दृढ़ व्यक्ति के आस–पास संपूर्ण वैर भाव का त्याग हो जाता है। अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर उस महाव्रती के संपर्क में आने वाले हिंसक पशु भी हिंसा का त्याग कर देते हैं; यह अहिंसा का मापदंड है।

2. सत्य

सत्य के पथ पर चलने वाला साधक सत्य और केवल सत्य कथन ही करता है। उसका कहा सौ प्रतिशत सही होता है। सत्य के पालन द्वारा उसके भीतर एक शक्ति का जागरण होता है। जब, साधक का मन, दर्पण के समान निर्मल होता है तो उसकी वाणी सिद्ध हो जाती है। सत्य का पालन करने से साधक अपने कर्मों का इच्छित फल प्राप्त करने में सक्षम होता है। वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा बोलने के पूर्व प्रत्येक शब्द को तौलता है। इस तरह वह अपनी वाणी पर नियंत्रण रखता है। किसी भी बात को बुद्धि से निश्चय करना, फिर उसे वाणी द्वारा प्रकट करना और अंत में वैसा ही व्यवहार करना पूर्ण सत्य होता है।

अन्तःकरण और इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया हो, हित की भावना से, बिना किसी भेदभाव के प्रिय शब्दों में वैसे का वैसा ही प्रकट करने का नाम 'सत्य' है।

3. अस्तेय

मन, वचन तथा कर्म द्वारा किसी प्रकार से भी किसी के हक को न चुराना, या न छीनना अस्तेय है।

सबसे अच्छी बात यह है कि मनुष्य भगवान के द्वारा दिये गये द्रव्य आदि का ही उपभोग करे, और माता–पिता, आचार्य तथा सत्पुरुषों के द्वारा मिले द्रव्य (वस्तुएँ) पर संतोष करें, परन्तु द्रव्य की अभिलाषा कभी न करें।

'परद्रव्येषु लोष्ठवत्'

अर्थात् दूसरे के द्रव्य को मिट्टी के समान समझे। इसी को अस्तेय कहा गया है।

4. ब्रह्मचर्य

ब्रह्म+ चर्य= अर्थात ब्रह्म अनुरूप जीवन शैली।

ब्रह्म सबसे बड़ी सत्ता को कहते हैं तथा चर्य का तात्पर्य रहना होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्म में विचरना होता है। परन्तु इसका व्यावहारिक अर्थ है – तमाम विषयों पर रोक। मन, इंद्रियों और शरीर द्वारा होने वाले काम विकार के सर्वथा अभाव का नाम ब्रह्मचर्य है। किसी भी प्रकार से विषय भोग–भावना बुद्धि में उत्पन्न न होने देना ब्रह्मचर्य का पालन करना है।

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और पाँचों कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण रखना ब्रह्माचर्य कहलाता है।

5. अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है – संचय न करना ।

सत्य की खोज करने वाला, अहिंसा बरतने वाला परिग्रह(संचय) नहीं कर सकता। परमात्मा परिग्रह नहीं करता। अपने लिए जरुरी चीज़ वह रोज की रोज पैदा करता है । इसलिए अगर हम उस पर भरोसा रखते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हमारी जरुरत की चीजें वह प्रतिदिन देता है और देगा।

मुख्य रूप से हम समझ सकते हैं कि – शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध आदि से संबंधित किसी भी भोग सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह है, या दूसरे शब्दों में कहें कि आवश्यकता से अधिक संचय ना करना अपरिग्रह कहलाता है।

यूनिटगत प्रश्न 2.2

1. अहिंसा का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

2. दैनिक जीवन में अस्तेय का पालन कैसे करेंगे?

.....

.....

.....

.....

टिप्पणी

3. ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

.....

4. अपरिग्रही व्यक्ति की पहचान कैसे करेंगे?

.....

.....

.....

.....

2.1.2 नियम

यम के बाद अगला अंग है 'नियम'। नियम वैयक्तिक अनुशासन व आत्म परिशोधन है। नियम के अंतर्गत हम देखेंगे कि हमें अपने आप से कैसा व्यवहार करना चाहिए। अपने आप से व्यवहार करने से अभिप्राय है कि हम अपने शरीर को कैसा रखें, अपनी बुद्धि को कैसा रखें, कैसे उन्हें शुद्ध व पवित्र रखते हुए अपनी शक्तियों को बढ़ाएं अर्थात अपना उत्थान और कल्याण कैसे करें। नियम पाँच हैं।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। (पा. यो. सू. 2/32)

1. शौच (पवित्रता)
2. संतोष
3. तप
4. स्वाध्याय
5. ईश्वर–प्रणिधान

1. **शौच–** शौच से अभिप्राय है– शुद्धता–पवित्रता। इसे दो भागों में बांटा जा सकता है – (i) बाह्य शुद्धि (ii) आंतरिक शुद्धि।

   i) **बाह्य शुद्धि** – बाह्य शुद्धि में बाहर की वस्तुएं, बाहर का वातारण, हमारा शरीर और रहन–सहन इत्यादि आ जाता है। जहां तक घर की सफाई, रख–रखाव इत्यादि का प्रश्न है, कई लोग इसमें बड़े निपुण होते हैं। अपनी सभी चीजों को सफाई से रखते हैं। शारीरिक स्वच्छता से अभिप्राय है– अपने शरीर को व्याधियों से मुक्त रखना, सभी अंग प्रत्यंगों को निरोग एवं पुष्ट रखना, सात्विक आहार से युक्त रखना, प्रतिदिन योगाभ्यास द्वारा शरीर के मलों को निष्कासित करते रहना, यह सभी बाह्य शुद्धि में आता है।

ii) **आंतरिक शुद्धि –** बाह्य के साथ–साथ आंतरिक शुद्धि, जिसे हम अनदेखा करते रहते हैं, का भी बड़ा महत्व है। आंतरिक शुद्धता से अभिप्राय है 'मन की स्वच्छता, यानि हमारे मन में दूसरों के प्रति ईर्ष्या–द्वेष न हो। हम स्वार्थी या विषयों के प्रति लालायित न बने रहें। अहंकार, ममता, राग, द्वेष, ईर्ष्या, भय आदि दुर्गुणों के त्याग से भीतरी पवित्रता आती है।

2. **संतोष – *संप्तोषादनुत्तमः सुखलाभः*।** (पा. यो. सू. 2/42)

संतोष से जो सुख प्राप्त होता है, वह सबसे उत्तम सुख है। संतोष को ही मोक्ष सुख भी कहते हैं। सुख–दुःख, लाभ–हानि, यश–अपयश, सिद्धि–असिद्धि, अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदैव संतुष्ट प्रसन्नचित रहने का नाम संतोष है।

व्यवहारिक जीवन में लोभ, मोह, राग, आशा आदि के वशीभूत न होकर सदा संतोष का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

संतोषपूर्ण जीवन के लिए किसी कवि ने कहा है –

गोधन, गज धन, बाजिधन, और रतन धन खान।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

3. **तप–**मन और इन्द्रियों के संयमरूप धर्म पालन करने के लिए कष्ट सहना तथा व्रतादि का अनुष्ठान करते रहना ही तप कहलाता है।

आत्मदर्शी महापुरुषों का, गुरुजनों का, विशेष विद्वानों का यथायोग्य सत्कार करना, शुद्धि और सरलता रखना, ब्रहाचर्य और सत्य–अहिंसा का पालन करना भी तप कहलाता है।

4. **स्वाध्याय** – जिस अध्ययन प्रक्रिया को दैनिक जीवन में अपनाने से 'स्व' को (अपने आपको) जानने समझने में सहायता मिले, वही स्वाध्याय कहलाता है।

कल्याणप्रद शास्त्रों का अध्ययन और अपने ईष्ट के नाम का जप, सुमिरन, पठन–यूनिटन एवं गुणानुवाद करने का नाम भी स्वाध्याय है। अपने ईष्ट के स्वरूप को बुद्धि में धारण कर अपने अन्तःकरण में उनका गुणानुवाद करना स्वाध्याय साधना की एक विधि है। इससे अहंकार मिटता है, अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा 'स्व' को जानने की क्षमता का विकास होता है।

5. **ईश्वर–प्रणिधान**

आप ईश्वर के जिस स्वरुप को मानते हो, अपने सभी कर्म उसी ईश्वर को अर्पण करते जाना तथा उन कर्मों के फलों को भी अपने भगवान के चरणों में अर्पण कर देना ही ईश्वर–प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर प्रणिधान में भावना यह होती है कि यह सब भगवान के आदेश पालन हेतु कर रहा हूँ। इस प्रकार बुद्धि से, वाणी से, शरीर से जितने भी पुण्य कर्म किये जायें वे सब उस भगवान को समर्पित करते जाना पूर्ण ईश्वर–प्रणिधान है।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 2.3

1. नियम कितने हैं? इनके नाम क्रम से लिखें।

.....

.....

.....

2. जीवन में संतोष कैसे ला सकते हैं?

.....

.....

.....

3. असली तप की क्या पहचान है?

.....

.....

.....

4. ईश्वर–प्रणिधान का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

5. क्या आप अपने जीवन में नियमों का पालन करेंगे? और क्यों?

.....

.....

2.1.3 आसन

मनुष्य जीवन में शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें 'स्थिरता और सुख' का आभास हो उसे 'आसन' कहते हैं।

'स्थिरसुखासनम्।' (पातंजल योगसूत्र 2/46)

सुखपूर्वक स्थिरता से बहुत समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में बैठे रहने का नाम 'आसन' है। इस सूत्र में मुख्यतः ध्यानात्मक असान की बात कही गयी है।

टिप्पणी

कम से कम एक प्रहर (3 घंटे का समय) तक एक आसन में सुखपूर्वक स्थिर और अचल भाव से बैठने को 'आसन सिद्धि' कहते हैं।

आसन विशेष प्रकार की शारीरिक मुद्रायें हैं जो मन और शरीर को स्थैतिक खिंचाव के द्वारा स्थिरता प्रदान करती हैं। इनका उद्देश्य तंत्रिका पेशीय खिंचाव और साधारण पेशीयतान में उचित सामन्जस्य स्थापित करना है। आसनों को करने के दो मूलभूत सिद्धांत हैं – सुखानुभूति और स्थिरता। इसका तात्पर्य है कि आसनों की प्रवृत्ति केवल शारीरिक न होकर मनोशारीरिक है। प्रत्येक आसन सहजता के साथ क्षमतानुसार करना चाहिए। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य लाभ करने के लिए योगासन अत्यन्त उपयोगी हैं। अतः शारीरिक क्षमता एवं लोच को बढ़ाने के लिए उपयोगी योगासनों का अभ्यास भी करना उचित बताया गया है।

योगासनों द्वारा आन्तरिक अवयवों की मालिश हो जाती है। अतः पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए आसन लाभकारी हो जाते हैं।

आसन के लाभ

- योगासन के द्वारा शारीरिक ढांचे व उसमें अन्तर्निहित संपूर्ण मांसपेशियों का व्यायाम होता है।
- शरीर सुंदर, स्वस्थ, सुडौल तथा लचीला बन जाता है।
- मांसपेशियों में अपूर्व बल आता है।
- अधिक से अधिक कार्य करने पर भी थकावट नहीं होती।
- आसनों के नियमित अभ्यास से सभी नस–नाड़ियों में रक्त का संचार आसानी से होने लगता है।
- शरीर को ऊर्जा मिलती है जिससे व्यक्ति तनाव मुक्त, व्याधि मुक्त, कष्ट मुक्त होकर श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकता है।

2.1.4 प्राणायाम

प्राण का अर्थ-जीवनी शक्ति है, और ''आयाम'' का अर्थ है – खिंचाव, विस्तार, फैलाव, विनियमन, आत्मसंयम अथवा नियंत्रण। इस प्रकार, प्राण का विस्तार करना तथा उसको बढ़ाना प्राणायाम कहलाता है। यदि सामान्य रूप से हम कहें तो ''प्राणायाम श्वांस लेने की योग कला है''

महार्षि पतंजलि ने विशेष रुप से सांस लेने तथा बाहर छोड़ने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के रुप में प्राणायाम को पारिभाषित किया है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगीतिविच्छेदः प्राणायामः। (पा.यो. सूत्र 2/49) अर्थात्

टिप्पणी

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास–प्रश्वास की गति का स्वतः रुक जाना 'प्राणायाम' कहलाता है। इस प्रकार प्राणायाम श्वसन क्रिया की एक तकनीक है जो सांस लेने वाले अंगों को तीव्रता से, लयबद्धता तथा गहनता के साथ क्रियाशील बनाती है।

इससे पहले आपको पूरक, रेचक तथा कुम्भक को समझना आवश्यक है–

- पूरक क्रिया द्वारा लंबी गहरी श्वास देर तक अंदर ली जाती है।
- रेचक द्वारा श्वास देर तक बाहर छोड़ी जाती है।
- कुम्भक द्वारा श्वास को रोका जाता है।

पूरक श्वसन संस्थान को उद्दीपित करता है। रेचक दूषित तथा विषैली वायु को बाहर निकालता हैं कुम्भक संपूर्ण शरीर के भीतर ऊर्जा का वितरण करता है।

प्राण तथा मानसिक दबाव, मानसिक दबाव तथा बौद्धिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति तथा आत्मा, आत्मा तथा ईश्वर के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। इस प्रकार, प्राणायाम का उद्देश्य शरीर में प्रेरणा, प्रोत्साहन, नियंत्रण तथा ओजस्वी शक्ति को संतुलित करना है। प्राणायाम के बिना योग परिपूर्ण नहीं होता। जिस प्रकार शरीर को स्वच्छ एवं शुद्ध करने के लिए स्नान करना आवश्यक है। इसी तरह से मस्तिष्क को तरो–ताजा एवं शुद्ध करने के लिए प्राणायाम आवश्यक है।

प्राणायाम के लाभ

- प्राणायाम का अभ्यास करने से फेफड़े मजबूत होते हैं।
- अधिक से अधिक मात्रा में शरीर में आक्सीजन पहुँचती है।
- मन की चंचलता दूर होती है।
- प्रश्वास की धारा के साथ शरीर के विकार निकलते हैं।
- शरीर और मन की शुद्धता होती है।
- प्राणायाम के द्वारा भावनाएं नियंत्रित होती हैं जो कि स्थिरता, एकाग्रता तथा मानसिक संतुलन प्रदान करता है।
- प्राणायाम के अभ्यास से साधक के फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है तथा अधिकतम वायु संचार करने में फेफड़े सक्षम होते हैं।

यद्यपि पातंजल योग सूत्र में किसी भी प्राणायाम का नाम उल्लेखित नहीं किया गया है, फिर भी हठयोग के ग्रन्थों में महत्वपूर्ण प्राणायाम के नाम निम्नलिखित हैं –

1. नाड़ी शोधन
2. उज्जायी
3. शीतली
4. सीत्कारी
5. चन्द्रभेदी
6. सूर्यभेदी
7. भस्त्रिका
8. प्लावनी
9. भ्रामरी आदि

2.1.5 प्रत्याहार –

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार को इस प्रकार परिभाषित किया है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्थस्वरूपानुकार इवेइन्द्रियाणां प्रत्याहारः

(पा. यो. सूत्र 2/54)

अपने–अपने विषयों के संग से अलग होने पर, इन्द्रियों का चित्त के रुप में विलय हो जाना 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार के द्वारा साधक का इंद्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता हैं शब्द, स्पर्श, रुप,रस व गंधादि की आसक्ति व्यक्ति को आत्म कल्याण के रास्ते से दूर हटाती है। इन्द्रियों की आसक्ति मन को विचलित कर देती हैं। इसलिए अभ्यास और वैराग्य द्वारा यथार्थ बोध से ही प्रत्याहार सिद्ध होने पर, इन्द्रियजय होता है। फिर साधक को भगवान में प्रीति, परम रस व परम सुख का अनुभव होने लगता है।

प्रत्याहार के साधन मानसिक शक्ति को विकसित करते हैं प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियां वश में हो जाती हैं। महर्षि पतंजलि कहते हैं– ***ततः परमावश्यते इन्द्रियाणां।*** (पा.यो. सूत्र 2/55) अष्टांग योग के अंतरंग का प्रवेश द्वार प्रत्याहार है।

2.1.6 धारणा

देशबंधश्चित्तस्य धारणा। (पा. यो. सूत्र 3/1)

नाभिचक्र, हृदयकमल आदि शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश या सूर्य–चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा कोई भी वस्तु, बाहर के देश हैं, उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम 'धारणा' है।

धारणा का अर्थ है – 'धारण करना'। मन में जब किसी विषय को धारण करने की योग्यता आ जाए, और कुछ देर तक उस विषय पर टिकने का, अभ्यास हो जाये तो मन की वैसी अवस्था धारणा है। धारणा में मन का विचरण व स्थान सीमित और निश्चित रहता है। धारणा के अभ्यास से मानसिक शक्ति का विकास होता है। मानसिक एकाग्रता के लिए यह उत्तम साधन है।

टिप्पणी

अष्टांग योग के उपर्युक्त अंग का अभ्यास चित्त एकाग्र करने का उपाय कहा जा सकता है। इस प्रकार मन को स्थूल विषय से प्रारंभ कर, सूक्ष्म लक्ष्य आत्मा–परमात्मा पर केन्द्रित करने को धारणा कहते हैं। धारणा, ध्यान की नींव है। जैसे–जैसे धारणा का अभ्यास परिपक्व होगा, वैसे–वैसे ध्यान का अभ्यास भी साथ–साथ होने लगेगा।

2.1.7 ध्यान

तत्त प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। (पा. यो. सूत्र 3/2)

जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात केवल ध्येय मात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना 'ध्यान' कहलाता है।

अथवा

यदि सरल शब्दों में कहें तो **चित्त की निरंतर सजगतापूर्वक एकाग्र रहने की क्रिया को ध्यान कहते हैं।**

ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में तो ध्यान शब्द प्रत्येक क्रिया से जुड़ा होता है जब भी हमारे घर व परिवार के बड़े बुजुर्ग किसी कार्य को विधिवत संपन्न करने हेतु कहते हैं तो सर्वत्र यही वाक्य होता है भाई ध्यान से पढ़ना, ध्यान से चलना, प्रत्येक कार्य को ध्यान से करना। आज हम ध्यान शब्द का प्रयोग तो करते हैं, परन्तु यह ध्यान क्या है, उस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। लेकिन जीवन के प्रत्येक कार्य के साथ जुड़े इस ध्यान शब्द से हम यह तो जान ही सकते हैं कि ध्यान जीवन का अपरिहार्य अंग है, जिसके बिना जीवन अधूरा है, और हम ध्यान के बिना अपने किसी भी भौतिक व आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से ही हम सदा आनंदमय व शांतिमय जीवन जी सकते हैं।

अपने आंतरिक जीवन के साथ लय, व सामंजस्य स्थापित करना ही ध्यान है। ध्यान द्वारा ही चेतना का विकास, इंद्रियों पर नियंत्रण तथा अपने ज्ञान व प्रकाश स्वरूप से सारूप्य स्थापित होता है।

2.1.8 समाधि

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरुपन्मिव समाधिः।। (पा. यो. सूत्र 3/3)

ध्यान करते–करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, तथा उसके अपने स्वरुप का अभाव सा हो जाता है, और उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का नाम 'समाधि' हो जाता है।

ध्यान ही जब केवल अर्थ या ध्येय (आत्मा या ईश्वर के स्वरुप या स्वभाव) को प्रकाशित करने वाला तथा अपने स्वरुप से शून्य हो जाता है तब उसे 'समाधि' कहते हैं।

समाधि वह अवस्था है, जहाँ साधक चेतना के उस बिंदु पर पहुँचता है जिससे परे कोई चेतना नहीं होती। यह चेतना का गहनतम स्तर है जहाँ व्यक्तित्व का बोध तो समाप्त हो जाता है पर अन्तर्बोध व सर्वबोध की शुरुआत हो जाती है। यह सजगता की वह उच्च अवस्था है, जहाँ साधक का मन भी कार्य नहीं करता और वह परम् शून्य की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जैसे अग्नि के बीच लोहा डालने पर वह भी अग्नि रुप हो जाता है, इस प्रकार परमेश्वर के दिव्यज्ञान आलोक में आत्मा प्रकाशमय होकर, शरीर भाव से ऊपर उठकर स्वयं को परमेश्वर के आनंद स्वरुप और पूर्ण ज्ञान में 'परिपूर्ण' हो जाती है, जिसे समाधि कहते हैं।

समाधिस्थ को कोई भी अस्त्र–शस्त्र काट या छेद नहीं कर सकता। कोई मनुष्य, हिंसक पशु एवं विषैले जीव उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। उस पर मारण–उच्चाटन मंत्र–तंत्र का भी प्रभाव नहीं होता और किसी भी प्रकार की वासना उसे फँसा नहीं सकती। योग से अष्ट सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं। (समाधि के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान की सिद्धि एवं युक्ताहार–विहार अनिवार्य है। एकाएक समाधि लगाना उचित नहीं है।)

यूनिटगत प्रश्न 2.4

रिक्त स्थान भरिए –

1. शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें स्थिरता और सुख का आभास हो उसे ..... कहते हैं।
2. श्वास–प्रश्वास की गति को नियंत्रित करना ..... कहलाता है।
3. अष्टांग योग के अंतरंग का प्रवेश द्वार ..... है।
4. चित्त को निरंतर एकाग्र करने की क्रिया को ..... कहते हैं।
5. शरीर के किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम .....है।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि –

- महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में योग के आठ अंगों को वर्णन करके परिष्कृत ढंग से प्रतिपादित किया है।

महर्षि पतंजलि ने समूचे योग क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया है –

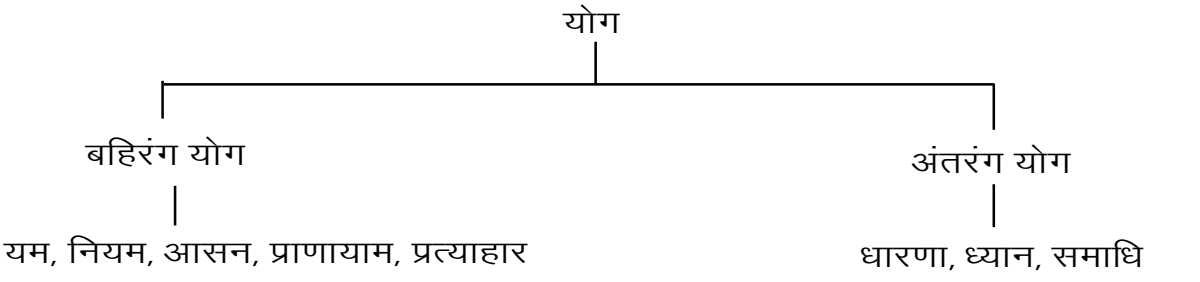

टिप्पणी

- आठ अंगों में प्रथम अंग है– यम। यम से अभिप्राय है– सामाजिक नियम व अनुशासन। यम को महाव्रत भी कहा जाता है। व्रत से तात्पर्य होता हैं 'शपथ के रुप में लिखा गया संकल्प।
- यम के बाद दूसरा अंग है 'नियम'। नियम वैयक्तिक अनुशासन व आत्म परिशोधन है। नियम के अंतर्गत हमने जाना कि हमें अपने आप से कैसा व्यवहार करना चाहिए।
- तीसरा अंग है– आसन मनुष्य जीवन में शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें 'स्थिरता और सुख' का आभास हो उसे 'आसन' कहते हैं। ***'स्थिरसुखासनम्।'*** (पातन्जल योगसूत्र 2/46)
- चतुर्थ अंग है – प्राणायाम। प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति और ''आयाम'' का अर्थ है – खिचाव, विस्तार, फैलाव, विनियमन, आत्मसंयम अथवा नियंत्रण। इस प्रकार, प्राणायाम का अर्थ प्राण का विस्तार करना तथा उसको बढ़ाना है।
- पाँचवां अंग है– धारणा। अपने–अपने विषयों के संग से अलग होने पर, इन्द्रियों का चित्त के रुप में विलय हो जाना 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार के द्वारा साधक का इंद्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता हैं शब्द, स्पर्श, रुप,रस व गंधादि की आसक्ति व्यक्ति को आत्म कल्याण के रास्ते से दूर हटाती है।
- छठा अंग है – धारणा। नाभिचक्र, हृदयकमल आदि शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश या सूर्य–चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा वस्तु बाहर के देश हैं, उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम 'धारणा' है।
- साँतवां अंग है – ध्यान। जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना।
- आठवां अंग है– समाधि। ध्यान करते–करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, व उसके अपने स्वरुप का अभाव सा हो जाता है, और उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, तो उस समय उस ध्यान का नाम 'समाधि' हो जाता है।
- प्रथम दोनों अंग यम व नियम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन अंगों को अपने जीवन में धारण करने के बाद ही योग आसनों, प्राणायाम ओर ध्यान का समुचित लाभ योगी को मिल पाता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. अष्टांग योग के आठ अंग कौन –कौन से हैं? प्रथम दो अंगों पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये।

2. महर्षि पतंजलि ने योग क्षेत्र को कितने भागों में विभक्त किया है? अंतरंग के तीनों अंगों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. बहिरंग से क्या तात्पर्य है? इसके किन्हीं तीन अंगों का वर्णन कीजिए।
4. यम से आप क्या समझते हैं? पाँचों यमों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

1. आसन
2. प्राणायाम
3. प्रत्याहार
4. ध्यान
5. धारणा

1. यम, नियम, आसन,प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि
2. उन अभ्यासों से है, जिनका लक्ष्य बाहर परन्तु शरीर समाज तथा अन्य विषयों के संदर्भ में होता है।

2.2

1. बुद्धि, वाणी और शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार से कष्ट न देना।
2. दूसरे के द्रव्य को मिट्टी के समान समझे।
3. ब्रह्म में विचरना होता है।

2.3

1. पाँच होते हैं– **शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान**
2. सुख–दुःख, अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदैव संतुष्ट रहने का नाम **'संतोष'** है।
3. मन और इन्द्रियों के संयमरुप धर्म पालन करने के लिए कष्ट सहना ही **'तप'** कहलाता है।
4. कर्मों के फलों को भी अपने ईश्वर के चरणों में अर्पण कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है।

3

यौगिक संस्कृति (नैतिक शिक्षा)

पिछले यूनिट में आप महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में वर्णित आठों अंगों के विषय में पढ़ चुके हैं। आप जानते हैं कि आठ अंगों में से प्रथम दोनों अंग – यम और नियम मनुष्य के जीवन का मार्ग दर्शन करते हैं, और योगमय जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं। इन दोनों अंगों को अपने जीवन में धारण करने के उपरांत ही योगी को योगासनों, प्राणायाम, ध्यान आदि अंगों का समुचित लाभ मिल पाता है। यौगिक संस्कृति का लक्ष्य मनुष्य जीवन को सम्पूर्णता प्राप्त कराना रहा है। मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके और अपने जन्म व कर्म को सार्थक कर सके, इसके लिये यौगिक संस्कृति मार्ग प्रशस्त करती है। चूंकि जीवन में संपूर्णता लाने, उद्देश्यों की पूर्ति करने और जन्म को सार्थक

चित्र 3.1: यौगिक जीवन दर्शन

करने के इस मार्ग को हमारे ऋषियों–मुनियों ने योग के साथ प्रशस्त किया इसीलिए इसे यौगिक संस्कृति कहा गया। इन ऋषि–मुनियों से इस संस्कृति को मानव समाज द्वारा धारण कर लिया गया और एक के बाद एक आने वाली पीढ़ियों ने अपने पूर्वजों से इस संस्कृति को अपनाना शुरू कर दिया। अतः यह भारतीय संस्कृति के रूप में विख्यात हुई। जन्म मिलने के बाद पुरुषार्थ की साधना से मनुष्य अपने जीवन को संवार सकता है। भारतीय संस्कृति में जीवन के सभी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक–व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक आयामों का विकास करने और संपूर्ण जीवनकाल को व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था की गई है और ये चारों आश्रम–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास, व्यक्ति के चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस यूनिट में हम यौगिक संस्कृति अर्थात् भारतीय संस्कृति का अध्ययन करेंगे और जानेंगे कि किस प्रकार मनुष्य अपनी पुरुषार्थ की साधना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर सकता है, और उसे कैसा जीवन जीना चाहिए? साथ ही, आधुनिक जीवन के संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों का संबंध भी जान सकेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- संस्कृति की अवधारणा, पुरुषार्थ, आश्रम, नैतिक शिक्षा के सिद्धांतों को अभिव्यक्त कर सकेंगे;
- आश्रमों व नैतिक शिक्षा के सिद्धांतों का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक युग के संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों के संबंध का वर्णन कर सकेंगे।

संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति शब्द 'सभ्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (चं) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।

संस्कृति सामाजिक अंतःक्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है। इस समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं प्रथाएं समाविष्ट होती हैं। संस्कृति भौतिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के साथ मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और सम्यक्चेष्टाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति है। यह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन और नियंत्रण करती है। अतः संस्कृति मनुष्य की जीवनपद्धति, वैचारिक दर्शन एवं सामाजिक क्रियाकलाप में उसे समष्टिवादी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना है।

चित्र 3.2: भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति में श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए जो दर्शन दिया है, आइये यहां पर, उसका हम संक्षिप्त में अध्ययन करते हैं —

3.1 पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— ये चार पुरुषार्थ कहे गए हैं। पुरुषार्थ शब्द का अर्थ है— **"पुरुषैः अथ्यते"** अर्थात् मनुष्य जिसकी याचना करे। याचना उसी वस्तु की होती है जिसकी इच्छा होती है। इसलिए मनुष्य जिसको प्राप्त करना चाहता है उसी को पुरुषार्थ कहते हैं।

पुरुषार्थ मानव जीवन का दर्शन एवं अभिव्यक्ति है। जीवन की सभी सम्भावनाओं, कामनाओं, आकांक्षाओं से लेकर आत्मस्वरूप की प्राप्ति तक सभी कार्य पुरुषार्थ द्वारा ही सम्भव होते हैं। मनुष्य जन्म मिलने के बाद पुरुषार्थ की साधना द्वारा जीवन को संवारा और गढ़ा जा सकता है। जीवन के समस्त कार्य भाग्य और पुरुषार्थ के अधीन रहते हैं। इन दोनों में भाग्य गौण होता है और पुरुषार्थ ही मुख्य होता है। भाग्यवादी न बनकर हमें पुरुषार्थी बनना चाहिए। पुरुषार्थी व्यक्ति ही सौभाग्य, सम्पदा और सम्मान प्राप्त करता है। समृद्धि और सम्पन्नता पुरुषार्थ करने वाले मनुष्य को प्राप्त होती है। आलसी व भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले मनुष्यों के पास यदि लक्ष्मी है तो वह भी कुछ दिनों में वहां से चली जाती है।

मनुष्य जन्म तो भाग्य के अधीन होकर प्राप्त हुआ है, परन्तु अथक पुरुषार्थ करना मनुष्य के वश में होता है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान हैं, जबकि पुरुषार्थी मनुष्य संकल्प बल और इच्छा शक्ति के बल पर काल की गति को तोड़ने और मरोड़ने की सामर्थ्य रखता है।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन के कर्तव्यों को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त करने वाली विद्या को पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा दी गई है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्टय कहा गया है। इन्हीं चारों पुरुषार्थों पर मनुष्य जीवन आधारित है। सम्पूर्ण जीवन, अर्थ और काम की प्राप्ति हेतु हम सभी प्रयासरत रहते हैं। किन्तु कुछ लोग उक्त दोनों के पश्चात् धर्म की ओर उन्मुख होते हैं तथा कुछ अत्यन्त अल्प संख्या में उनसे आगे बढ़कर मोक्ष की ओर उन्मुख होते हैं। इसलिए कहा गया है कि अविद्या के द्वारा धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति की जा सकती है तथा विद्या द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः मनुष्य को जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु प्रयास करना चाहिए। आइए, इन चारों पुरुषार्थों के विषय में विस्तार से जानते हैं—

3.1.1 धर्म

धर्म शब्द 'धृ' धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका मुख्य अर्थ धारण करना, आलम्बन देना या पालन करना होता है। जिसे धारण किया जाये, उसे धर्म कहते हैं। अर्थात् जो श्रेष्ठ बनने के लिए धारणीय, आचरणीय, पालनीय है, वह सभी धर्म के अन्तर्गत आते हैं। मनुष्यों और पशुओं में आहार, निद्रा, भय और संतानोत्पत्ति करना दोनों में समान प्रवृतियां होती हैं। यदि मनुष्य में पशुओं से अधिक कुछ श्रेष्ठ है तो वह उसकी विवेक बुद्धि, उसके आचार और धर्म हैं। मनुष्य के उत्कृष्ट नैतिक आचरण के कारण ही उसे सभ्य कहा जाता है। अर्थात् धर्म मनुष्य को सभ्य बनने की राह पर लेकर चलता है। इसलिए भारत के प्राचीन मनीषियों ने कहा है कि **"धर्मो रक्षति रक्षितः"** अर्थात् सदा धर्म की रक्षा करो, वह तुम्हारी रक्षा करेगा।

चित्र 3.3: धार्मिक आचरण

टिप्पणी

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये गए अपराध को क्षमा कर देना, क्षमाशील होना), दम (मन को नियंत्रित करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि होना), विद्या (ज्ञानवान होना), सत्य एवं अक्रोध (क्रोध न होना)– ये धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं। जहां ये हैं, वहीं धर्म है।

धर्म के भेद– भारतीय ऋषियों ने मुख्यतया धर्म के तीन भेदों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार हैं–

सामान्य धर्म– सामान्य धर्म के अन्तर्गत वे सभी तत्व आते हैं जिनका सबको पालन करना होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का पालन सभी के लिए अनिवार्य है। अभिवादन, अतिथि सत्कार आदि सामान्य धर्म कहे जाते हैं।

विशिष्ट धर्म– विशिष्ट धर्म का अर्थ यहां पर व्यक्ति विशेष, समाज, वर्ग आदि से लगाया जाता है। इसका उत्कृष्ट अर्थ स्वधर्म का पालन करना होता है। व्यक्ति जिस सामाजिक संरचना, परिवेश से जुड़ा होता है उससे सम्बन्धित नियमों व आचरणों का पालन करना होता है। स्थान, काल, पात्रता के अनुसार कर्तव्यों का निर्धारण होता है, उसे ही विशिष्ट धर्म की संज्ञा दी गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वधर्म पालन करने की प्रेरणा दी गई है। कहा गया है कि दूसरे के कर्म करने में शांति नहीं मिलेगी। स्वयं के कर्तव्यों को पूरा करने से (स्वधर्म पालन करने से) ही मनुष्य को शांति व सुख प्राप्त होता है।

आपद् धर्म– जिसकी आज्ञा केवल आपातकाल के समय ही सम्पन्न करने की होती है, इसलिए उसे आपद धर्म कहा गया है। जैसे किसी के प्राण संकट में पड़ गये हों और आपके असत्य बोलने से उसके प्राण बचते हों तो उस परिस्थिति में असत्य भाषण का दोष नहीं लगता है।

3.1.2 अर्थ

द्वितीय पुरुषार्थ के रूप में अर्थ को मान्यता प्राप्त है। अर्थ शब्द 'ऋग्' धातु से उत्पन्न होता है जिसका अर्थ गति होता है। अर्थात् जिससे जीवन गतिमान होता है, वही अर्थ कहलाता है। ध र्म का मूल भी अर्थ ही माना गया है। भूमि, धन, विद्या, कला और कृषि तथा आजीविका सम्बन्धी सभी वस्तुओं का नाम अर्थ माना गया है। प्राचीन काल में अर्थ के लिए जो वस्तुएं प्रचलित थीं वे आज के समय में उपलब्ध नहीं हैं। जो वर्तमान समय में प्रचलित हैं, जो पहले प्रचलन में नहीं थीं। अतः जीवन संचालन में काम आने वाली सभी वस्तुएं अर्थ ही कही जाती हैं।

जीवन संचालन के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। बिना अर्थ के धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं हो पाती है। मनुष्य में कामनायें, इच्छाऐं होना स्वाभाविक है। कामनाओं की पूर्ति हेतु अर्थ एक अनिवार्य साधन हमेशा से रहा है। अर्थ समस्त कार्य व्यवहार का संचालनकर्ता है। इसके अभाव में जीवन निर्वाह करना असम्भव है। पुरुषार्थ सिद्धान्त में सांसारिक कर्तव्यों के पालन एवं दायित्वों की पूर्ति हेतु अर्थ का उपार्जन आवश्यक समझा जाता है। अतः आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता होनी आवश्यक है। धन–सम्पदा अर्जित करने के लिए मानव को अपनी व्यक्तिगत –सामर्थ्य का उपयोग करना चाहिए। किन्तु यह अर्थ शुचितापूर्वक ध र्माचरण करते हुए अर्जित किया जाना ही श्रेयस्कर है।

3.1.3 काम

काम का अर्थ है– कामना या इच्छा। मनुष्य की एक ही महत्वपूर्ण इच्छा होती है कि वह सुखपूर्वक जीवन यापन करे। उसे जिस–जिस पदार्थ में सुख की अनुभूति होती है, वह उसे प्राप्त करना चाहता है, तथा जिससे दुःख की अनुभूति होती है, उसे छोड़ना चाहता है। समस्त सुख साधनों की इच्छा काम के अन्तर्गत आती है। उपस्थेन्द्रिय के माध्यम से प्राप्त सुख की अनुभूति मुख्य होने के कारण इसे काम का प्रधान लक्षण मान लिया गया है। समस्त कामनाएं, इच्छाएं मनुष्य के लिए सुख की खोज का अंग हैं, जिन्हें वह जन्म से मृत्युपर्यन्त (सम्पूर्ण जीवन में) चाहता रहता है और अन्ततः इस संसार से अतृप्त ही चला जाता है क्योंकि ये समस्त सुख–साधन क्षणिक सुखाभास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। परमसुख (परमानन्द) का स्रोत तो परमात्मा है। अतः शास्त्रों में यह निर्देश है कि काम का उपयोग भी धर्म आधारित हो, जिससे हम उन कामनाओं में अटककर न रह जाएं और न ही उस परमलक्ष्य मोक्ष को भूल जाएं। इन्द्रिय सुखों का ध्यान रखकर भी उस परमसत्य तत्व की प्राप्ति का प्रयास करते रहें। अर्थ और काम का भोग मोक्ष की ओर ले जाने वाला तभी होगा जब हम धर्म के साथ इनका आचरण करेंगे अन्यथा यह बन्धन का कारण होकर हमें अनन्त दुःख के सागर में धकेल देगा।

चित्र 3.4: कामनाओं में आसक्ति

टिप्पणी

3.1.4 मोक्ष

भारतीय संस्कृति मनुष्य जीवन को उद्देश्यपूर्ण मानती है। इसलिए जीवन के परम लक्ष्य के प्रति पथ प्रदर्शित करती है। पुरुषार्थ सिद्धान्त में अन्तिम मोक्ष का वर्णन किया गया है। धर्मपूर्वक अर्थ व काम का उपभोग करते हुए मानव मोक्ष की प्राप्ति करने का प्रयत्न करता है।

मोक्ष का शब्दार्थ है– बन्धन मुक्त होना। बन्धन का कारण अविद्या है। अविद्या के कारण मनुष्य बार–बार जन्म–मरण के फेर में पड़ा रहता है। उपनिषदों की मूल शिक्षा यही है कि मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है तो इसी जन्म में आनंदमय परमात्मा को पा लिया जाए तो यह मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। अतः इसी जन्म में मोक्ष की प्राप्ति का साधन मनुष्य को करना चाहिए। जिससे इस संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा प्राप्त करके उस परमसुख, परमानन्द को प्राप्त कर सकें जो केवल परमपिता परमेश्वर की सन्निधि में ही प्राप्य है। अतः जीवन के लक्ष्य मोक्ष तक पहुंचने के लिए भारतीय ऋषियों के बताए मार्गों का अनुसरण करते हुए जीवन यापन करने का आदेश और सन्देश हमारे शास्त्रों द्वारा प्रदान किया गया है।

यूनिटगत प्रश्न 3.1

1. मानव समाज ने यौगिक संस्कृति को कहां से प्राप्त किया है?

.....

.....

.....

.....

2. पुरुषार्थ का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

3. धर्म किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

4. चारों पुरुषार्थ के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.2 आश्रम व्यवस्था

भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण जीवनकाल को व्यवस्थित करने के लिए आश्रम व्यवस्था के रूप में नियोजित किया गया है। जीवन के सभी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक–व्यावहारिक तथा अध्यात्मिक आयामों का विकास किया जा सके, इसलिए ऋषियों ने आश्रम व्यवस्था का निर्धारण किया था। मनुष्य अपनी आयु के विभिन्न पड़ावों पर भिन्न–भिन्न उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जीवन की आयु को 100 वर्ष मानकर इसे चार आश्रमों में बांटा गया है और प्रत्येक आश्रम से सम्बन्धित व्यक्ति के दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। प्रथम पच्चीस वर्ष शरीर, मन और बुद्धि के विकास के लिए निर्धारित किया गया है जिसे ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है। द्वितीय पच्चीस वर्ष गृहस्थ आश्रम के लिए समर्पित किये गए हैं, जिसमें पति–पत्नी के रूप में धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए अपने नागरिक कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन यापन किया जाता है। तीसरे पच्चीस वर्ष गृहस्थ जीवन से मुक्त होकर पारमार्थिक जीवन जीने के लिए वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया जाता है। जीवन के अन्तिम पच्चीस वर्ष मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास आश्रम में प्रवेश कर जाते हैं।

चारों पुरुषार्थों का भी इन चार आश्रमों से घनिष्टतम सम्बन्ध है। आश्रमों के माध्यम से चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सम्भव होती है। ब्रह्मचर्य आश्रम से मनुष्य धर्म के तत्वों को जानकर ज्ञानी बनता है। गृहस्थ आश्रम में उसी ज्ञान के प्रयोग से अर्थ व काम प्राप्त करता है, और मानव के सदाचरण के नियमों का पालन करता हुआ ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यासी तीनों आश्रमों का पालन करने का दायित्व भी निर्वाह करता है। वानप्रस्थ आश्रम समाज सेवा के लिए रखा गया है। संन्यास आश्रम में मोक्ष प्राप्ति की साधना की जाती है। अतः चारों आश्रम व्यक्ति के चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम के विषय में विस्तार से जानने के लिए आइये क्रमशः इन पर दृष्टि डालते हैं।

टिप्पणी

3.2.1 ब्रह्मचर्य आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम मानव जीवन का प्रथम सोपान है। प्राचीन काल में उपनयन संस्कार के साथ ही यह आश्रम प्रारंभ हो जाता था। इस आश्रम के अन्तर्गत गुरू बालक को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करके अपने आश्रम में रखकर विभिन्न विद्याओं में पारंगत करने का दायित्व निभाते थे। इस आश्रम में बालक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरु से शिक्षा ग्रहण करता था।

ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए ब्रह्मचारी का मुख्य कर्म है कि अपने गुरु से विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान एवं समस्त विद्याओं का प्रशिक्षण प्राप्त करे। इन विद्याओं का ज्ञान एवं प्रशिक्षण भौतिक संसार में उन्नति, बाधाओं से निपटने और संभावनाओं को साकार करने के लिए तथा पराभौतिक व्यक्तियों एवं आध्यात्मिक उन्नति से सम्बन्धित भी होता था।

इस आश्रम में ब्रह्मचारी का समग्र विकास हो सके, इस बात का ध्यान रखा जाता था। शारीरिक विकास के लिए खेलों, व्यायामशालाओं का प्रचलन था। सामाजिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिए कथानकों एवं घटनाओं का सहारा लिया जाता था। धर्मानुसार आचरण करना, नीति, नियमों का पालन करना आदि सीखता था। मानसिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आसन–प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास कराया जाता था। इस आश्रम में ब्रह्मचारी का प्रमुख धर्म गुरु की सेवा, गुरु की कृपा प्राप्त करना होता था। पच्चीस वर्ष की आयु तक शेष जीवन जीने की योग्यता प्राप्त कर अगले गृहस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान करता था। आधुनिक शिक्षण व्यवस्था में गुरु–शिष्य का सम्बन्ध इस प्रकार का नहीं रहने के कारण समाज में अच्छे नागरिक नहीं मिल रहे हैं।

3.2.2 गृहस्थ आश्रम

प्रारंभिक ब्रह्मचर्य आश्रम का जीवन पूर्ण करने के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि इस आश्रम में रहकर परिवार, समाज, राष्ट्र की सेवा करने का अवसर प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम में रह रहे लोगों के भोजन, वस्त्र एवं अन्य आवश्यक सामग्री गृहस्थों से ही प्राप्त होती है।

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश आचार्य की अनुमति मिलने के बाद ही होता था। जब आचार्य यह समझ लेते थे कि ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म के पालन में सक्षम है, तभी उसको अगले गृहस्थ में प्रवेश की आज्ञा मिल जाती थी। स्त्री–पुरुष के बीच विवाह संस्कार के साथ साथ ही एक दम्पत्ति के रूप में गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ हो जाता है। विवाह का उद्देश्य यौन संतुष्टि और सन्तानोत्पत्ति होता है। सन्तान उत्पत्ति से समाज सन्तुलन और निरन्तरता बनी रहती है। गृहस्थ आश्रम में रहकर मनुष्य ऋणों से मुक्त होने के उपाय भी करता है। होम, यज्ञादि से देव ऋण से मुक्त होता है। वेद मंत्रों के यूनिटन, जपादि से ऋषि ऋण से मुक्ति प्राप्त होती है। माता–पिता की सेवा, व विधानयुक्त उनके अंतिम संस्कार से पितृ ऋण से मुक्ति मिलती

टिप्पणी

है। अतिथियों की सेवा, पशु–पक्षियों के लिए अन्न–जल का प्रबन्ध करना, वृक्षारोपण, नदियों का पूजन भी समाज–वातावरण के भार से मुक्त करता है।

3.2.3 वानप्रस्थ आश्रम

वानप्रस्थ आश्रम इस व्यवस्था का तीसरा महत्वपूर्ण आश्रम है। गृहस्थ आश्रम में रहकर विधिवत् धर्म का पालन करके जब गृहस्थ यह देखे कि उसके बाल श्वेत होने लगे हैं, और उसके पुत्र का भी पुत्र हो गया हो तो उस व्यक्ति को वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। इस आश्रम का पालन करने के लिए व्यक्ति अपने निकट सम्बन्धियों से अलग होकर एकान्तवास के लिए वन की ओर प्रस्थान करता है। पत्नी को अपने पुत्रों के संरक्षण में या अपने साथ भी रख सकते हैं।

वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सीमित करके तपस्या से युक्त जीवन–यापन करता है। इस आश्रम में सांसारिक मोह –माया से विमुख होकर व्यक्ति निष्काम कर्म में लग जाता है। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति आश्रमों में गुरु का दायित्व निर्वहन करता है तथा विद्यार्थियों के ज्ञान–विद्यादि के शिक्षण–प्रशिक्षण के महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न हो जाता है। इस आश्रम में रहकर व्यक्ति को मानसिक रूप से संन्यास आश्रम के लिए अपने आपको तैयार करना होता है।

3.2.4 सन्यास आश्रम

आयु के अन्तिम पड़ाव में संन्यास ग्रहण करने का विधान किया गया था। आश्रम व्यवस्था में सन्यास आश्रम चतुर्थ और अन्तिम आश्रम है। संन्यास शब्द का सामान्य अर्थ है त्यागना, या त्याग कर देना। मनुष्य जब संसारिक भोगों, इच्छाओं और फलों का त्याग कर देता है, तब वह संन्यासी हो जाता है। पिछले तीनों आश्रमों के बाद संन्यास आश्रम प्रारम्भ हो जाता है। संन्यास आश्रम में प्रवेश का वही अधिकारी माना गया है जिसने अपने पिछले तीनों आश्रमों में रहकर अपने कर्तव्यों का पालन कर लिया हो। वह तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। इसलिए यज्ञोपवीत धारण नहीं करता।

संन्यासी सांसारिक सुखों का परित्याग कर देता है। उसके पास कोई घर, सम्पत्ति आदि नहीं होता है। वह भिक्षा से प्राप्त अन्न, वस्त्रादि ग्रहण करता है। वर्षा ऋतु में एक ही स्थान पर रहकर समय व्यतीत करता है तथा अन्य ऋतुओं में भ्रमणशील होकर रहता है। संन्यासी गेरुए वस्त्र धारण करता है। भिक्षा पात्र, दण्ड और कमण्डल लेकर विचरण करता है।

संन्यासी मोक्ष प्राप्ति के निमित्त मोह–माया, स्नेह, घृणा, प्रेम, द्वेष आदि से सदा ऊपर उठ जाता है। व्यक्ति इस आश्रम में मोक्ष प्राप्ति की साधना में निमग्न होकर उसे प्राप्त करता है।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 3.2

1. आश्रम व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. जीवन की आयु को 100 वर्ष मानकर इसे कितने आश्रमों में बांटा गया है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. ब्रह्मचर्य आश्रम मानव जीवन का कौन–सा सोपान है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व

भारतीय शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु विभिन्न साधनों का उल्लेख किया गया है। उनमें साधन चतुष्टय के रूप में विख्यात विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व को विशेष स्थान प्राप्त है। इनके माध्यम से साधक तत्व ज्ञान की प्राप्ति करके विरक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है तथा साधन रूप में शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा व समाधान को अपनाकर उसका मुमुक्षुत्व दृढ़ हो जाता है। तब निश्चय ही मोक्ष रूपी परमपद की प्राप्ति सम्भव होती है। अतः इनके पालन के लिए साधक को निर्देश दिया गया है।

3.3.1 विवेक

मानवीय जीवन में विवेक का महत्वपूर्ण स्थान है। जो व्यक्ति विवेकयुक्त कार्य करते हैं उन्हे सफलता अवश्य प्राप्त होती है। विवेकहीन व्यक्ति ही संसार में असफलता को प्राप्त करते हैं। यह तो विवेक का लौकिक दृष्टिकोण हुआ। किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से विवेक का तात्पर्य है नित्यानित्यवस्तु विवेक। विवेक से तात्पर्य नित्य वस्तु एक मात्र ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त जगत अनित्य है, मिथ्या है। यहि नित्यानित्यवस्तुविवेक है। आचार्य शंकर ने विवेक चूड़ामणि में लिखा है कि **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्यः सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः।** अर्थात् ब्रह्म सत्य है, और जगत् मिथ्या है, ऐसा जो निश्चय है, यही नित्यानित्यवस्तु विवेक कहलाता है।

यह जो संसार दिखायी देता है, वह माया से उत्पन्न माना गया है। माया से उत्पन्न संसार नाशवान है। इसलिए यह अनित्य और मिथ्या है। माया का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म की सत्ता से ही वह सत्तायुक्त है। जिस प्रकार हमारा शरीर इस ब्रह्माण्ड का एक अंश मात्र है। इस शरीर में जब तक चैतन्य स्वरूप आत्मा निवास करती है, तभी तक वह जीवित तथा उसका अस्तित्व बना रहता है। शरीर से आत्मा के निकलते ही शरीर निश्चेष्ट होकर पड़ा रह जाता है और अन्त में नष्ट कर दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार से इस विश्व ब्रह्माण्ड के भीतर भी एक आत्मा है जिसे ब्रह्म नाम से जाना जाता है। जब तक उसका संयोग ब्रह्माण्ड के साथ बना रहता है, तब तक ही जगत् का अस्तित्व बना रहता है। उसके पश्चात् यह भी नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार इस शरीर की अवधि है उसी प्रकार इस जगत की अवधिपूर्ण होने पर नष्ट होकर अव्यक्त अवस्था में चला जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य वस्तु है। इस प्रकार सत्य वस्तु ब्रह्म है, इसका निश्चय कर लेना ही विवेक है।

इस संसार में रहते हुए इस अनित्य, नाशवान नाम रूप जगत् को सत्य न मानकर विवेकशील व्यक्ति आचरण करता है तो लिप्त न होने के कारण इससे स्वयं को अलग रूप में जान लेता है। आत्म तत्व नष्ट होने वाला नही है, तथा समस्त सृष्टि भी सदा रहने वाली नहीं है। इसलिए शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, समस्त भोग, ऐश्वर्य आदि नाशवान होने से त्याज्य हैं। इसका विवेक ज्ञान बुद्धि में उत्पन्न हो जाता है तो वैराग्य भाव दृढ़ हो जाता है।

3.3.2 वैराग्य

वैराग्य के विषय में कहा गया है– **इहस्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम्।** अर्थात् इस लोक और स्वर्ग आदि दिव्य लोकों के भोगों की इच्छा का परित्याग कर देना ही वैराग्य है। आचार्य शंकर लिखते हैं **तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः। देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तूनि।** अर्थात् देखे एवं सुने हुए भोगों को देह से लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण नाशवान भोग्य पदार्थों में जो घृणाबुद्धि है, वही वैराग्य है। जो मुमुक्षु हैं, वे वैराग्य भाव उत्पन्न करके ही उसकी ओर बढ़ सकते हैं। बिना वैराग्य के इस संसार में ही पुनः जन्म–मरण के चक्र में पड़े रहना पड़ता है।

टिप्पणी

3.3.3 षट्सम्पत्ति

षट्सम्पत्ति से तात्पर्य है शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान। इनका वर्णन निम्नानुसार है–

शम–मन का निग्रह करना शम कहलाता है। शम के विषय में कहा गया है–**शमो नाम आन्तरिन्द्रिनिग्रहः** अर्थात् शम से तात्पर्य है– ''आन्तरिन्द्रिय निग्रह करना''। आन्तरिन्द्रिय मन को कहा जाता है। शम को परिभाषित करते हुए आचार्य शंकर ने लिखा है– **विरज्य विषयव्रताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः। स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते।** अर्थात् बारम्बार दोष–दृष्टि करने से विषय–समूह से विरक्त होकर चित्त का अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाना ही "शम" कहलाता है।

दम–दम के विषय में कहा गया है **दमो नाम बाह्येन्द्रिय निग्रह** अर्थात् बाह्य इन्द्रियों का निग्रह करना ही दम कहलाता है। शंकराचार्य जी ने दम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि **विषेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वलोके। उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः।** अर्थात् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को उनके विषयों से खींचकर अपने अपने गोलकों में स्थित करना दम कहलाता है। इन्द्रियों से ही हम विषय–भोगों का सेवन करते हैं। इन्द्रियों का संयम करना दम के अन्तर्गत आता है।

उपरति–उपरति का अर्थ है उपराम हो जाना, विरति हो जाना। वस्तु की प्राप्ति होने पर भी उदासीन भाव धारण कर लेना उपरति है। इन्द्रियों को विषयों से विमुख कर सब कामनाओं का त्याग करना भी उपरति कहलाता है। आचार्य शंकर ने उपरति के विषय में कहा है कि उपरमः कः? **स्वधर्मानुष्ठानमेव**। अर्थात् उपरम किसे कहते हैं? इस प्रकार का उत्तर देते हुए कहते हैं कि स्वधर्म यानि अपने धर्म का अनुष्ठान करना। अर्थात् जगत के विषयों में जो अनुराग है उसका परित्याग करके चित्त को स्वस्थ बनाकर अन्तरात्मा में लगाये रखना, इसी का नाम उपरति है।

तितिक्षा–तितिक्षा का दूसरा नाम तप भी है। समस्त कष्टों, कठिनाइयों को सहन करना **''तितिक्षा''** कहलाता है। शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्दों को सहन करना ही तितिक्षा कहलाता है। आचार्य शंकर ने तितिक्षा के विषय में लिखा हैं **सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्। चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते।** अर्थात् चिन्ता और शोक से रहित होकर बिना प्रतिकार किये सब प्रकार के कष्टों को सहन करना तितिक्षा कहलाता है। महर्षि पतंजलि ने तप का फल बताते हुए कहा है कि तप के प्रभाव से शरीर की अशुद्धियों का क्षय हो जाता है तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धा–वेद, वेदान्त एवं गुरु के कहे वाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल विश्वास का नाम श्रृद्धा है। जैसे कहा गया है **"गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासःश्रद्धा"** अर्थात् अपने गुरु, वेद, वेदान्त आदि शास्त्रों के वाक्यों में जो दृढ़ विश्वास है, आस्था है, उसे ही श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा जहां होती

है वहां समर्पण होता है। श्रद्धा में संशय नहीं होता है। जहां संशय होता है, वहां श्रद्धा नहीं हो सकती। संशयरहित निश्चयात्मक स्थिति होना उत्थान का कारण है, इसी का नाम श्रद्धा है।

समाधान—चित्त की एकाग्रता का नाम समाधान है। चित्त में अनेक प्रकार के मल—विक्षेपों तथा संस्कारों के आवरणों के कारण वह चंचल, चलायमान रहता है। परन्तु मलों के क्षीण हो जाने पर चित्त स्वस्थ, एकाग्र और प्रशांत हो जाता है। तप, तितिक्षा, योगसाधनादि और गुरुसेवा के द्वारा मल—विक्षेपों को दूर कर लिया जाता है। तभी चित्त स्थिर होकर आत्मानुसंधान में लग जाता है। आचार्य शंकर ने समाधान को परिभाषित करते हुए लिखा है **सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा। तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्।** अर्थात् अपनी बुद्धि को सब प्रकार शुद्ध ब्रह्म में ही सदा स्थिर रखना, इसी को समाधान कहा है। चित्त की इच्छापूर्ति का नाम समाधान नहीं है।

3.3.4 मुमुक्षुत्व

संसार दुःखमय है, ऐसा सभी आप्तपुरुषों ने माना है। आध्यात्मिक दुःख, आधिभौतिक दुःख और आधिदैविक दुःख ये तीन दुःख या त्रिताप कहे गये हैं। इन्हीं तीनों दुःखों, त्रितापों से समस्त प्राणि त्रस्त, संतप्त है। अतः **इस दुःखमय संसार से तर कर मोक्षरूप अमृत की प्राप्ति करने की तीव्र इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते हैं।**

मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की तीव्र इच्छा व लालसा का होना।

चित्र 3.5: मोक्ष की इच्छा

टिप्पणी

संसार की अनित्यता (नाशवान) सुखों की क्षणिकता, विषयों की प्राप्ति की चिंताओं की दाहकता, शरीरादि की क्षणभंगुरता को जब अनुभव कर लिया जाता है तो चित्त उन विषयों और पदार्थों से विमुख हो जाता है। तीव्र वैराग्य प्रकट होने पर नित्यानंद की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की उत्कट इच्छा प्रकट हो जाती है। उसी अवस्था को मुमुक्षत्व कहा गया है। इसलिए मुमुक्षु पुरुष परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि **संसार बन्धनिर्मुक्तः कथमेस्यात्कदाविभो।** अर्थात् हे विभो! इस संसार में बारम्बार जन्म–मृत्यु रूप संसार बन्धन से मेरी कब और कैसे मुक्ति होगी? इस प्रकार संसार बन्धन से मुक्त होकर परम पद मोक्ष की प्राप्ति के लिए जिस पुरुष को उत्कट आकांक्षा या उत्कण्ठा जाग उठी हो, उसे ही मुमुक्षु पुरुष कहते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 3.3

1. भारतीय शास्त्रों में चतुष्टय के रूप में विख्यात चारों साधनों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. वैराग्य क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3. षटसम्पति से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

4. मुमुक्षत्व क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 भारतीय जीवन मूल्य

भारतीय संस्कृति जीवन मूल्यों का पोषण, संरक्षण और उसके प्रचार–प्रसार करने वाली संस्कृति के रूप में विश्वविख्यात है। भारत की प्राचीन शिक्षण व्यवस्था में जीवन यापन की विविध विधाओं के साथ–साथ उच्च जीवन मूल्यों के शिक्षण की व्यवस्था भी थी। गुरुकुल जीवन मूल्यों के संवाहक, प्रसारक के रूप में कार्य करते थे। प्राचीन शिक्षा का आधार सत्य, अहिंसा, करुणा आदि मानवीय मूल्यों पर आधारित था। प्राचीनकाल में गुरुओं ने विद्यार्थियों में प्रेम, करुणा, दया का संचार तो किया ही, प्राणिमात्र के कल्याण की कामना भी की। **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना यहीं पोषित और पल्लवित हई। भारत में आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ चारित्रिक विकास पर बल दिया गया है। प्राचीन भारत में मनुष्यों में नैतिकता का विकास हो, दूसरों के प्रति प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा एवं सहयोग का भाव हो ऐसी मान्यता प्रचलित थी। भारतीय संस्कृति में उन्हीं विभूतियों को आदर्श माना गया है जिन्होंने उच्च मूल्यों को आधार मानकर जीवन जिया हो, जैसे– राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक, महात्मा गांधी आदि।

भारतीय संस्कृति प्राचीन होने के साथ–साथ सबको साथ लेकर चलने वाली, विस्तृत एवं विविधता से परिपूर्ण है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल में भारतीय दर्शन रहा है। जिसकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर भारतीय जीवन मूल्य प्रतिष्ठित हुए। भारतीय दर्शन आध्यात्मिक विकास को केन्द्र बिन्दु मानकर व्यावहारिक सामाजिक विकास का पक्षधर रहा है। भारतीय समाज में जीवन मूल्यों का प्रमुख स्रोत धर्म–दर्शन ही रहा है। धर्म ही जीवन मूल्यों के प्रति अटल तथा अविचल आस्था उत्पन्न करता है। यहां धर्म से तात्पर्य किसी वर्ग विशेष, सम्प्रदाय की बात नहीं की जा रही है। यहां धर्म का अर्थ जीवन में धारण करने वाले मूल्यों से है। जीवन मूल्य से तात्पर्य जीवन दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई से है। मूल्य स्वयं एक व्यवस्था है जो सम्बन्धों को सन्तुलित करके व्यवहारों में एकरूपता स्थापित करते हैं। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं जो कि हर व्यक्ति को पालनीय हैं। मनुस्मृति में इनके विषय में कहा गया है– **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दषकं धर्मलक्षणम्।।** अर्थात् धृति, क्षमा, दम(मन को वश में करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना), धी (बुद्धिमान होना), विद्या, सत्य एवं अक्रोध ये सभी धर्म के दस लक्षण हैं। योग जीवन मूल्यों का संबर्धन करने वाला रहा है।

टिप्पणी

महर्षि पतंजलि ने भी पांच यमों को महाव्रतों की संज्ञा दी है। इन पांच महाव्रतों का पालन किसी भी देश, काल, परिस्थिति में किया जा सकता है। पांच यम– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह कहे गए हैं। जैन दर्शन में भी इनको पांच महाव्रतों के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध धर्म में भी शील, समाधि और प्रज्ञा के माध्यम से इन्हीं गुणों को धारण करने का संदेश दिया गया है।

आधुनिक समय में मूल्यों का ह्रास

आधुनिकता एक प्रक्रिया है। हर समय परिवर्तन घटित होता रहता है। आज चारों तरफ जो वैज्ञानिक प्रगति, प्रौद्योगिक विकास, जीवन के रहन–सहन में उच्च स्तरीय परिवर्तन हुए हैं ये सभी आधुनिकता के परिचायक हैं। आधुनिकता का प्रभाव हमारे सम्पूर्ण जीवन पर पड़ा है किन्तु अब यह विकास भस्मासुर प्रतीत हो रहा है। भगवान शिव से वरदान पाकर भस्मासुर अन्त में अपने सिर के ऊपर हाथ रखकर स्वयं नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार आज की आधुनिकता बिना विवेक के मनुष्य के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगा रही है। आज के आधुनिक अर्थप्रधान युग में जीवन मूल्यों को नगण्य समझा जाने लगा है। आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के अंधानुकरण में हमने अपने जीवन मूल्यों को खो दिया है। वर्तमान जीवन में जीवन मूल्यों की आवश्यकता को प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर रहा है।

सामाजिक जीवन में हम देखते हैं कि व्यक्ति एक दूसरे से प्रतियोगिता एवं एक दूसरे की नकल करने का प्रयत्न कर रहा है। हम आन्तरिक तौर पर कितने ही बुरे क्यों न हों, किन्तु बाहर से हम साज–संवार करने में कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। सभ्यता और फैशन के नाम पर उच्छृखल होते जा रहे हैं। बालों की सजावट से लेकर नयी–नयी पोशाकों और आभूषणों पर सामर्थ्य से अधिक व्यय कर रहे हैं। नशे को हम अपने स्टेटस से जोड़कर देख रहे हैं। इस प्रकार की स्तरहीन सोच हमारे वैचारिक मूल्यों के स्तर में आई अवनति का परिणाम है।

आधुनिक युग में हम मूल्यहीनता की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। भारतीय समाज में ही नहीं, विश्व के अन्य देशों में भी जीवन मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। मानव समाज में आज आतंकवाद, अलगाववाद, जातिवाद, रंगभेद, नस्लभेद जैसी समाज को बांटने वाली विचारधारा चल पड़ी है, जो मनुष्य के अस्तित्व के लिए संकट पैदा कर रही हैं। वैयक्तिक, स्थानीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर भ्रष्टाचार, लूट, हिंसा, बलात्कार, पर्यावरणीय संकट बढ़े हैं, जिनका एक मात्र कारण जीवन मूल्यों में आई गिरावट ही है।

मनुष्य जब इस संसार में आता है तो नवजात शिशु के रूप में विकार रहित निश्छल, कोरे कागज की तरह होता है। जैसे–जैसे बड़ा होता है तो वह परिवार, समाज से सीखने लगता है। परिवार में माता–पिता और समाज संस्कारी होगा तो स्वाभाविक है कि पुत्र भी उच्च आदर्शों से युक्त संस्कारी होगा। यदि परिवार, समाज दोनों ही संस्कारहीन, मूल्यहीन व भ्रष्ट होंगे तो आने वाली पीढ़ी संस्कारी होगी, ऐसी आशा करना निरर्थक है। अतः परिवार, समाज

और राष्ट्र की पहचान वहां रह रहे व्यक्तियों के चरित्र से होती है। उच्च आदर्शों, जीवन मूल्यों से परिपूर्ण समाज का निर्माण करना है तो इन्हें अपने जीवन में धारण करने की आवश्यकता है। माली अपने बगीचे में नित्य जाता है तो उसकी साज, सज्जा बनी रहती है। अगर कुछ दिन माली बगीचे में न जाये तो बाग उजड़ सा जाता है। आज हमारे जीवन के साथ भी कुछ इसी तरह से हो गया है। इसके साज संवार पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इस संदर्भ में एक उक्ति प्रचलित है, स्वास्थ्य चला जाये तो फिर से प्राप्त किया जा सकता है। धन चला जाये तो फिर से कमाया जा सकता है। परंतु चरित्रिक पतन हो जाए तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। अर्थात् चरित्र के नष्ट होने पर फिर उसे बनाया नहीं जा सकता है।

जीवन मूल्यों की स्थापना–

वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से ओतप्रोत हमारी भारतीय संस्कृति है। जीवन मूल्यों के अवमूल्यन के इस दौर में मूल्यों की स्थापना के लिए हमें अपनी संस्कृति की गौरव गरिमा की ओर झांकना होगा। हमारे ऋषियों ने अपने जीवन को दांव पर लगाकर जीवन के आदर्शों, व सिद्धान्तों को खोजा था। ऋषियों ने अपनी साधना और तप के बल पर जीवन मूल्यों की स्थापना की थी। अतः समस्या के समाधान के लिए हमें एक बार फिर से इन जीवन मूल्यों को स्थापित करने की आवश्यकता है।

जीवन मूल्य–उपनिषदों में वर्णित ज्ञान भारतीय चिंतन की उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। उपनिषदों में जीवन के प्रत्येक आयाम के विकास हेतु श्रेष्ठतम उपायों का वर्णन किया गया है। मनुष्य की मुक्ति को केन्द्र मानकर रचे गये उपनिषदों में मानव जीवन के उच्चतम् मूल्यों का वर्णन किया गया है।

चित्र 3.6: जीवन मूल्यों की स्थापना

क्या करणीय है, क्या अकरणीय है, उपनिषदों में इसका प्रतिपादन जीवन में पालन करने वाले सदाचरण के रूप में वर्णन किया गया है। **''छान्दोग्यपनिषद्''** में कहा गया है कि चोरी, मद्यपान, गुरु निंदक और ब्रह्मज्ञानी को मारने वाला और इनसे सम्बन्ध रखने वाला पतन को प्राप्त होता है। ऐसे कर्म करने चाहिए जिससे

टिप्पणी

हमारा कल्याण हो। **तैत्तरीयोपनिषद्** में दीक्षान्त में आचार्य अपने शिष्य को शपथ दिलाता है कि सत्य धर्म का पालन करो! स्वाध्याय में प्रमाद न करो! माता–पिता व अतिथि का सत्कार करो! दान करो! हमारे सद्गुणों को धारण व अवगुणों को कभी धारण न करो।

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित पातंजल योग सूत्र में यम–नियमों के रूप में जीवनमूल्यों की शिक्षा दी है जो इस प्रकार हैं–

यम–यम पांच हैं– **अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः।** अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये सभी यम कहलाते हैं जिनका वर्णन निम्नानुसार आगे किया जा रहा है।

i) **अहिंसा–**अहिंसा अर्थात् हिंसा न करना। मन, वचन एवं कर्म से किसी जीव को कष्ट न पहुंचाना ही अंहिसा कहलाती है।

ii) **सत्य–**सत्य वचन को ही सत्य कहा है। शास्त्रों में कहा गया है कि **"सत्यं, ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात नसत्यम प्रियम"** अर्थात् सदा सत्य बोलें, प्रिय बोलें ऐसा वचन न बोलें जो सुनने में अप्रिय हो। अतः सत्य को मधुर भाषा में बोलें कटु करके नहीं।

iii) **अस्तेय–**अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। **परद्रव्यापहरणं त्यागोऽस्तेयम्** अर्थात् बिना पूछे या बिना अनुमति के दूसरे व्यक्ति के किसी भी **द्रव्य** को लेने की इच्छा का परित्याग कर देना ही अस्तेय कहलाता है।

iv) **ब्रह्मचर्य–**मन, वाणी और शरीर से होने वाले सभी प्रकार के मैथुनों का परित्याग कर देना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।

v) **अपरिग्रह–**स्वार्थवश आसक्तिपूर्वक धन, सम्पत्तियों का संचय न करना ही अपरिग्रह कहलाता है।

नियम– नियम भी पांच है यथा– **शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।** अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये नियम हैं।

i) **शौच–**शौच का अर्थ है शुद्धता, पवित्रता। शौच दो प्रकार का होता है बाह्य और आन्तरिक। बाह्य शौच के अन्तर्गत शरीर की अशुद्धि को स्नानादि से शुद्ध करना बाह्य शौच कहलाता है तथा मन को पवित्र विचारों से शुद्ध करना आन्तरिक शौच कहलाता है।

ii) **संतोष–**जो अपने पास है उसमें संतुष्टि अनुभव करना संतोष कहलाता है। संतोष का भाव लाने से मन की उदासी दूर हो जाती है।

iii) **तप–**तपो द्वन्द्वसहनम् अर्थात् सब प्रकार के द्वन्द्वों को सहन करना ही तप कहलाता है। तप का पालन करने से मनुष्य में सहनशीलता का विकास होता है।

iv) **स्वाध्याय**—मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। नित्य स्वाध्याय करने से विचारों में श्रेष्ठता बनी रहती है।

v) **ईश्वर प्रणिधान**—ईश्वर के प्रति शरणागति का भाव ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

उपरोक्त यम—नियमों का पालन करने से स्वयं के जीवन में उत्कृष्टता आती है, साथ ही समाज के अन्य लोगों को भी उससे लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार इन जीवन मूल्यों का आचरण हम सभी के लिए अनुकरणीय है। हम निम्न बिन्दुओं पर विचार कर सकते हैं:

- हम अपनी संस्कृति को विश्व की प्राचीन संस्कृति मानते हुए गौरव का अनुभव करें।
- ऋषियों द्वारा खोजे गए ज्ञान—विज्ञान को अपने जीवन में आत्मसात् करने की कोशिश करें।
- प्राचीन ज्ञान—विज्ञान को किसी से कम न समझें, क्योंकि इनमें मानव सभ्यता बचाने के सूत्र छिपे हुए हैं।
- प्राचीन दर्शन, संस्कृति और परम्परा को बिना जाने—समझे, अंधविश्वास, रूढ़ि न मान बैठें।
- भारतीय ऋषियों के ज्ञान को वर्तमान विज्ञान के पैमाने पर खरा उतारने के लिए प्रयासरत रहें।
- हम अपने ज्ञान—विज्ञान को हीन और विदेशी ज्ञान को उच्चतम मानने के दुराग्रह में न फँसें।

चित्र 3.7: गुरुकुल शिक्षा पद्धति

टिप्पणी

- उच्च आदर्शों को अपने जीवन में धारण करेंगे। इनके पालन में तत्पर रहेंगे। इस मान्यता पर अडिग रहें।
- योग के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि को जीवन का अंग बनाकर, इनका पालन करेंगे।

जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था में इन मूल्यों को प्राथमिक स्थान देना होगा। प्रत्येक यूनिट्यक्रम में जीवन मूल्यों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है। विद्या में प्रवीण, कुशल होना यूनिट्यक्रम का उद्देश्य होता है। विद्या में पारंगत होने के साथ–साथ संस्कारी और व्यवहार कुशल, उच्च आदर्शों से युक्त नागरिक बन जाए, यही शिक्षा की सार्थकता है।

यूनिटगत प्रश्न 3.4

1. किस उपनिषद में दीक्षांत के दौरान, आचार्य अपने शिष्यों को जीवन मूल्यों का पालन करने की शपथ दिलाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2. किस योगसूत्र में यम नियमों के रूप में जीवन मूल्यों की शिक्षा दी है?

.....

.....

.....

.....

.....

3. पातंजल योगसूत्र के अनुसार नियमों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि –

1. योग जीवन जीने की कला सिखाता है। जीवन में पूर्णतः संपूर्णता लाने के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए। पुरुषार्थ चार हैं **— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष**

2. मनुष्य जीवन को 100 वर्ष की आयु मानकर उसे आश्रमों में विभाजित कर दिया गया।
   - **प्रथम पच्चीस वर्ष** शरीर, मन एवं बुद्धि विकास के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम;
   - **द्वितीय पच्चीस वर्ष** गृहस्थ आश्रम को समर्पित किये गए हैं। जो पति–पत्नी के रुप में धार्मिक रुप से नागरिकता का पालन करते हुए व्यतीत करने हैं;
   - **तृतीय पच्चीस वर्ष** गृहस्थ आश्रम के बाद परमार्थिक जीवन जीने के लिए वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था है; तथा
   - **चतुर्थ पच्चीस वर्ष** मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास आश्रम की व्यवस्था है।

3. भारतीय शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु विभिन्न साधनों का उल्लेख किया गया है। उनमें साधन चतुष्टय के रूप में विख्यात विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व को विशेष स्थान प्राप्त है। इनके माध्यम से साधक तत्व ज्ञान की प्राप्ति करके विरक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है तथा साधन रूप में शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा व समाधान को अपनाकर उसका मुमुक्षुत्व दृढ़ हो जाता है। तव निश्चय ही मोक्ष रूपी परमपद की प्राप्ति सम्भव होती है।

4. मूल्य स्वयं एक व्यवस्था हैं जो सम्बन्धों को सन्तुलित करके व्यवहारों में एकरूपता स्थापित करते हैं। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं जो कि हर व्यक्ति को पालनीय हैं। मनुस्मृति में इनके विषय में कहा गया है **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।।** अर्थात् धृति, क्षमा, दम(मन को वश में करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना), धी (बुद्धिमान होना), विद्या, सत्य एवं अक्रोध ये सभी धर्म के दस लक्षण हैं। महर्षि पतंजलि ने पांच यमों को महाव्रतों की संज्ञा दी है। इन पांच महाव्रतों का पालन किसी भी देश, काल, परिस्थिति में किया जा सकता है। पांच यम **अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह** कहे गए हैं। जैन दर्शन में भी इनको पांच महाव्रतों के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध धर्म में भी **शील, समाधि और पज्ञा** के माध्यम से इन्हीं गुणों को धारण करने का संदेश दिया गया है।

6. आधुनिकता एक प्रक्रिया है। हर समय परिवर्तन घटित होता रहता है। आज चारों तरफ जो वैज्ञानिक प्रगति, प्रौधोगिक विकास, जीवन के रहन–सहन में उच्च स्तरीय परिवर्तन ये सभी आधुनिकता का परिचायक है। आधुनिकता का प्रभाव हमारे सम्पूर्ण जीवन पर

टिप्पणी

पड़ा है। आधुनिकता बिना विवेक के मनुष्य के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा रही है। आज के आधुनिक अर्थप्रधान युग में जीवन मूल्यों को नगण्य समझा जाने लगा है। आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के अंधानुकरण में हमने अपने जीवन मूल्यों को खो दिया है। वर्तमान जीवन में जीवन मूल्यों की आवश्यकता को प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर रहा है।

7. आधुनिक समय में प्राचीन संस्कृति को बहुत ही कम महत्व दिया जा रहा हैं जिसके कारण मानव मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र रुप से निच्छंद जीवन जीना चाहता है उसके लिए संस्कृति के मूल्य समझ नहीं आते क्योंकि यदि वह इनको धारण करता है तो बंधन में बंध जाता है। जबकि वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त रहना चाहता है। समाज में राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि विषय तेजी से पनप रहे हैं जिनसे जीवन में क्लेश होता है। परिवार व समाज में अशान्ति रहती है, मनुष्य यदि चाहे तो वह इन विषयों, क्लेशों और दुःखों से बच सकता है और योगमय जीवन जीते हुए जीवन के लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति कर सकता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. यौगिक संस्कृति से क्या तात्पर्य है? पुरुषार्थ से मनुष्य जीवन में अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकता है? विवेचना कीजिए।
2. पुरुषार्थ का अर्थ स्पष्ट करते हुए धर्म तथा अर्थ के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. मनुष्य के जीवन को आयु के अनुरूप किन–किन आश्रमों में बांटा गया है। किन्हीं दो आश्रमों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण जीवन काल को व्यवस्थित करने के लिए 'आश्रम व्यवस्था' में नियोजित किया गया है। इसकी विवेचना कीजिए।
5. भारतीय शास्त्रों में परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु कौने–कौन से साधनों का उल्लेख किया गया है? विस्तार से प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. हमारे ऋषियों–मुनियों एवं पूर्वजों से।
2. "पुरुषैः अथ्यते" अर्थात् मनुष्य जिसकी याचना करे, जिसको वह प्राप्त करना चाहता है।
3. जिसे धारण किया जाए उसे धर्म कहते हैं।
4. (i) धर्म, (ii) अर्थ, (iii) काम (iv) मोक्ष

3.2

1. भारतीय संस्कृति में संपूर्ण जीवन काल को व्यवस्थित करने के लिए जिसे व्यवस्था के रूप में नियोजित किया गया है, उसे आश्रम व्यवस्था कहते हैं।
2. चार आश्रमों में
3. प्रथम सोपान

3.3

1. विवेक, वैराग्य, षटसम्पति और मुमुक्षुत्व।
2. इस लोक, स्वर्ग एवं अन्य दिव्य लोकों के भागों की इच्छा का परित्याग कर देना ही वैराग्य है।
3. षटसम्पति से तात्पर्य है — यम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।
4. दु:खमय संसार से तरकर मोक्ष रूप अमृत की प्राप्ति करने की तीव्र इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते हैं।

3.4

1. तैत्तरीयोपनिषद में
2. पातंजल योगसूत्र में
3. नियम पांच हैं — शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम

मॉड्यूल 2: मानव शरीर, आहार और शुद्धि

(पाठ्यक्रम कोड 496)

4

मानव शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान

मनुष्य प्रकृति की सबसे अधिक अद्भुत रचना है। सदियों से हम इस शरीर को जानते हैं। शरीर का महत्व प्रत्येक पद्धति में अहम् दृष्टि से देखा जाता है, चाहे वह प्राकृतिक चिकित्सा हो, आयुर्वेद हो, एलोपैथी हो या होमियोपैथी हो। स्वास्थ्य में पूर्णताः प्राप्त करने के लिए शरीर के विभिन्न अंगों, अवयवों आदि का ज्ञान भी होना आवश्यक है। इस यूनिट में हम शरीर की रचना, विभिन्न अंगों, शरीर में पाये जाने वाले संस्थानों (तंत्रों) एवं क्रियाकलापों का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात आप :

- मानव शरीर विज्ञान (Human Anatomy) एवं शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) को परिभाषित कर सकेंगे;
- कोशिका की संरचना व क्रियाओं, ऊतक, इंद्रियों तथा शारीरिक तंत्र की संरचना व क्रियाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- शरीर में विभिन्न अंगों को पहचान सकेंगे और शरीर में उनकी स्थिति का उल्लेख सकेंगे;
- मानव शरीर में पाए जाने वाले सभी संस्थानों (तंत्रों) का वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

4.1 शरीर विज्ञान (Anatomy) और शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) की भूमिका

शरीर विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें जीव (Organism) के प्रकार व संरचना का अध्ययन किया जाता है। मानव शरीर से संबंधित अध्ययन को हम मानव शरीर विज्ञान (Human Anatomy) कहते हैं। उदाहरण के लिए, हृदय, कोण आकार की एक पेशीय इंद्री है जिसकी कैविटी (Cavity) चार कक्षों में विभाजित होती है। इसकी संरचना को व्यापक रूप से खुली आंखों से देखा जा सकता है तथा सूक्ष्म तौर पर माइक्रोस्कोप की सहायता से इसका अवलोकन किया जा सकता है। खाली आंख से हम हृदय को कोण आकार के अंग के रूप में देखते हैं। जब माइक्रोस्कोप की सहायता से हृदय भित्ति के सूक्ष्म भाग की जांच करते हैं तो पता चलता है कि यह प्रमुख रुप से हृदयी पेशी कोशिकाओं से निर्मित है।

शरीर क्रिया विज्ञान (Pyhsiology) शारीरिक भागों की क्रियाओं का अध्ययन है तथा यह जानना है कि वह क्या क्रियाएं करते हैं और कैसे करते हैं? आंतरिक इंद्रियों सहित मानव शरीर के विभिन्न भागों की क्रियाओं के अध्ययन को शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) कहते हैं। उदाहरण के लिए हृदय शरीर के विभिन्न भागों को रक्त संचारित करता है। हृदय नियमित रूप से पेशीय संकुचन (Contraction) तथा शिथिलन (Relaxation) द्वारा ऐसा करता है। शरीर का प्रत्येक भाग कुछ क्रिया करता है तथा शरीर की संरचना उस क्रिया के लिए उपयुक्त होती है। इस प्रकार शरीर विज्ञान तथा शरीर क्रिया विज्ञान एक–दूसरे से घनिष्ठ रुप से संबंधित हैं।

4.2 हमारा शरीर

हमारा शरीर अस्थियों, पेशियों, तंत्रिकाओं, धमनियों, शिराओं, चर्बी, अवत्वक ऊतक, चमड़ी तथा आंतरिक अंगों यथा हृदय, यकृत एवं फेफड़ों आदि से निर्मित है। जिस प्रकार एक भवन का निर्माण एक के ऊपर दूसरी ईंट रख कर होता है, हमारे शरीर का निर्माण भी उसी प्रकार होता है। इस प्रकार 'शरीर' तथा 'शरीर विज्ञान' का अध्ययन मानव कोशिका की संरचना व क्रिया के अध्ययन से आरंभ होता है।

एक कोशिका (Cell) को आप एक इकाई मान सकते हैं जो एक जीव (Living Organism) की संरचनात्मक व क्रियात्मक इकाई है।

समान गुणों वाली, एक ही आकार की तथा एक ही कार्य करने वाली कोशिकाओं के समूह को ऊतक (Tissue) कहते हैं।

संयुक्त रुप से मिलकर कोशिकाओं का एक समूह पेशियों तथा अस्थियों आदि जैसे ऊतक का निर्माण करता है तथा

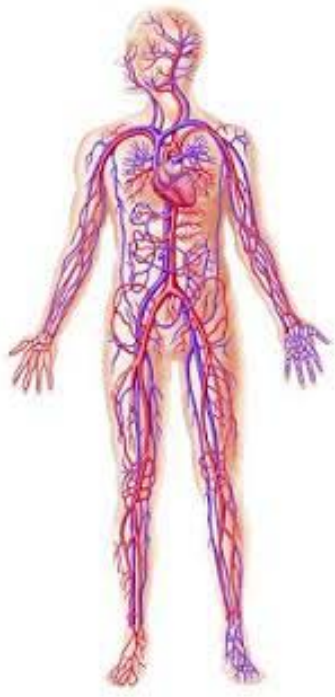

चित्र 4.1: मानव शरीर

टिप्पणी

संयुक्त रूप से ऊतक का एक समूह अंग यथा फेफड़े, यकृत का निर्माण करता है, जो एक निश्चित क्रिया को करते हैं। संयुक्त रूप से अंगों का समूह एक शारीरिक तंत्र (जैसे पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र) का निर्माण करते हैं तथा अनेक तंत्र संयुक्त रुप से मिलकर मानव शरीर का निर्माण करते हैं :

कोशिका → ऊतक → अंग→ शारीरिक तंत्र → मानव शरीर

यूनिटगत प्रश्न 4.1

1. शरीर विज्ञान क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. शरीर क्रिया विज्ञान से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4.3 कोशिका

कोशिका मानव शरीर की लघुत्तम(सबसे छोटी) संरचनात्मक व प्रक्रियात्मक इकाई है। इसे जीवन का निर्माण खंड कहते हैं। कोशिका को सीधे–सीधे आंखों से नहीं देखा जा सकता है बल्कि इसे माइक्रोस्कोप की सहायता से देखा जा सकता है। मानव शरीर तथा शरीर विज्ञान को बेहतर ढंग से समझने के लिए शरीर की लघुत्तम इकाई (कोशिका) का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है।

मानव कोशिका का निर्माण तीन भागों में होता है, यथा

1. नाभिक (Nucleus)
2. कोशिका द्रव्य (Cytoplasm)
3. कोशिका झिल्ली (Cell-Membrane)

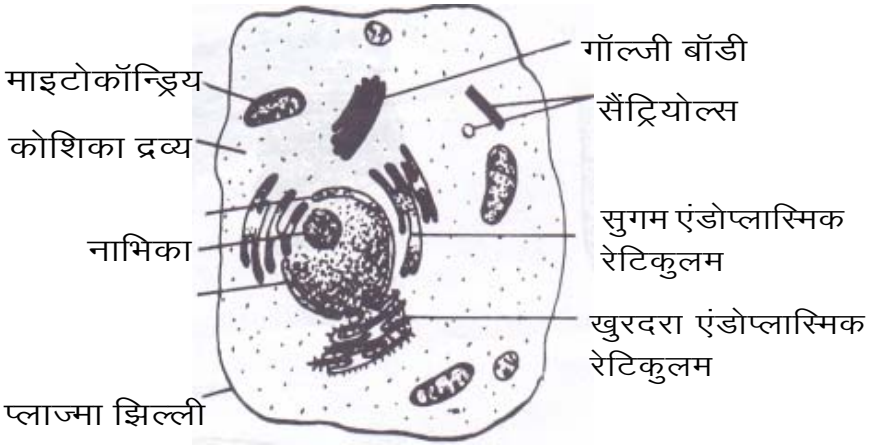

चित्र 4.2: कोशिका की संरचना

नाभिक (Nucleus) :—यह मध्य में स्थित होती है तथा कोशिका की क्रियाओं को नियंत्रित करती है। इसमें क्रोमोसोम्स के 23 युग्म होते हैं जिनमें से 22 ऑटोसोम तथा एक युग्म लिंग क्रोमोसोम (एक्स व वाई) होता है। क्रोमोसोम्स में मालादार संरचना समाविष्ट होती है जिसे जीन कहते हैं। प्रत्येक जीन शरीर के एक विशिष्ट गुण का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक जीन का निर्माण राइबोन्यूक्लिक अम्ल तथा डिऑसीराइबोन्यूक्लिक अम्ल द्वारा होता है।

कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) :— यह नाभिक के चारों ओर विद्यमान अर्ध—धन द्रव्य है। इसमें असंख्य अतिसूक्ष्मदर्शी कण विद्यमान रहते हैं।

कोशिका झिल्ली (Cell-Membrane):— यह एक पतला आवरण है जो कोशिका द्रव्य के चारों ओर विद्यमान होता है। कोशिका को उसके विकास के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। यह अपने आस—पास से वसा, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के रूप में भोजन प्राप्त करती है। इसे आक्सीजन की भी आवश्यकता होती है। इससे होकर ही, कोशिका अपशिष्ट पदार्थ तथा कार्बन—डाइआक्साइड को उत्सर्जित करती है।

ऊतक(Tissues):- एक विशिष्ट क्रिया को करने वाली अनेक कोशिकाओं को ऊतक कहते हैं। विभिन्न प्रकार के ऊतक निम्नानुसार है :—

1. उपकला ऊतक (Epithelial Tissues)
2. संयोजी ऊतक (Connective Tissues)
3. पेशी ऊतक (Muscular Tissues)
4. तंत्रिका ऊतक (Nervous Tissues)

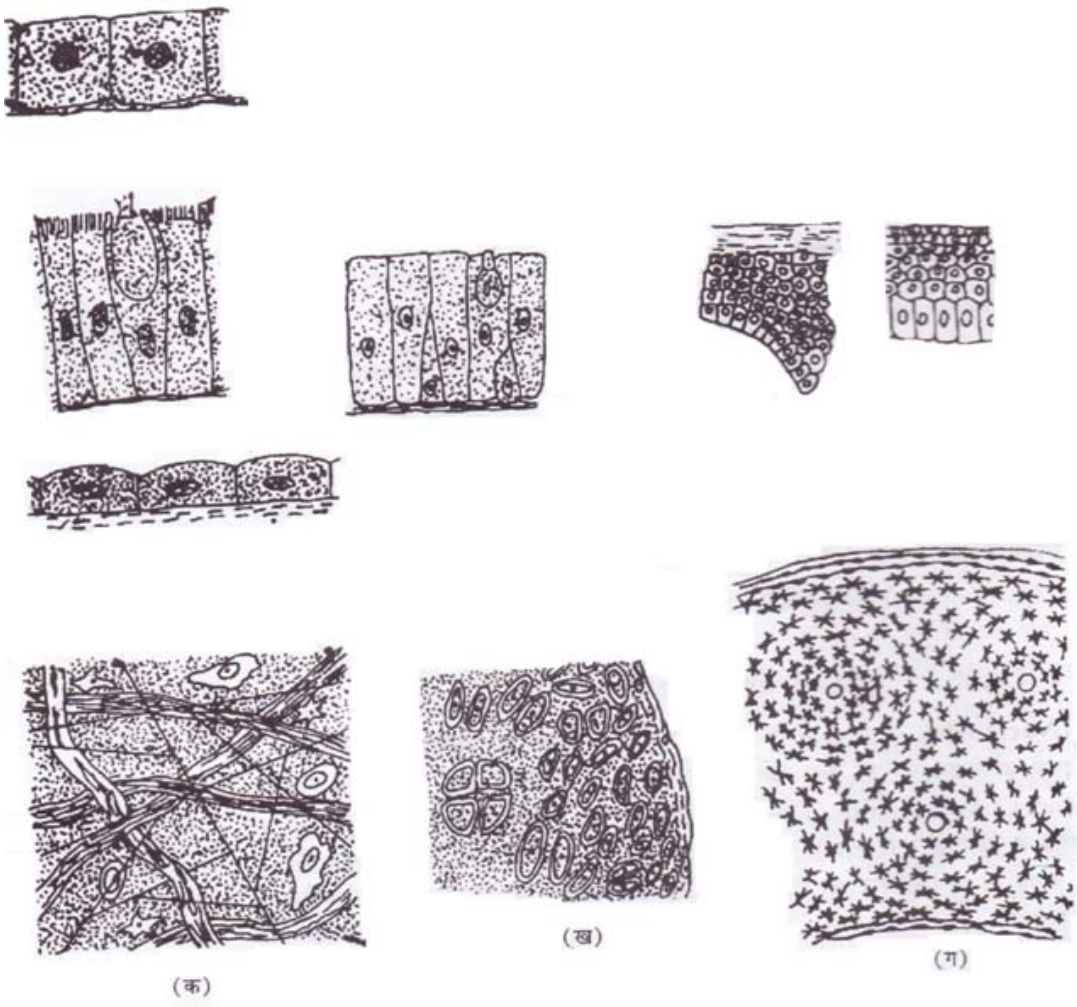

चित्र 4.3: ऊतकों के प्रकार

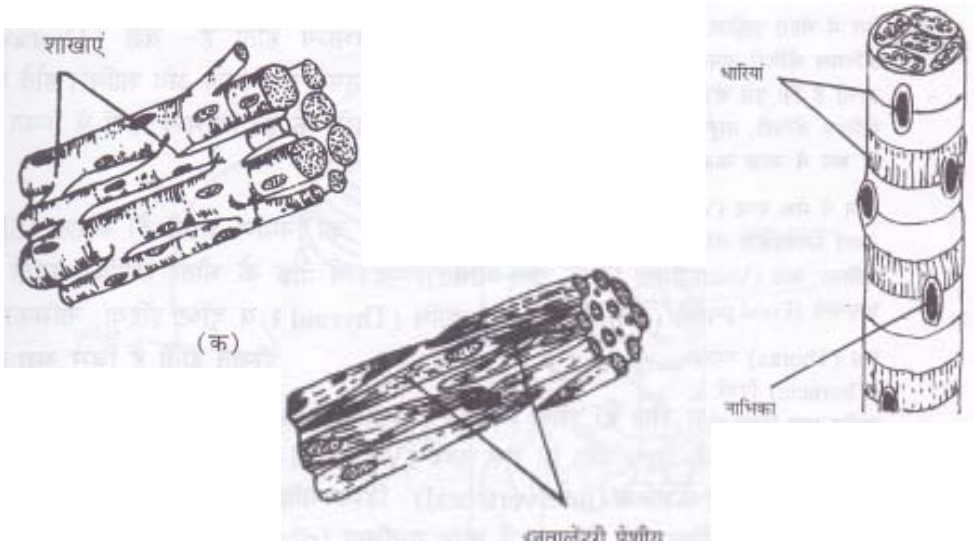

चित्र 4.4:

टिप्पणी

क) उपकला ऊतक (Epithelial Tissues) :— यह शरीर के भीतरी तथा बाहरी आवरण का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए त्वचा तथा श्लेष्मा झिल्ली **(Mucus Membrane)**।

ख) संयोजी ऊतक (Connective Tissues) :— जैसा कि नाम से प्रतीत होता है, यह विभिन्न ऊतकों को जोड़ता है यथा 1. रक्त 2. अस्थि 3. उपास्थि 4. वसीय ऊतक।

ग) पेशी ऊतक (Muscular Tissues) :— ये कोशिकाएं संकुचित हो सकती हैं और इस प्रकार शरीर की गति **(Movements)** में सहायक होती हैं।

घ) तंत्रिका ऊतक (Nervous Tissues) :— तंत्रिका प्रणाली में ऊतक की इकाई को न्यूरोन कहते हैं। यह एक विशेष प्रकार का ऊतक है जो संदेशों के संवहन के लिए उत्तरदायी होता है।

यूनिटगत प्रश्न 4.2

1. कोशिका की परिभाषा लिखिए।

   .....

   .....

   .....

2. ऊतक किसे कहते हैं?

   .....

   .....

3. विभिन्न प्रकार के ऊतक के नाम लिखिए।

   क) ..... ख) .....

   ग) ..... घ) .....

4. संयोजी ऊतक का मुख्य कार्य क्या है? इसका एक उदाहरण दीजिए।

   .....

   .....

5. तंत्रिका प्रणाली ऊतक की इकाई का नाम क्या है?

   .....

   .....

टिप्पणी

4.4 मानव शरीर का संगठनः अंग और संस्थान (Organ and Systems)

आप कोशिका एवं ऊतक के विषय में पढ़ चुके हैं। आइए अब हम अपने शरीर के विभिन्न अंगों और संस्थानों के बारे में पढ़ेंगे :—

अंग (Organ) से आप क्या समझते हैं?

अंग ऊतकों का एक समूह है जो एक विशिष्ट प्रकार की क्रिया को निष्पादित करते हैं। उदाहरण के लिए हृदय, गुर्दा तथा लीवर आदि।

संस्थान

विशिष्ट प्रकार की क्रिया करने वाले अंगों के समूह को संस्थान या तंत्र कहते हैं। शरीर की प्रत्येक क्रिया के लिए एक विशिष्ट तंत्र का प्रयोग किया जाता है। हमारे शरीर में 10 विभिन्न तंत्र विद्यमान हैं —

1. त्वचा तंत्र (Integument System)
2. कंकाल तंत्र (Skeletal System)
3. पेशीय तंत्र (Muscular System)
4. श्वसन तंत्र (Respiratory System)
5. पाचन तंत्र (Digestive System)
6. परिसंचरण तंत्र (Circulatory System)
7. निष्कासन तंत्र (Excretory System)
8. अंतः स्रावी तंत्र (Endocrine System)
9. जनन तंत्र (Reproductive System)
10. तंत्रिका तंत्र (Nervous System)

पुरूष व महिला में जनन तंत्र के अतिरिक्त अन्य सभी तंत्र समान होते हैं। ऊपर उल्लिखित तंत्रों के अतिरिक्त मानव शरीर में ज्ञानेन्द्रियां भी होती हैं, यथा :—

- नेत्र
- कान
- नाक
- जीभ
- त्वचा

टिप्पणी

4.5 संस्थानों (तंत्रों) का संक्षिप्त वर्णन

1. अध्यावरणी तंत्र (Integumentary System)

अध्यावरणी तंत्र में त्वचा (skin)सहित इसकी सहायक इंद्रियों जैसे बाल, स्वेद ग्रंथियां (sweat glands), वसा ग्रंथियां (sebaceous glands) (तेल ग्रंथियां) तथा नाखून शामिल हैं। त्वचा में बाह्य त्वचा (epidermis) की एक बाहरी परत होती है जो उपकला से बनी होती है। त्वचा की गहरी परत (deeper layer) को चर्म (dermis) कहते हैं। यह संयोजी ऊतक (connective tissue) से निर्मित होता है और इसमें रक्त–वाहिकाएं, तंत्रिकाएं, रोम पुटक तथा स्वेद व वसा ग्रंथियां स्थित होती हैं।

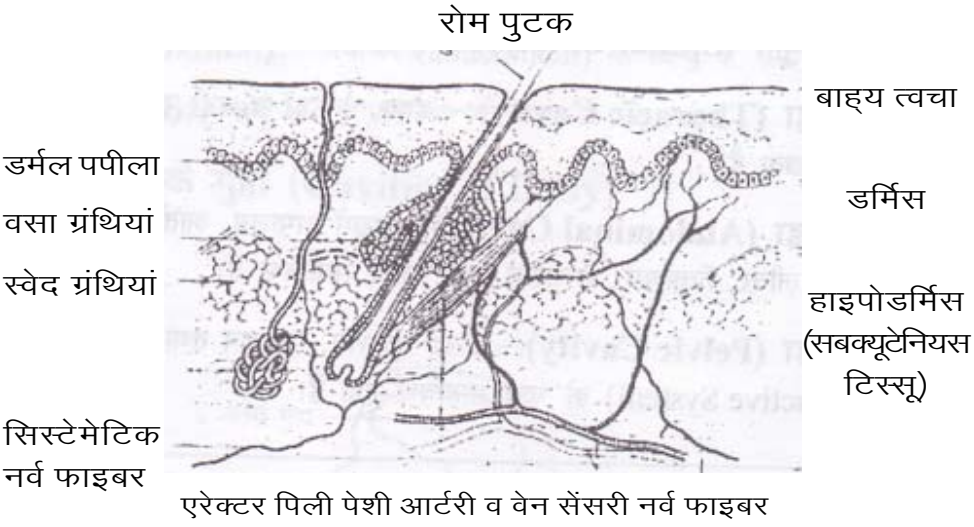

चित्र 4.5: त्वचा (सूक्ष्ममापी भाग)

1. कार्य (Function)

त्वचा (अध्यावरण) की संरचना का संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात अब हम विश्लेषण करेंगे कि इसके कार्य क्या हैं तथा यह इन्हें कैसे पूरा करती है। आप देख सकते हैं कि त्वचा शरीर की संपूर्ण बाहरी सतह को आवरित (cover) रखती है–

- जो हमारे शरीर को घातक पदार्थों तथा प्रभावों से सुरक्षा प्रदान करती है।
- यह शरीर में सूक्ष्म–जीवों (micro-organism) के प्रवेश में अवरोध का काम भी करती है।
- त्वचा में स्वेद ग्रंथियां होती हैं जो पसीने को संस्रावित करती हैं जिनसे पदार्थों के उत्सर्जन में सहायता मिलती है।
- त्वचा शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है।

2. कंकाल तंत्र (Skeletal System)

अस्थियों के ढांचे (Framework) को कंकाल (Skeleton) कहते हैं। यह दो प्रकार के होते हैं, यथा –

1) अक्षीय कंकाल (Axial Skeleton) :– यह करोटि (skull) तथा मेरू सहित उरोस्थि व पसलियों से निर्मित होता है।

2) उपांगीय कंकाल (Appendiculor Skeleton) :– अंसीय (कंधा) मेखला (Pectoral Girdles) उर्ध्वशाखाओं व अधःशाखाओं व श्रोणि से निर्मित होता है।

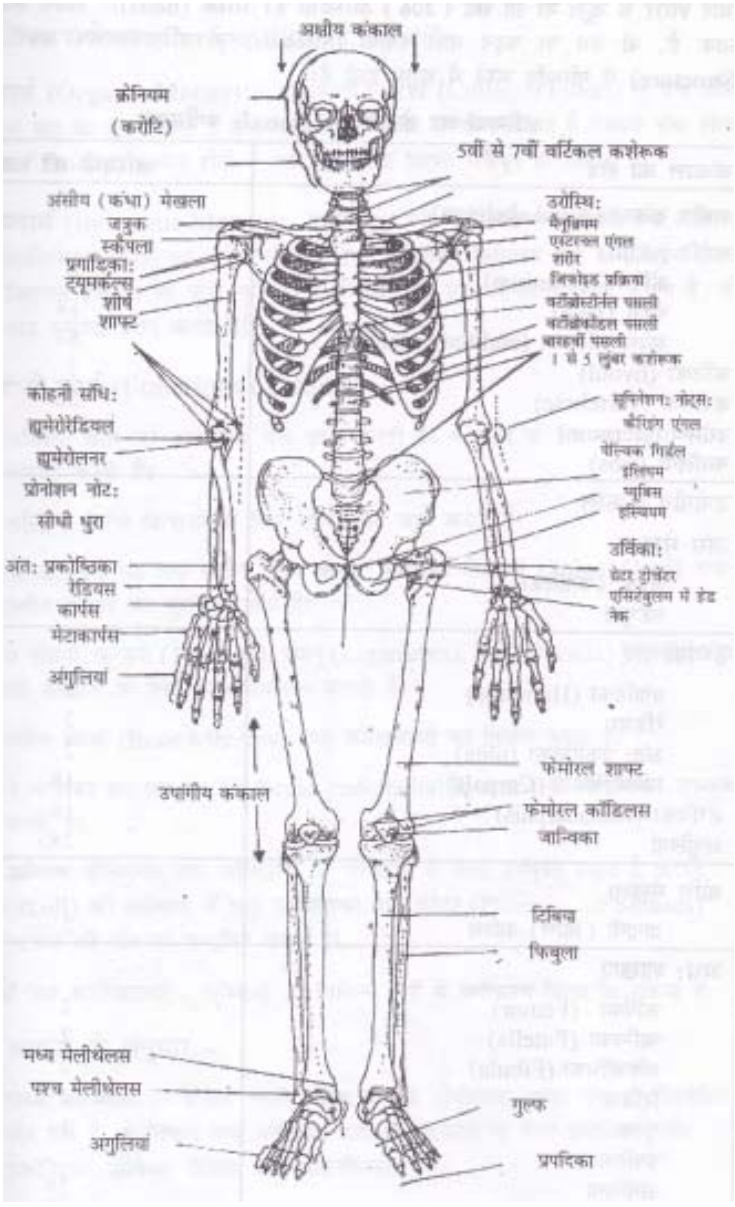

चित्र 4.6: मानव कंकाल

टिप्पणी

हमारे शरीर में कुल दो सौ छह (206) अस्थियां हैं।

अस्थि (Bone):— अस्थि एक सजीव ऊतक है, जो उस पर पड़ने वाले दबावों (stresses) के परिणामस्वरूप अपनी संरचना (Structure) में परिवर्तन करने में सक्षम होती है।

अस्थियों के कार्य (Functions of Bones) :-

1) अस्थियां शरीर को आकार व बल प्रदान करती हैं। ये शरीर के भार को भूमि पर प्रसारित करती हैं।

2) अस्थियां पेशीय क्रियाओं के लिए लीवरों का कार्य करती हैं।

3) खोपड़ी, मेरू दंड तथा वक्षीय पिंजर क्रमशः मस्तिष्क मेरूरज्जु (Spinal Cord) तथा वक्षीय अंतरंग को सुरक्षित रखता है।

4) ये पेशियों, कण्डरा (Tendons), स्नायु (Ligaments), संपट्ट (Fascia) तथा झिल्लियों की संबद्धता के लिए सतह उपलब्ध कराती हैं।

5) अस्थि मज्जा (Bone Marrow) रक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है।

3. पेशी तंत्र (Muscular System)

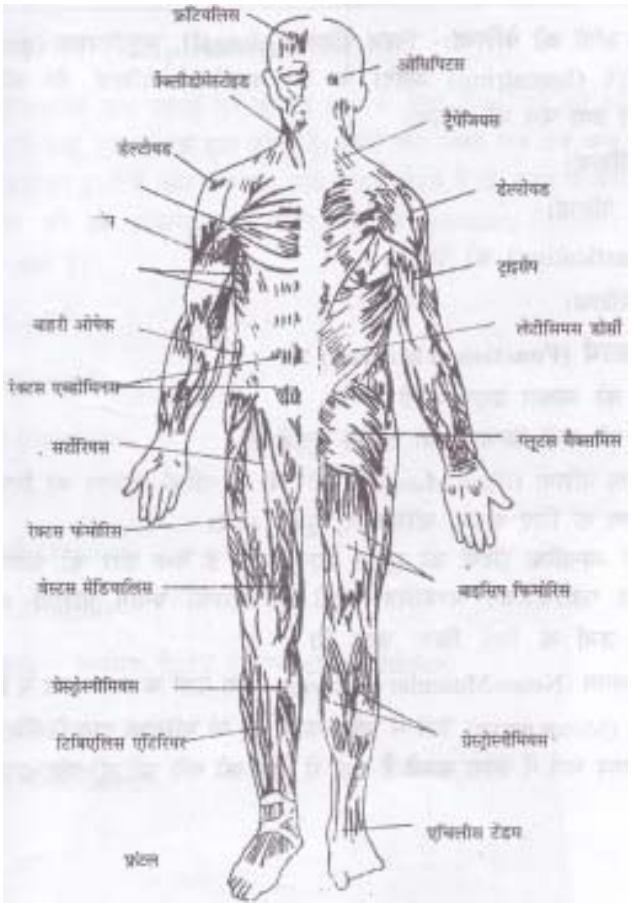

चित्र 4.7: शरीर की पेशियों को दर्शाता रेखाचित्र

टिप्पणी

क्या आप जानते हैं कि हमारे शरीर में लगभग 500 पेशियां हैं। पेशियां हमारे शरीर के सभी संचलनों को निष्पादित करती हैं। हमारे शरीर में दो प्रकार की पेशियां विद्यमान हैं।

1) ऐच्छिक (Voluntary) :— जो इच्छा (Will) द्वारा नियंत्रित होती हैं यथा कंकाल पेशियां।

2) अनैच्छिक (Involuntary) :— जो इच्छा (Will) द्वारा नियंत्रित नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए हृदय तथा आंत्र पेशियों का संचलन।

पेशियों के कार्य (Functions of Muscles) :—

1) शरीर को आकार प्रदान करती हैं।

2) शरीर की सभी क्रियाओं को संभव बनाती हैं।

3) साधारण पेशियां (Plain Muscles) शरीर के आंतरिक संचलन को निष्पादित करती हैं। उदाहरण के लिए पाचन, परिसंचरण, मूत्रण आदि।

4) पेशियां आंतरिक इंद्रियों को सुरक्षा प्रदान करती हैं यथा उदर की पेशियां।

5) पेशियां ग्लाइकोजिन भण्डारित करती हैं, जिसका प्रयोग पेशियों के संचलन के दौरान ऊर्जा के लिए किया जाता है।

तंत्रिका पेशीय संयोजन (Neuro Muscular Junction) :— यह पेशी के मध्य भाग में विद्यमान होता है, जहां मोटर तंत्री (Motor nerve) पेशी में प्रवेश करती है, जो मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होती है। मोटर तंत्री पेशी के मध्य भाग में प्रवेश करती है जहां से पेशी की गति को मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

4. श्वसन तंत्र (Respiratory System)

शरीर की कोशिकाओं तथा ऊतकों को जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, जिसकी आपूर्ति उन्हें श्वसन तंत्र द्वारा होती है। सांस लेते समय जब हम वायु को भीतर लेते हैं तो उसमें ऑक्सीजन होती है और जब हम सांस बाहर छोड़ते हैं तो उसमें कार्बन– डाईऑक्साइड होती है। सांस लेने की इस प्रक्रिया को श्वसन तंत्र (Respiratony System) कहते हैं। इसके निम्नलिखित भाग हैं :

1) नाक (Nose)

2) ग्रसनी (Pharynx)

3) कंठच्छद (Epiglottis)

4) कंठ (Larynx)

5) श्वासनली (Trachea)

6) श्वसनी (Bronchi)

टिप्पणी

7) श्वासनिकाएं –प्राथमिक द्वितीय तृतीयक (Bronchioles)

8) परिकोष्ठ (Atria)

9) कूपिका (Alveolus)

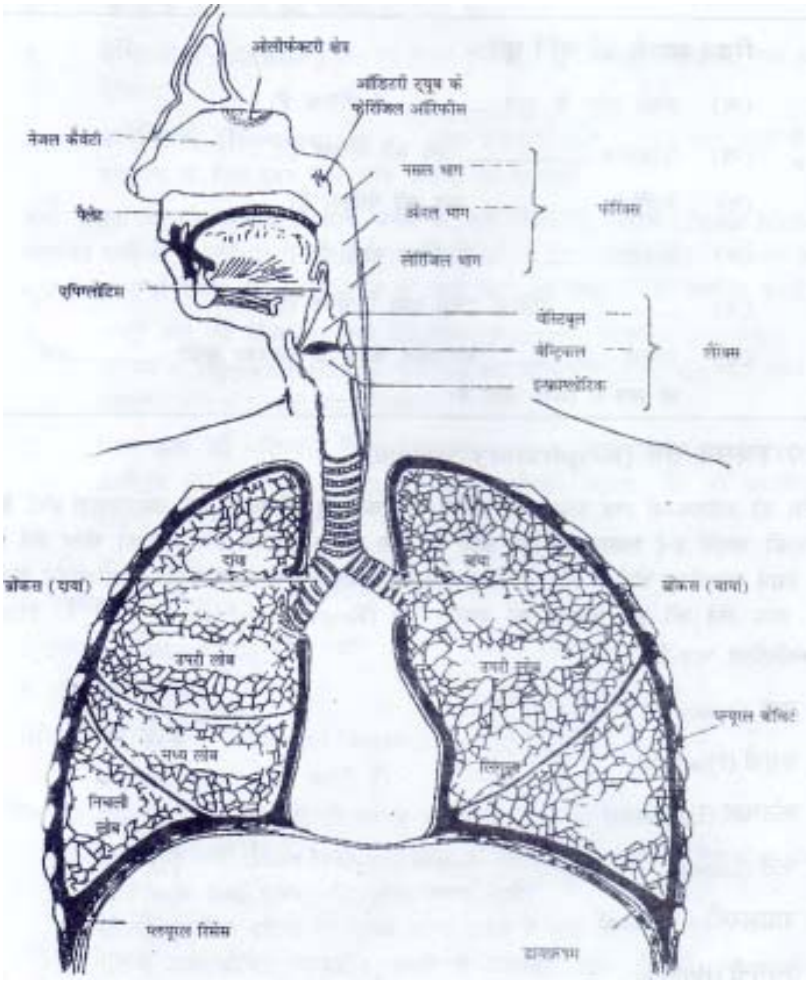

चित्र 4.8: श्वसन संस्थान के अंग

श्वसन संस्थान के मुख्य अंग हैं :

नाक/नासिका : यह श्वसन संस्थान का प्रथम भाग है, जिसमें एक बड़ी नासागुहा (nasal cavity) होती है जो दो भागों (दाईं तथा बाईं नासिका) में बंटी होती है।

ग्रसनी (Pharynx) : यह नली के आकार की होती है जो नाक और मुँह के पीछे स्थित होती है।

स्वरयंत्र (Larynx) : यह गर्दन में स्थित एक छोटा कोष्ठ है, इसे स्वरयंत्र भी कहा जाता हैं क्योंकि यह आवाज़ निकालने में सहायक होता है।

टिप्पणी

वायुनली (Trachea): यह स्वरयंत्र के साथ ही मिली होती है। नीचे की ओर जाकर यह दो भागों (दाई तथा बाई वायु नली) में बंट जाती है और दोनों क्रमशः दाएं तथा बाएं फेफड़े में प्रवेश करती हैं। फेफड़ों में जाकर यह और छोटी नलियों (bronchioles) और फिर सबसे छोटी नलिकाओं (alveoli) में परिवर्तित हो जाती हैं।

फेफड़े : यह दो गुब्बारे जैसी सदृश रचनाएं हैं, जो हृदय के दोनों तरफ वक्ष गुहा में स्थित होते हैं। प्रत्येक फेफड़े के ऊपर एक परत होती है, जिसे फुफ्फसीयावरण या प्लुरा (Pleura) कहते हैं और इसमें एक द्रव्य (Pleural fluid) होता है।

श्वसन की पेशी : श्वसन की पेशी के अंतर्गत दो भाग होते हैं, यथा छाती की पेशियाँ (intercostals muscles) और मध्यपटन (diaphragm)।

श्वसन की प्रक्रिया

श्वसन वह प्रक्रिया है जिसमें फेफड़े, वायु ग्रहण करने के लिए फैलते हैं तथा उसे बाहर निकालने के लिए सिकुड़ते हैं। एक मिनट में हम 15–16 बार साँस लेते हैं। श्वसन के क्रम में तीन रूप होते हैं –साँस अंदर लेना(inspiration), साँस बाहर छोड़ना (expiration) तथा विराम (pause) । फेफड़ों का फैलना तथा सिकुड़ना यह दर्शाता है कि वायु नली तथा वातावरण में गैसों का आदान–प्रदान निरंतर व नियमित रूप से हो रहा है। साँस लेते समय छाती का फूलना पेशीय क्रिया (muscular activity) है, जो थोड़ी ऐच्छिक और थोड़ी अनैच्छिक होती है। सामान्य श्वास लेने में श्वसन प्रक्रिया की मुख्य पेशी – छाती की पेशी और मध्यपटन हैं।

5. पाचन तंत्र (Digestive System)

पाचन तंत्र पोषक तत्वों (Nutrients) को अवशोषित करता है, जिनका प्रयोग प्रत्येक कोशिका द्वारा किया जा सकता है। शरीर की कोशिकाएं (cells) खाए गए भोजन से पोषक तत्वों को सीधे अवशोषित नहीं कर सकती हैं। भोजन पहले पदार्थ (Substance) में परिवर्तित होता है जिसे कोशिकाएं ग्रहण करती हैं। भोजन को प्रयुक्त पदार्थ में परिवर्तित होने की इस प्रक्रिया को पाचन क्रिया (Digestion) कहते हैं। पाचन प्रक्रिया के पश्चात पोषक तत्व (nutrients) रक्त (blood) में प्रवाहित होते हैं। आंत्र से रक्त में पोषक तत्वों के इस स्थानांतरण को अवशोषण कहते हैं। इस प्रकार, पाचन तथा अवशोषण (Absorption) पाचक प्रणाली के दो मुख्य कार्य हैं।

पाचन इंद्रियां

पाचक प्रणाली को अति लंबी पेशीय नली के रूप में देखा जा सकता है, जो मुख से आरंभ होकर गुदा (Anus) पर समाप्त होती है। इस नली को आहार नाल (Alimentary canal) कहते हैं तथा यह कई भागों से बनी होती है।

भोजन मुंह से आहर नली में प्रवेश करता है। इस नली में भोजन के प्रवेश करते ही यांत्रिकीय विघटन (मुंह द्वारा चबाने, मसलने और घिसने) द्वारा पाचक प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। लार

टिप्पणी

ग्रंथि (अवचुम्बकीय, अधोजिह्वा तथा कर्णपूर्व) स्राव उत्पन्न करती हैं जो भोजन को घुलनशील करती है। आहार नाल की भीतरी परत म्यूकस को स्रावित करती है जो विलयित भोजन को नीचे की ओर संचालित करने में सहायक होता है।

मुख गुहा के पीछे ग्रसनी होती है, जो भोजन का एक मार्ग है। कंठछद एक फ्लेप है जो शरीर में भोजन या पानी के प्रवेश के पश्चात श्वासनली को आवरित कर लेता है।

श्वासनली को आवरित करने से भोजन व पानी को वायु नली में प्रवेश करने से रोका जाता है।

ग्रासनली (Oesophagus) ग्रसनी से भोजन प्राप्त करती है। भोजन ग्रासनली से होकर लार समान संचलन से गुजरता है जिसे पैरिस्टलेसिस (Peristalsis) कहते हैं। उदर, आहार नाल का एक व्यापक भाग ग्रासनली (Oesophagus) से भोजन व पानी प्राप्त करता है।

छोटी आंत (Small Intestine) आहार नली का भाग है, जहां अधिकतम अवशोषण कार्य पूरा होता है। छोटी आंत की आंतरिक सतह में विल्लाइ नामक अनेक प्रक्षेपण होते हैं। प्रत्येक विल्लस में कोशिकाएं होती हैं जो खाए गए भोजन से पोषक तत्व अवशोषित करती हैं। वह भोजन तत्व जो अवशोषित नहीं होते हैं, वह पेरिस्टिलेसिस प्रक्रिया द्वारा छोटी आंत से बड़ी आंत में पहुंच जाता है।

बड़ी आंतः यह छोटी आंत के साथ मिली होती है तथा शेष अवशोषित भोजन को प्राप्त करती है, जिसका शरीर के लिए कोई महत्व नहीं होता। बड़ी आंत में पानी, खनिज लवण (मिनिरल) तथा विटामिन अवशोषित होते हैं। यह म्यूकस (Mucus) को स्रावित करती है, जो मल के संचलन में सहायक होता है।

आहार नाल (Alimentary Canal) के अंत में 6 से 8 इंच का मलाशय (Rectum) होता है। यह मल को जमा करता है। गुदा (anus) आहार नाल का अंतिम भाग है। यहां से समय–समय पर मल शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

सहायक संरचनाएं (Accessory Structures) :–

ये वे संरचनाएं हैं जो पाचन क्रिया में सहायक होती हैं।

क. यकृत

ख. पित्ताशय

ग. अग्न्याशय

क) यकृत :– यह शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है तथा इसके निम्नलिखित कार्य हैं –

1. पित्त का सृजन करना।
2. छोटी आंत में अवशोषित विष को समाप्त करना।
3. विटामिनों को जमा करना।

4. यकृतिन का उत्पादन, जो रक्त को स्कंदन से बचाती है।
5. प्रतिरक्षियों का उत्पादन जो संक्रमणों तथा बाहरी तत्वों से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

ख) पित्ताशय :— यह एक पेशीय थैली है जिसमें पित्त एकत्रित होता है। जब काइम ग्रहणी में पहुंचती है तो पित्ताशय संकूचित होता है और पित्त ग्रहणी में प्रवाहित होती है, जिससे काइम का रासायनिक भंजन होता है। पित्त वसा के पाचन में सहायक होता है।

ग) अग्न्याशय :— यह अग्न्याशयी रस उत्पन्न करता हैं जो काइम के रासायनिक भंजन में सहायक होता है। ये इंसुलिन भी उत्पन्न करता है जो ऊतकों द्वारा शर्करा के उपयोग को नियंत्रित करता है।

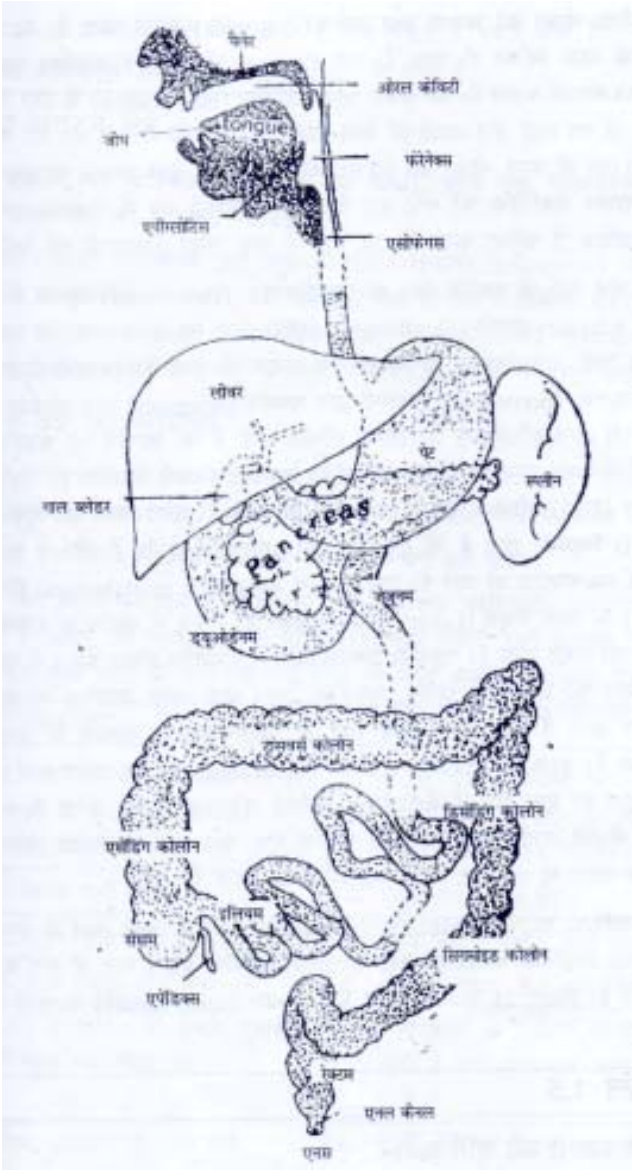

चित्र 4.9: पाचन प्रणाली का रेखाचित्र

टिप्पणी

पाचन की प्रक्रिया

पाचन प्रणाली में होने वाली चार मुख्य क्रियाएं हैं :

- भोजन ग्रहण करना अर्थात भोजन को मुँह द्वारा शरीर के अंदर ले जाना।
- खाने को चबाकर महीन करना; इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।
- यांत्रिक यानि दांतों द्वारा चबाकर और रासायनिक ढंग से एन्जाइम द्वारा, जो कि पाचन प्रणाली की ग्रंथियों द्वारा स्रावित रूप में विद्यमान होते हैं। ये स्राव हैं: लार ग्रंथियों से लार (Saliva)।
- अमाशय से पाचक रस
- छोटी आंत से आंत्रिक रस (intestinal juice)
- पेन्क्रियाज़ से पेन्क्रियाटिक रस
- यकृत से पित्त (Bile)

प्रचूषण – वह प्रक्रिया है जिसमें पचे हुए खाद्य पदार्थ, खाद्य नली के कुछ अंगों से गुजरते हुए, पूरे शरीर में प्रवाह के लिए रक्त में मिलते हैं।

निष्कासन– पाचन के दौरान उत्पन्न अनावश्यक तत्व, जो न तो पचते हैं और न ही उनका अवशोषण हो पाता है, मल द्वारा शरीर से निष्कासित हो जाते हैं।

6. हृदय – संवहन तंत्र (Cardio-Vascular System)

इसे अधिर परिसंचरण तन्त्र भी कहा जाता है। इस तंत्र में रक्त वाहिकाएं (धमनियां तथा शिराएं), हृदय तथा परिसंचरण तंत्र (रक्त वाहिकाओं के रास्ते रक्त का संचरण) शामिल है।

रक्त कोशिकाओं को पोषक तत्व तथा ऑक्सीजन संचारित करता है तथा व्यर्थ अणु को वापस ले जाता है। रक्त में लसीका तंत्र द्वारा उत्पन्न कोशिकाएं भी समाविष्ट होती है। लसीका तंत्र सूक्ष्मजीवों द्वारा संक्रमण को निष्प्रभावी बनाकर शरीर को बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है।

हृदय–संवहन तंत्र की भूमिका

ऊतक की मांगों के प्रतिउत्तर में संपूर्ण शरीर में इंद्रियों, उतकों तथा कोशिकाओं को निरंतर ऑक्सीजन, पोषक तत्व, हार्मोन तथा प्रतिरोधन उपलब्ध कराना।

ऊतकों में से उपापचय के अंतिम उत्पादों को हटाना।

रक्त वाहिकाएं तीन प्रकार की होती हैं यथा धमनियां, शिरा तथा केशिकाएं। धमनियां तथा शिरा बड़ी वाहिकाएं हैं जिनमें तीन परतें होती हैं, किन्तु केशिकाएं पतली होती हैं तथा इनमें श्लेष्मा झिल्ली की एकल परत होती है।

हृदय (Heart)

हृदय एक पेशीय इंद्री है जो दो फेफड़ों के मध्य, छाती की बाईं ओर स्थित होती है। यह हृदयावरण (pericardium) नामक श्लेष्मा झिल्ली की दो परतों से आवरित (Covered) है जिसमें हल्का हृदयावरणि द्रव्य होता है। यह द्रव्य स्नेहक (lubricants) के रुप में कार्य करता है।

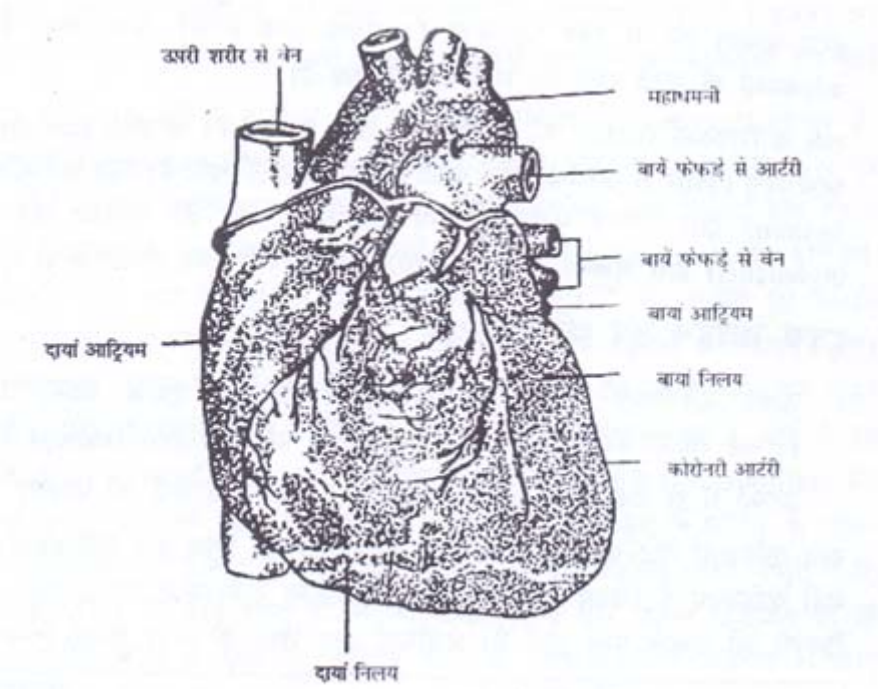

चित्र 4.10: प्रमुख रक्त वाहिकाओं के साथ हृदय

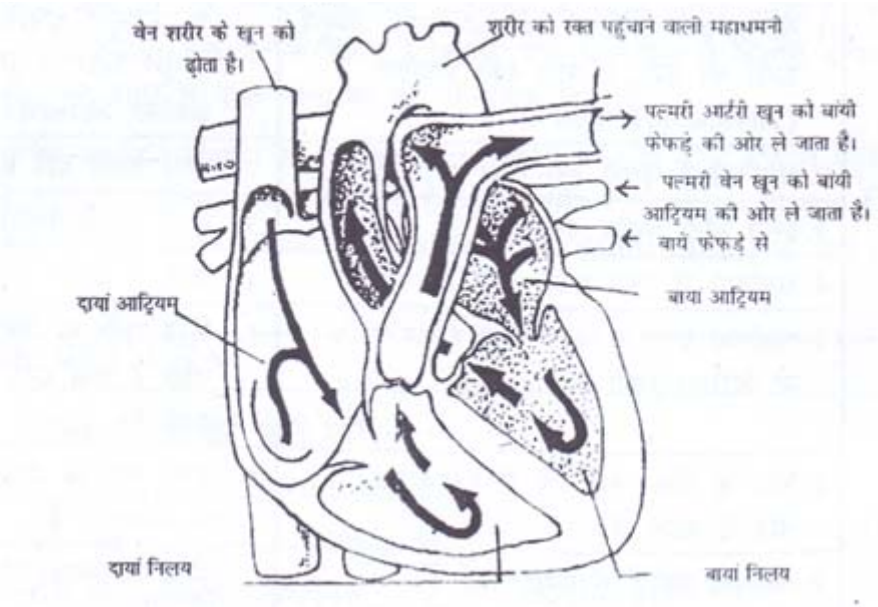

चित्र 4.11: हृदय का भीतरी दृश्य, ऐरो रक्त प्रवाह की दिशा को दर्शाते हैं

टिप्पणी

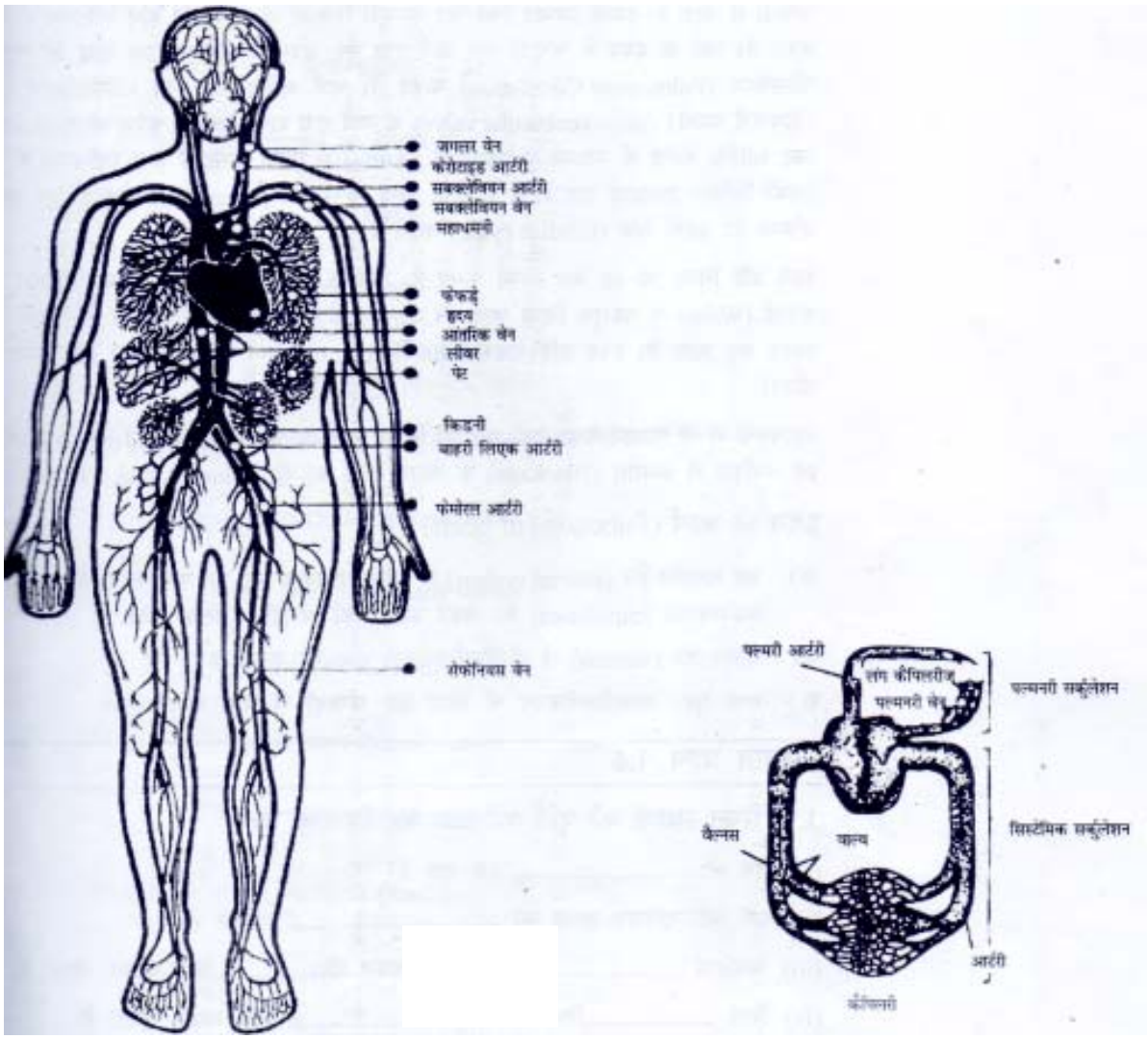

चित्र 4.12: परिसंचरण तन्त्र

हृदय के चार कक्ष (Chambers) होते हैं यथा दायां आट्रियम (right atrium), दायां निलय (right ventricle), बायां आट्रियम (left atrium) तथा बायां निलय (left ventricle) ऊर्ध्व महाशिरा (superior Vena Cava) तथा अधेमहाशिरा (inferior Vena Cava) नामक दो बड़ी शिरा द्वारा दाएं ऑट्रियम में वीनस रक्त (Venous Blood) प्रवेश करता है। रक्त दाएं त्रिवलय वाल्व के माध्यम से दायें ऑट्रियम से दाएं निलय में प्रवेश करता है। दाएं निलय से रक्त फुस्फुस शिराओं के मार्ग द्वारा बाएं आट्रियम में प्रवेश करता है। रक्त के हृदय से फेफड़ों तक जाने तथा पुनः हृदय में जाने की इस यात्रा को फुस्फुस (द्विवलनी वाल्व) के मार्ग द्वारा वाएं निलय में प्रवेश करता है। यहां से रक्त इसकी विभिन्न शाखाओं द्वारा शरीर के सभी भागों में संचरित होता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को हृदयी चक्र कहते हैं।

टिप्पणी

हृदय प्रति मिनट 70–80 बार स्पंदन करता है। रेडियल धमनी के स्पन्दन के कारण हृदय स्पंदन को कलाई में महसूस किया जाता है। व्यायाम के पश्चात तथा उच्च जवर के दौरान हृदय स्पंदन बढ़ जाता है। हृदय प्रति धड़कन 200 मि.ली. रक्त पम्प करता है अर्थात प्रति मिनट 16 लीटर।

महाधमनी से दो शाखाएं यथा बायीं व दायीं किरीट धमनियां हृदय को रक्त की आपूर्ति करती हैं। इन धमनियों में अवरोध के कारण दिल का दौरा पड़ता है।

हृदय के कार्य

क) यह धमनीय तंत्र में ऑक्सीजनीकृत रक्त को पम्प करता है जहां से यह कोशिकाओं को लेकर ऊतकों की आपूर्ति के लिए भेजता है।

ख) वीनस तंत्र से डीऑक्सीजनीकृत रक्त को एकत्र करता है।

ग) तत्पश्चात् पुनः आक्सीजनीकरण के लिए इसे फेफड़ों में पम्प करता है।

7. उर्त्सजन तंत्र (Excretory System)

शरीर से अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने की प्रक्रिया को उत्सर्जन तंत्र कहते हैं। अपशिष्ट गैसों को फेफड़ों के माध्यम से बाहर निकाला जाता है। अपशिष्ट तरल पसीने के रूप में त्वचा से तथा मूत्र के रूप में गुर्दों से बाहर निकलता है तथा ठोस अपशिष्ट मल पदार्थ के रूप में मलाशय से बाहर निकलता है। अधिकतम उत्सर्जन गुर्दों (Kidney) द्वारा किया जाता है। अतः इसे मूत्र तंत्र (Urinary System) भी कहते हैं। इस तंत्र में दो मूत्रवाहिकाएं (Ureters), मूत्राशय (Urinary bladder) तथा मूत्र मार्ग (Urethra) शामिल हैं।

इस संस्थान के मुख्य अंग हैं :

दो गुर्दे जो मूत्र स्राव करते हैं– उदर के पीछे, रीढ़ के दोनों ओर सेम की फली के बीज की तरह दो गुर्दे स्थित हैं। प्रत्येक गुर्दा असंख्य क्रियात्मक इकाइयों से बना होता है, जिसे 'नेफ्रोन' कहते हैं।

दो मूत्र नली (Ureter) : दोनों गुर्दों से एक–एक नली निकलकर मूत्राशय में जाती है। ये दोनों नलियां मूत्रनली कहलाती हैं और मूत्र को गुर्दे से मूत्राशय तक पहुँचाती हैं।

मूत्राशय (Urinary bladder) : यह एक लचीला, फैला हुआ थैलीनुमा अंग है, जहाँ पेशाब थोड़े समय के लिए इकट्ठा होता है।

मूत्रद्वार (Urethra) : इसके द्वारा मूत्र मूत्राशय से निकलकर बाहर निकलता है।

टिप्पणी

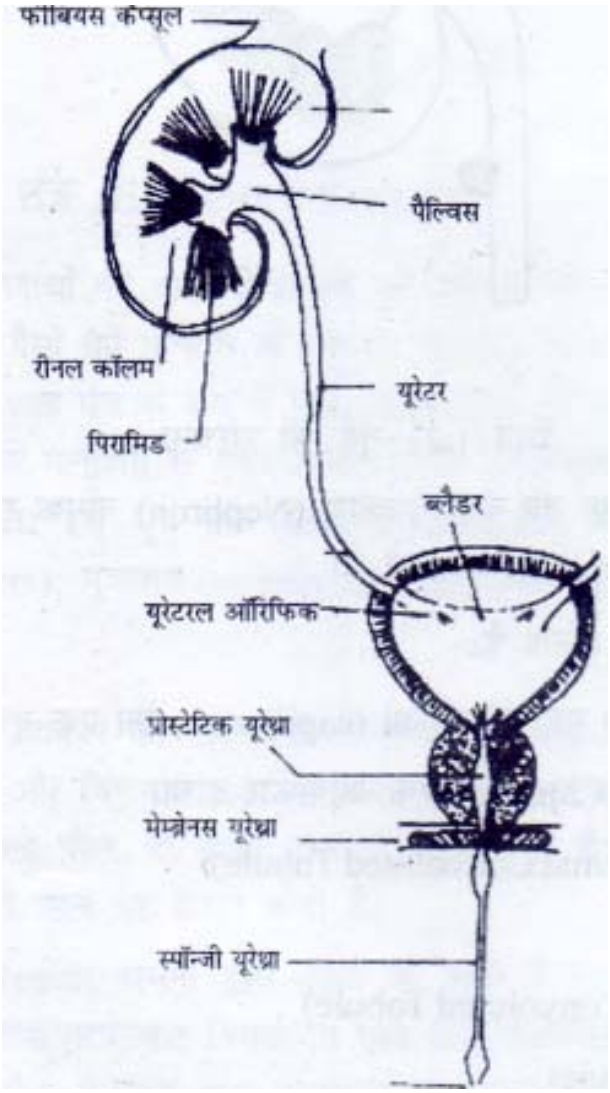

चित्र 4.13: मूत्रोत्सर्ग संस्थान

मूत्रोत्सर्ग संस्थान के मुख्य कार्य :

1) **यह रक्त के दूषित अंश —** अमोनिया, यूरिया, यूरिक अम्ल आदि को शरीर से निष्कासित करता है।

2) यह शरीर में तरल पदार्थ तथा आवश्यक तत्वों का संतुलन बनाए रखने में सहायता करता है।

3) यह शरीर में रक्त तथा अन्य द्रव्यों का सामान्य pH बनाए रखने में सहायक होता है।

4) यह रक्त के कई तत्वों जैसे कैल्शियम आदि का उचित तालमेल बनाए रखता है।

5) यह रक्त तथा ऊतकों में दबाव (osmotic pressure) बनाए रखता है।

टिप्पणी

8. तंत्रिका तंत्र (Nervous System)

तंत्रिका तंत्र उद्दीपन (stimuli) को प्राप्त करने तथा उस पर प्रतिक्रिया करने के लिए संयुक्त रुप से जुड़ी तंत्र कोशिकाओं का संघटन है। यह शरीर की सभी क्रियाओं को नियंत्रित करता है। इसके तीन भाग हैं:

क) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र जिसमें मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु शामिल हैं।

ख) परिरेखीय तंत्रिका तंत्र – इसमें मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु से बाहर की तंत्रिकाएं तथा गुच्छिका (Ganglia) शामिल हैं।

ग) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomic Nervous System) :–

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के दो भाग हैं :

क. अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र

ख. परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के निम्नलिखित भाग हैं

क) प्रमस्तिष्क (Cerebrum)

ख) अनुमस्तिष्क (Cerebellum)

ग) थैलेमस (Thalamus)

- अधष्चेतक (Hyothalamus)
- पोन्स
- मेडुला ऑब्लांगेटा
- मध्य–मस्तिष्क
- मेरूरज्जु

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र आंतरिक अंगों की सभी गतिविधियों को नियंत्रित करता है।

- सेरीब्रल हेमीस्फेयर
- थैलेमस
- हाइपोथैलेमस
- कोर्पस केलोसम
- मिडब्रेन

टिप्पणी

मेडुला ओबलोंगेट (ब्रेन स्टेम)

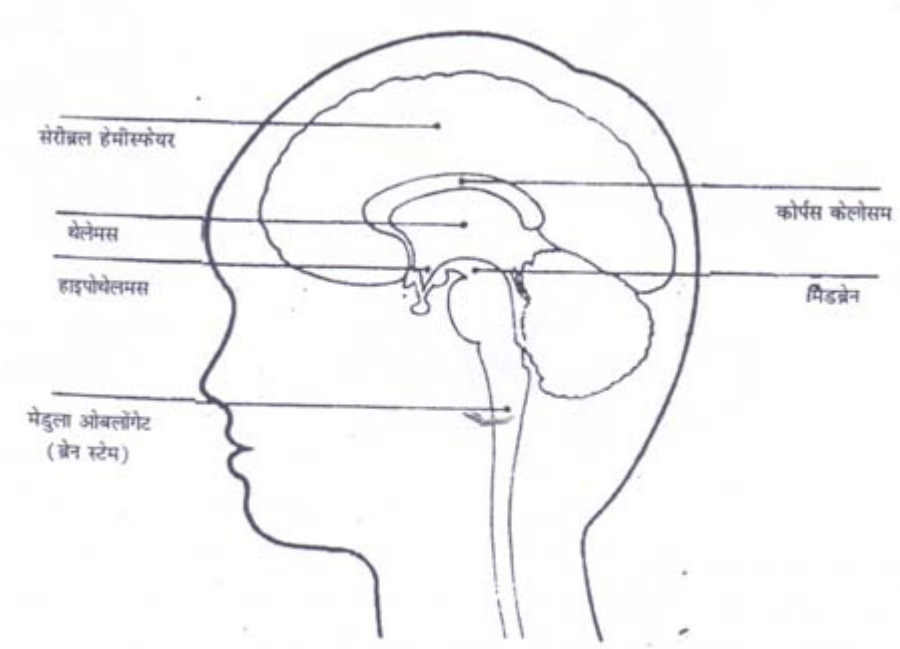

चित्र 4.14: मस्तिष्क का रेखा चित्र

9. ग्रंथिमय तंत्र (Gandular System)

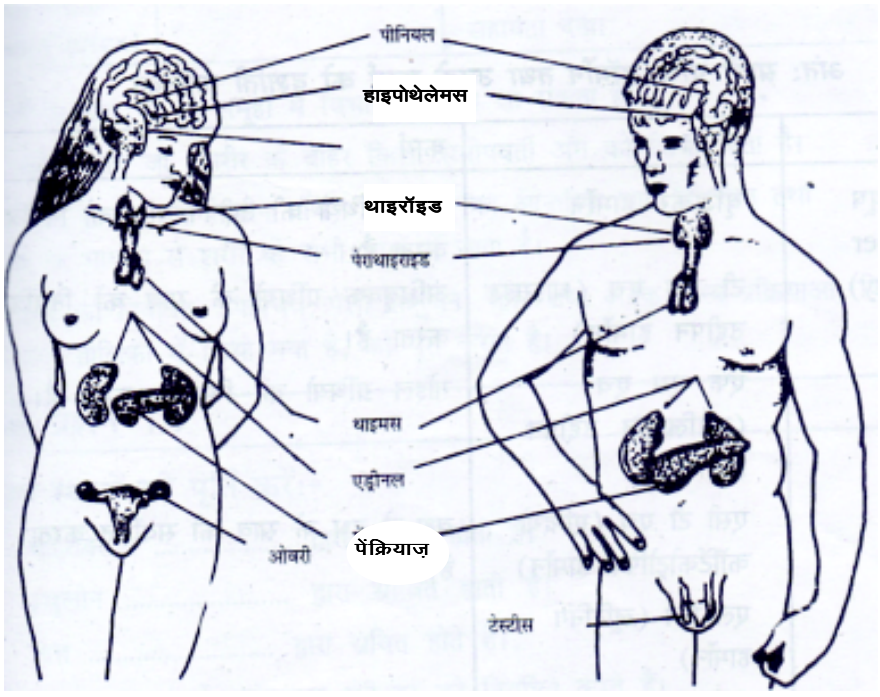

चित्र 4.15: ग्रंथिमय तंत्र के भाग

टिप्पणी

शरीर की ग्रंथियां हॉर्मोन्स स्रावित करती हैं जिनका प्रयोग शरीर के अन्य भागों में किया जाता है। शरीर में यह ग्रंथियां दो प्रकार की होती हैं।

बहीःस्रावी ग्रंथियां (Exocrine Glands)	**अंतःस्रावी ग्रंथियां (Endocrine Glands)**
इनमें वाहिनियां होती हैं जो शरीर की अन्य इन्द्रियों में खुलती हैं। उदाहरण के लिए लार ग्रंथियों से पाचक रस अग्न्याशय से स्रावण मूत्राश्य से पित्त स्तन ग्रंथि से दूध स्वेद ग्रंथि से पसीना अवत्वक ग्रंथि से त्वग्नवसा	ये वाहिनी रहित ग्रंथियां हैं, जो हॉर्मोन स्रावित करती हैं तथा इन्हें रक्त परिसंचरण में निर्गम करती हैं। पीयूष (Pituitary) थाइरॉइड (Thyroid) परावटु (Parathyroid) अंडाशय (Pancreas) टैस्टीस (Testes) अधिवृक्क अन्तस्था (Adernal Medulla) अधिवृक्क वल्कुट (Adernal Cortex)

ग्रंथियां

अंतः स्रावी ग्रंथि, हॉर्मोन तथा उनके कार्य को दर्शाती तालिका

ग्रंथि	**हॉर्मोन**	**कार्य**
अग्र पीयूष (Anterier Pituitary)	वृद्धिकर हार्मोन टी एस एच (थाइराइड उद्दीपन हार्मोन) एफ एस एच (फोलिक्ल उद्दीपन हार्मोन) एसी टी एच (इन्द्रियों कॉर्टिकोट्रोपिक हार्मोन) एलएच (लूटिनिंग हार्मोन) प्रोलैक्टीन	अन्य ग्रंथियों की उद्दीपन वृद्धि को नियंत्रित करता है। अधिवृक्क ग्रंथियों के स्राव को नियंत्रित करता है। गोंइल ग्रंथियों को नियंत्रित करता है। वक्ष से दूध के स्राव को सक्रिय करता है।
पीयूष (Posterior Pituitary)	ए डी एच (एंटीड्यूरेटिक हॉर्मोन) ऑक्सीटोसिन	डायूरेटिक को नियंत्रित करता है। गर्भाशय संकुचन को उद्दीपित करता है।

टिप्पणी

ग्रंथि	हॉर्मोन	कार्य
थाइराइड (Thyroid)	थाइरोक्सीन	उपापचय (Metabolism) की दर को नियंत्रित करता है।
पैराबटु (Parathyroid)	परावटु हार्मोन	कैलशियम तथा फास्फोरस उपापचय को विनियमित करता है।
अग्न्याशय (Pancreas)	लैंगेरम के आइसलेट से इंसुलीन	ग्ल्यूकोज के उपयोग के लिए अनिवार्य है।
अंडाशय (Ovaries)	एस्ट्रोजन व प्रोजेस्टरोन	महिला की जनन इंद्रियों का विकास व अनुरक्षण।
टैस्टीस (Testes)	टेस्टोस्टरोन	पुरूषों की जनन इंद्रियों का विकास व अनुरक्षण करता है।
अधिवृक्क अन्तस्था (Adernal Medulla)	एड्रीनलीन	शरीर को लड़ने के लिए तैयार करता है।
अधिवृक्क बल्कुट (Adernal Cortex)	कोर्टियोकोएड	शरीर को तनाव व संक्रमण से निपटने में सहायता देता है।

ग्रंथियों से स्राव को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है–

बाहरी स्राव जो शरीर के बाहर किसी समीपवर्ती अंग को किया जाता है और तंत्रों के माध्यम से शरीर के सभी भागों में जाता है।

हार्मोन वृद्धि को नियंत्रित, उपापचय, पेशी संकुचन, जनन तथा अनेक अन्य प्रक्रियाओं, जिनका वर्णन ऊपर तालिका में किया गया है, को पूरा करता है।

10. जनन तंत्र (Reproductive System)

अधिकतर जानवरों में नर व मादा जाति की कोशिकाएं होती हैं, जो मिलकर जनन करते हैं। इस प्रकार मनुष्य में भी पुरूष जाति होती है जिसमें लिंग कोशिकाएं यथा शुक्र होते हैं, तो महिला जाति में अण्डाणु नामक लिंग कोशिकाएं होती हैं जो एकीकृत होने का प्रयास करते हैं। ये लैंगिक अन्तरसंबंधों के पश्चात जनन करते हैं।

महिला जनन तंत्र (Female Reproductive System)

महिला जनन तंत्र का मुख्य कार्य उर्वरण के लिए अण्डाणु उत्पन्न करना है और विकसित होने वाले गर्भ को धारित कराना है। उर्वरण के पश्चात माता के गर्भाशय में गर्भ 9 माह या 40 सप्ताहों के लिए विकसित होता है। जनन तंत्र में महिला अंडाशय (Ovaries), डिम्ब वाहिनी, गर्भाशय, योनि आदि अंग शामिल हैं–

अंडाशय दो छोटे अंडाकार ढांचे (दोनों ओर एक–एक) हैं जो गर्भाशय के पार्श्व दीवार के समीप स्थित होते हैं। ये महिला लैंगिक कोशिका या अण्डाणु तथा एस्ट्रोजन नामक हार्मोन को जन्म देते हैं। लगभग प्रत्येक 28 दिनों में अण्डाणु परिपक्व हो जाता है और अंडाशय निर्गम होकर डिम्बवाहिनी नली में प्रवेश करता है।

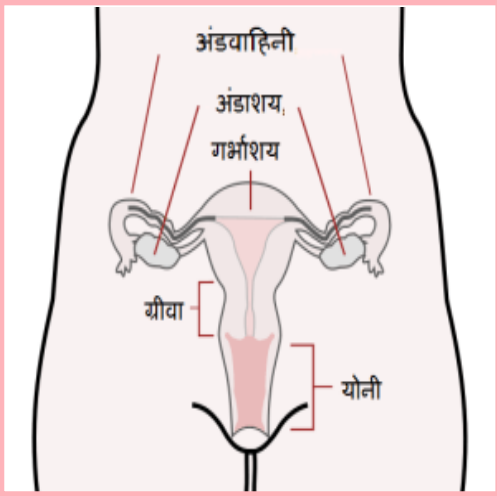

चित्र 4.16: महिला जनन तंत्र

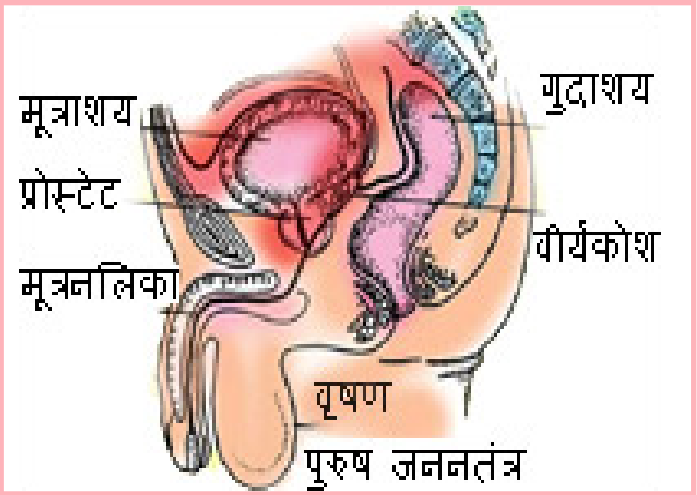

चित्र 4.17: पुरूष जनन तंत्र

अण्डाशय (Ovaries) :– ये बादाम जैसे आकार के एक युग्म हैं, जो उदरीय गुहा (abdominal cavity) में कशेरूक दण्ड के दोनों ओर एक–एक स्थित होते हैं।

प्रत्येक अंडाशय अंडाशयधर स्नायु (mesovarian ligaments) द्वारा व्यापक स्नायु के उच्च स्तर के साथ संलग्न है।

कार्य

अंडाणु उत्पन्न करना।

महिला हार्मोन –एस्ट्रोजिन तथा प्रोजेस्टरोन का स्रवण। ये हार्मोन :–

- द्वितीय लैंगिक लक्षण को नियंत्रित करते हैं।
- डिम्ब वाहिनी, गर्भाशय, योन की वृद्धि व विकास को नियंत्रित करते हैं।
- आर्तव (menstrual cycle)चक्र को नियंत्रित करते हैं।

पुरूष जनन तंत्र (Male Reproductive System): **इस तंत्र में अण्डग्रंथि (पुरूष जननग्रंथि), अध्यंड, शुक्र प्रवाहिनी (vas deferens), शुक्राशय (seminal vesicles), प्रोस्टेट ग्लैंड (prostate**

टिप्पणी

gland), मूत्रमार्ग (urethra), शिश्न (penis) आदि शामिल है :—

अध्यंड (Epididymis) **—** प्रत्येक अध्यंड में झिल्लीदार आवरण से संलिप्त एक एकल सुगढित कुंडलीकृत संकरी नली होती है। यह लगभग 20 इंच लंबी होती हैं यह अण्डग्रंथि के साथ व उसके ऊपर आवरित होती है। इसका ऊपरी छोर शुक्रजनक नलिकाओं से जुड़ा होता है तथा निचला छोर शुक्र प्रवाहिणी से जुड़ा होता है।

कार्य

1. यह अंडग्रंथि से शुक्र प्रवाहिणी तक शुक्राणुओं के मार्ग में डक्ट का कार्य करता है।
2. यह अपसारण (ejaculation) से पूर्व शुक्राणु को भण्डारित करता है।
3. शुक्राणु द्रव्यों में अंशदान करता है।

शुक्र प्रवाहिणी (Vas Deferens) — अंडग्रंथि की स्रावक वाहिनी अध्यंड की निरन्तर पतली पेशीय नली जो लगभग 18 इंच लंबी है तथा अपसरित वाहिनी के लिए प्रत्येक अंग से शुक्राणु पारवहन करता है तथा यह अपसारित वाहिनी प्रोस्टेटिक मूत्रमार्ग में खाली होता है।

अपसारित वाहिनी — शुक्रीय वाहिनी के अंतिम भाग को निर्माण शुक्राशय के स्रावक तथा आस्थगित वाहिनियों के संयोजन द्वारा होता है।

शुक्राशय (Seminal Vesicles) — यह व्यावृत्त पाउचों का एक युग्म है जो श्यान तरल स्रावित करता है तथा यह श्यान तरल वीर्य में मुख्य भाग का सृजन करता है। इसमें फलशर्करा होता है तथा इसमें प्रोस्टाग्लैंडिन भी होते हैं।

पुरस्थ ग्रंथि — ये संयुक्त नलिका ग्रंथियां हैं जो ब्लैडर के ठीक नीचे स्थित है। मूत्रमार्ग के मध्य में एक छोटे छिद्र से गुजरता हैं। बुजुर्गों में पुरस्थ के बढ़ने से मूत्रमार्ग संकुचित होता है और इसके कारण मूत्र अवरूद्ध होता है।

प्रकार्य —

1. पुरस्थ एक पतला क्षारीय पदार्थ स्रावित करती है जो शुक्रीय द्रव्य के बड़े भाग के निर्माण में योगदान देता है।
2. इसकी क्षारियता पुरूष मूत्रमार्ग में उपस्थित अम्ल से तथा महिलाओं की योनि में उपस्थित अम्ल से शुक्राणु को सुरक्षा प्रदान करती है तथा मूत्र द्वारा मूत्र मार्ग में जाने वाली क्रिया को निष्क्रीय बनाती है।
3. यह शुक्राणु की नश्वर्त में वृद्धि करती है।

कंद—मूत्रिमार्ग ग्रंथि — ये पुरस्थ के नीचे स्थित होती हैं यह मटर के आकार की होती है। पुरस्थ द्रव्य के समान वीर्य का क्षारीय द्रव्य भी स्रावित करता है।

मूत्रमार्ग — यह मूत्र तथा शुक्राणु के लिए एक छोटा समान मार्ग है तथा पुरस्थ ग्रंथि के माध्यम से मूत्राशय से शरीर के बाहर निकलता है।

शिश्न — यह एक मैथुनांग है जो महिला की योनि में शुक्राणु एकत्र करता है। यह उत्थापित तीन सिलैड्रीकृत शैल से निर्मित है तथा प्रत्येक पृथक झिल्लीदार आवरण से घिरा रहता है। त्वचा के आवरण में समूहबद्ध रहते हैं। मूत्रमार्ग शिश्न से हो कर निकलता है जो मूत्र के लिए मार्ग के रूप में कार्य करता है।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 4.3

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   क) ..... के ढांचे को कंकाल कहते हैं।

   ख) हमारे शरीर में दो प्रकार की पेशियां हैं अर्थात् ..... और ..... ।

   ग) पाचन तथा .....पाचक प्रणाली के दो मुख्य कार्य हैं।

   घ) हृदय के ..... कक्ष होते हैं।

   ड) गुर्दों की मूल प्रकार्यात्मक इकाई .....है।

2. सही (√) अथवा गलत (×) का निशान लगाएँ।

   क) अध्यावरणी तंत्र में हम त्वचा की संरचना एवं कार्य का अध्ययन करते हैं। ( )

   ख) हमारे शरीर में कुल 206 पेशियां हैं। ( )

   ग) तंत्रिका तंत्र की मूल इकाई वृक्काणु है। ( )

   घ) अग्नाशय ग्रंथि से इंसुलीन हॉर्मोन स्रावित होता है। ( )

   ड) प्रोस्टेट ग्लैंड केवल पुरूषों में पाया जाता है। ( )

4.7 ज्ञानेन्द्रियां (Sense Organs)

हमारे शरीर में विशेष संवेद होते हैं जैसे देखना, सुनना, स्वाद तथा सूंघना तथा सामान्य संवेद जैसे स्पर्श, तापमान (गर्म व ठंडा), दबाव तथा दर्द का संवेद। हम अपने नेत्रों से देख सकते हैं, अपने कानों से सुन सकते हैं, अपनी जीभ से स्वाद ले सकते हैं तथा अपनी नाक से सूंघ सकते हैं जबकि सामान्य संवेदों की अनुभूति हम शरीर की त्वचा के माध्यम से कर सकते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैं :

नेत्र(Eye) :— नेत्र हमें दृष्टि प्रदान करते हैं हम अपने दो नेत्रों की सहायता से विभिन्न तत्वों को देखते हैं। नेत्र गेंद की आकार की एक इन्द्री है, जो नेत्र कक्ष (eye orbit) में स्थित है। पलकें तथा नेत्र पक्ष्म नेत्रों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। लैक्रिमल वाहिनी द्वारा स्रावित आंसू नेत्रों से बाहरी पदार्थों को धोने में सहायता प्रदान करते हैं।

कान :— हमारे शरीर में चेहरे के दोनों ओर एक–एक कान अर्थात कुल दो कान होते हैं। कान हमें श्रवण संवेद तथा साम्यावस्था उपलब्ध कराते हैं। कान तीन भागों में विभाजित होते हैं:

आंतरिक कान :— इसमें ऑरिकल या बाहरी प्रक्षेपण तथा बाहरी श्रवण नाल; कर्णपटह झिल्ली या कर्ण गोला शामिल होते हैं जिसमें बाहरी तथा मध्य कान आते हैं।

मध्य कान :— यह एक वायु –क्षेत्र है जिसमें तीन छोटी अस्थियां या अस्थिका शामिल होती हैं, जो ध्वनि तरंगों को सवर्धित करता है।

आन्तरिक कान :— इसमें कर्णवत तथा अर्ध–गोलाकार नाल शामिल हैं। कर्णावत मध्य कर्ण से प्राप्त ध्वनि तरंगों को तंत्रिकाओं में प्रसारित करता है, जो इन ध्वनि तरंगों को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। अर्धगोलाकार नाल प्रधाणंतंत्रिका के माध्यम से अनुमस्तिष्क में शरीर के संतुलन को बनाए रखता है।

स्वादेन्द्री (Organ of Taste):— जीभ में उपस्थित संग्राहक स्वाद को महसूस करते हैं तथा इन संग्राहकों को स्वाद–कलिका कहते हैं। स्वाद कलिकाएं चार प्रकार के मुख्य स्वादों को महसूस कर सकती हैं जैसे मीठा, खट्टा, नमकीन तथा कड़वा।

गंध का संवेद (Senes of Smell):— नाक के भीतर नासिका गुहा में संग्राहक होते हैं, जो सभी प्रकार की गंध को प्राप्त करते हैं। घ्राण तंत्रिका (olfactory nerve) घ्राण उपकला से गंध का संवेद प्राप्त करके उसके अर्थनिर्वचन के लिए मस्तिष्क के पास भेजता है।

स्पर्श संवेद (Sense of Touch) :— स्पर्श का अनुभव स्पर्श कणिका नामक संग्राहकों द्वारा किया जाता है। ये कणिकाएं त्वचा की अन्तस्त्वचा में स्थित होती हैं। जीभ का अग्र भाग, अंगुलियों का अग्र भाग तथा अंगूठे अति संवेदनशील होते हैं।

दर्द संवेद (Sense of Pain):— दर्द सर्वाधिक संरक्षी संवेद है क्योंकि यह शरीर में कुछ गलत होने का संकेत देता है। दर्द संग्राहक त्वचा, पेशी, जोड़ों तथा आंतरिक इंद्रियों में स्थित होते हैं। जब कभी शरीर के किसी भाग में चोट लगती है तो दर्द–संग्राहक इसकी सूचना मस्तिष्क को भेजते हैं।

आपने क्या सीखा

- शरीर विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें जीव (Organism) के प्रकार व संरचना का अध्ययन किया जाता है। मानव शरीर से संबंधित अध्ययन को हम मानव शरीर विज्ञान (Human Anatomy) कहते हैं।
- शरीर क्रिया विज्ञान (Pyhsiology) शारीरिक भागों की क्रियाओं का अध्ययन तथा यह जानना है कि वह क्या क्रियाएं करते हैं व कैसे करते हैं? आंतरिक इंद्रियों सहित मानव शरीर के विभिन्न भागों की क्रियाओं के अध्ययन को शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) कहते हैं।

टिप्पणी

- हमारा शरीर अस्थियों, पेशियों, तंत्रिकाओं, धमनियों, शिराओं, चर्बी, अवत्वक ऊतक, चमड़ी तथा आंतरिक अंगों यथा हृदय, यकृत एवं फेफड़ों आदि से निर्मित है। जिस प्रकार एक भवन का निर्माण एक के ऊपर दूसरी ईंट रख कर होता है, हमारे शरीर का निर्माण भी उसी प्रकार होता है। इस प्रकार 'शरीर' तथा 'शरीर विज्ञान' का अध्ययन मानव कोशिका की संरचना व क्रिया के अध्ययन से आरंभ होता है।

- समान गुणों वाली, एक ही आकार की तथा एक ही कार्य करने वाली कोशिकाओं के समूह को ऊतक (Tissue) कहते हैं।

- एक कोशिका (Cell) को आप एक इकाई मान सकते हैं, जो एक जीव (Living Organism) की संरचनात्मक व क्रियात्मक इकाई है।

- संयुक्त रुप से मिलकर कोशिकाओं का एक समूह पेशियों तथा अस्थियों आदि जैसे ऊतक का निर्माण करता है तथा संयुक्त रूप से ऊतक का एक समूह अंग यथा फेफड़े, यकृत का निर्माण करता है, जो एक निश्चित क्रिया करते हैं। संयुक्त रूप से अंगों का समूह एक शारीरिक तंत्र (जैसे पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र) का निर्माण करते हैं तथा अनेक तंत्र संयुक्त रुप से मिलकर मानव शरीर का निर्माण करते हैं।

  कोशिका → ऊतक → अंग→ शारीरिक तंत्र → मानव शरीर

- प्रत्येक चिकित्सा पद्धति में शरीर रचना एवं शरीर में होने वाली क्रियाओं का ज्ञान होना परम आवश्यक है। शरीर में सभी अंग एवं तंत्र आपस में मिलकर संयुक्त रुप से कार्य करते हैं। हमारे शरीर में 10 विभिन्न तंत्र हैं:—

  1. त्वचा तंत्र
  2. कंकाल तंत्र
  3. पेशीय तंत्र
  4. श्वसन तंत्र
  5. पाचन तंत्र
  6. परिसंचरण तंत्र
  7. उत्सर्जन तंत्र
  8. अंतःस्रावी तंत्र
  9. जनन तंत्र तथा
  10 तंत्रिका तंत्र

- शरीर में विभिन्न अंग होते हैं जैसे हृदय, फेफड़े, उदर, आंत्र, यकृत, गुर्दे, मस्तिष्क तथा जन्नेन्द्रिय। सभी तंत्रों पर यौगिक क्रियाओं का अलग—अलग प्रभाव पड़ता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. मानव शरीर में कितने तंत्र पाये जाते हैं संक्षिप्त में बताइए।
2. हृदय का एक साफ रेखाचित्र बनाइए तथा रक्त के परिसंचरण तंत्र का उल्लेख कीजिए।
3. पाचन तंत्र का उल्लेख कीजिए।
4. यकृत के प्रकार्य का वर्णन कीजिए।
5. उत्सर्जन से आप क्या समझते हैं? विषाक्त तत्व मूत्र के साथ शरीर से बाहर कैसे निकलते हैं?

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. मानव शरीर से संबंधित अध्ययन को मानव शरीर विज्ञान कहते हैं।
2. आंतरिक इंद्रियों सहित मानव शरीर के विभिन्न भागों की क्रियाओं के अध्ययन को शरीर क्रिया विज्ञान कहते हैं।

4.2

1. कोशिका मानव शरीर की लघुत्तम संरचनात्मक व प्रक्रियात्मक इकाई है।
2. एक विशिष्ट क्रिया को करने वाली अनेक कोशिकाओं को ऊतक कहते हैं।
3. क. उपकला ऊतक ख. संयोजी ऊतक
   ग. पेशी ऊतक घ. तंत्रिका ऊतक
4. यह विभिन्न ऊतकों को जोड़ता है। उदाहरण – रक्त
5. न्यूरोन

4.3

1. क. अस्थियों ख. ऐच्छिक, अनैच्छिक
   ग. अवशोषण घ. चार ड. वृक्काणु
2. क. सही
   ख. गलत
   ग. गलत
   घ. सही
   ड. सही

5

यौगिक आहार

प्रत्येक प्राणी को जीवन यापन करने और शरीर के प्रत्येक अंग को उचित ढंग से कार्य करने हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो हमें भोजन से प्राप्त होती है। अतः हमें इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि हमारा भोजन यानी आहार कैसा हो? शुद्ध तथा प्राकृतिक आहार से मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होने से शरीर समृद्ध व शक्तिशाली होता है। आहार शुद्ध होने के साथ–साथ संतुलित भी होना चाहिए। लेकिन योगमय जीवन जीने के लिए आहार का शुद्ध व सात्विक होना आवश्यक है। छान्दोग्य उपनिषद् में सात्विक आहार की उपयोगिता का वर्णन निम्न श्लोक में किया गया है –

आहारशुद्धौ सत्त्व शुद्धिः
सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

अर्थात् आहार शुद्धि से चित्त की शुद्धि होती है व चित्त शुद्धि से स्मृति लाभ होता है तथा स्मृति से सभी बन्धनों से मुक्ति प्राप्त होती है। इस यूनिट में हम यौगिक आहार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप –

- आहार के बारे में जानकारी प्राप्त कर उसे परिभाषित कर सकेंगे;
- आहार की उपयोगिता का उल्लेख कर सकेंगे;

- सात्विक, राजसी एवं तामसिक आहार की अभिव्यक्ति कर सकेंगे;
- उम्र, बीमारी, समय व ऋतुओं के अनुसार आहार का वर्णन कर सकेंगे;
- आहार को औषधि के रूप में समझा सकेंगे।

5.1 भोजन क्या है?

यौगिक आहार समझने से पहले हमें भोजन के विषय में जानना आवश्यक है। भोजन शब्द से तात्पर्य ऐसे खाद्य पदार्थों से है जिन्हें खाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। जिससे हमारे शरीर का पोषण होता है। प्रत्येक जीवधारी को जीवित रहने तथा शरीर की सभी क्रियाओं का सुचारू रूप से चलाने के लिए भोजन अनिवार्य है। उचित आहार हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित और नियंत्रित करता है। इस प्रकार भोजन शारीरिक क्षतिपूर्ति, विकास एवं वृद्धि के लिए अति आवश्यक है। आहार निश्चित मात्रा में उपस्थित खाद्य पदार्थों का समूह है। क्या आप जानते हैं कि उचित आहार एक निरोधक औषधि का भी कार्य करता है। प्रसिद्ध औषधि जनक हीपोक्रेट्स (Hipocrates) ने आहार के संबंध में कहा है कि "Let food be the medicine and let medicine be the food" ''आहार ही एक औषधि है और औषधि ही आहार है।'' हमारा आहार एक संपूर्ण, संप्राण और प्राकृतिक आहार होना चाहिए। जो भोजन ताजे फल, कच्ची साग–सब्जियों, ताजे दूध, दही, शहद आदि के साथ सीधे प्रकृति से प्राप्त होता है। वह भोजन शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संतुलन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। शरीर को पूर्णतः पोषण प्रदान करते हुए जो आहार आनंद व शक्ति प्रदान करता है वही आहार निर्दोष आहार या अमृत आहार कहलाता है। ऐसा आहार स्वादिष्ट, शक्तिवर्द्धक और दीर्घ जीवन प्रदान करने वाला कहा जाता है।

आइए, आहार पर अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए हम पोषण, पोषक तत्वों और संतुलित आहार पर चर्चा करते हैं। हमारे भोजन में अनेक रासायनिक तत्व होते हैं। इन रासायनिक तत्वों को पोषक तत्व कहते हैं। पोषक तत्व भोजन में उपलब्ध व अदृश्य रसायन हैं जो शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए परम आवश्यक हैं। क्या आप जानते हैं कि हमारे भोजन में कौन–कौन से पोषक तत्व होते हैं? इसे निम्न आरेख द्वारा समझा जा सकता है:–

पानी

प्रोटीन

मिनिरल (खनिज लवण)

कार्बोहाइड्रेट पोषक तत्व

रेशा

वसा

विटामिन

टिप्पणी

शरीर की रचना, विकास, वृद्धि तथा प्रतिदिन की क्षतिपूर्ति के लिए हमारा आहार संतुलित होना चाहिए। संतुलित आहार शारीरिक कार्यों के लिए सभी महत्वपूर्ण और आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है और रोगों से बचाव कर सर्वोत्तम स्वास्थ्य तथा लंबी आयु प्रदान करता है। अर्थात संतुलित आहार ऐसा आहार है जिसमें सभी पोषक तत्व प्रचुर/उचित मात्रा में सम्मिलित रहते हैं और जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं।

पोषण, जो संतुलित आहार पर निर्भर करता है, वह रोग के उपचार के लिए भी महत्वपूर्ण होता है। रोग का प्राथमिक कारण 'दोषपूर्ण पोषण व्यवस्था' या शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता का कमजोर होना है। शरीर के अंदर एक प्राकृतिक उपचार क्रिया विधि (Healing mechanism) होती है किन्तु वह अपने कार्यों को तभी भली–भांति पूर्ण कर पाती है जब उसकी प्रचुर मात्रा में सभी अनिवार्य पोषक तत्वों की आपूर्ति होती है। इस प्रकार पोषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव पोषक तत्वों का अंतःग्रहण, पाचन, समाहित तथा उपयोग करता है और उसके अपशिष्ट पदार्थों (waste material) को निष्कासित कर दिया जाता है।

5.2 आहार, पोषण और स्वास्थ्य में परस्पर संबंध

आहार, पोषण और स्वास्थ्य में परस्पर क्या संबंध है? इस पर चर्चा करते हैं। शरीर–रचना में वृद्धि और पूर्ति तथा जीवन के अनुरक्षण के लिए खाद्य पदार्थ ग्रहण किए जाते हैं, वह आहार कहलाता है। पोषण और क्षति पूर्ति के लिए उचित आहार अनिवार्य है।

'स्वास्थ्य', शक्ति और सामर्थ्य के रूप में शरीर और मन की सामान्य अवस्था है। उचित और संतुलित आहार जीवन को सशक्त और समर्थ बनाए रखता है।

आदिकाल से ही आहार ने मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित और नियमित किया है। आहार और स्वास्थ्य के बीच के संबंध को शताब्दियों पहले, हमारे पूर्वज भी जानते थे। उचित आहार द्वारा अच्छे स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण नुस्खे हमारे धर्म–ग्रन्थों, परंपरा और संस्कृति का हिस्सा बन गये। अतः प्राचीन काल से ही आहार, पोषण और स्वास्थ्य के बीच एक सकारात्मक और घनिष्ठ संबंध रहा है।

यूनिटगत प्रश्न 5.1

1. भोजन की परिभाषा लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2. पोषण क्या है?

.....

.....

.....

3. भोजन में विद्यमान पोषक तत्वों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

5.3 यौगिक आहार

योगमयी जीवन जीने के लिए व्यक्ति का आहार कैसा होना चाहिए? आइए, इस विषय पर चर्चा करते हैं—

1. प्राचीन ग्रंथ आयुर्वेद में आहार का बहुत ही सुव्यस्थित ढंग से वर्णन आता है कि सामान्य रूप से आहार संतुलित होना चाहिए। आयुर्वेद के सिद्धांत के अनुसार संतुलित भोजन मधुर, अम्ल, कटु और कासय रस युक्त होना चाहिए।
2. भोजन व्यक्ति की अपनी प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए।
3. उम्र व देशकाल, ऋतु और दिन—रात के विभेद से खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

भारतीय पाकशास्त्र में रसोई का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। रसोई में उपलब्ध अनेक वनस्पति, उपादान और खाद्य सामग्रियां विभिन्न औषधि गुणों से युक्त होती है। इन सामग्रियों का उपयोग भोजन को संस्कारित करने के अतिरिक्त अनेक रोगों को उपचारित करने के लिए भी किया जा सकता है।

आइए, जानें कैसे —

- आहार स्वास्थ्य को उन्नत करता है।
- उचित आदर देने के लिए आहार की कुछ वस्तुओं को धार्मिक अनुष्ठानों का अंग बना दिया गया।
- जो आहार शरीर की टूट—फूट की मरम्मत कर सकते थे, उन्हें प्रमुख स्थान दिया गया।
- हमारे पूर्वज शहद, दही और तुलसी को अमृत समझते थे। 'जौ' पूर्वजों के अंतिम संस्कार के समय समर्पित किया जाता था और केवल मांगलिक स्थानों को अलंकृत करता था।
- पवित्र कुरान में अंजीर, बेर और शहद पर एक अध्याय है।

टिप्पणी

- ईसाइयों के धार्मिक ग्रन्थों में जौ, शहद, दही, भुने बीजों और पानी का आहार के रूप में प्रायः वर्णन में आता है।

अतः हम रसोईघर को प्राथमिक चिकित्सालय की संज्ञा भी दे सकते हैं।

छान्दोग्य —श्रुति में भी विशद रूप से वर्णन मिलता है कि आमाशय में पचने के बाद हमारा भोजन तीन भागों में विभक्त हो जाता है। स्थूल निस्सार अंश मल बनता है, सार अंश से मांसादि बनते हैं तथा सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। जिस प्रकार दही के मथने पर उसका सूक्ष्म अंश ऊपर आकर घृत बनता है, उसी प्रकार अन्न के सूक्ष्मांश से मन बनता है। कहा भी गया है जैसा अन्न वैसा मन। ***'याद्दशं भक्ष्यते अन्नं बुद्धिर्भवतितादृशी'*** अर्थात् हम जैसा भोजन करते हैं, बुद्धि वैसी ही हो जाती है। अतः यदि भोजन तामसिक होगा तो हमारा मन, बुद्धि, प्राण और शरीर तामसिक होगा जिससे ब्रहाचर्य धारण और साधना आदि शुभ कर्म असम्भव हो जायेंगे और यदि वह राजसिक हुआ तब भी मन और बुद्धि चंचल हुए बिना न रहेंगे। इसलिए बुद्धिमानी इसी में है कि सादा और सात्विक भोजन ही ग्रहण किया जाए।

आहार को मुख्य रूप से तीन श्रेणी में विभक्त किया गया है।

1. सात्विक आहार
2. राजसिक आहार
3. तामसिक आहार

1. सात्विक आहार

सरस, स्निग्ध, सारवान और हृदयगाही आहार सात्विक आहार कहलाता है। सात्विक आहार को उत्तम कोटि का आहार माना जाता है। सात्विक भोजन सदैव ताजा, पका हुआ, रसीला, शीघ्र पचने वाला, चिकना और स्वादिष्ट होता है। यह मस्तिष्क की ऊर्जा में वृद्धि व मन को प्रफुल्लित और शांत रखता है व शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है।

जो आहार आयु, बुद्धि, बल, आरोग्यता, सुख और प्रीति बढ़ाने वाले हैं व मन को प्रिय होते हैं, सात्विक आहार की श्रेणी में आते हैं। उदाहरण — ताजे फल, सब्जियां, पत्तेदार साग, अंकुरित अन्न आदि।

2. राजसिक आहार

अधिक कटु, अम्लीय, लवणीय, उष्ण, तीक्ष्ण और उग्र आहार राजसिक आहार कहलाता है। राजसिक आहार ताज़ा परन्तु भारी होता है। यह भोजन इंद्रियों में उत्तेजना प्रदान करता है। राजसिक आहार उन लोगों के लिए लाभदायक होता है जो जीवन में संतुलित आक्रामकता में विश्वास रखते हैं, जैसे— सैनिक, राजनेता, खिलाड़ी, व्यापारी आदि, जो सशक्त, सम्मान, स्थिति और समृद्धि में रहते हैं। राजसिक आहार के अंतर्गत कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम तीखे, तेज मसालेदार, लहसुन, प्याज, तले हुए पदार्थ, चाय, काफी आदि आते हैं जो दुःख, चिन्ता तथा रोग उत्पन्न करने वाले हैं। राजसिक

आहार भोग की प्रवृत्ति, कामुकता, लालच, ईर्ष्या, क्रोध, कपट, अभिमान और अधर्म की भावना पैदा करता है।

3. तामसिक आहार

बासी, रसहीन, दुर्गन्ध युक्त, जूठा और अपवित्र आहार तामसिक आहार कहलाता है। Processed food यानी ऐसे खाद्य पदार्थ जो मैदा, वनस्पति, घी, सफेद चीनी से बने हो जैसे बर्गर, पेस्ट्री, चाकलेट, कोल्डड्रिंक्स, तले हुए पदार्थ, मिर्च मसालेदार व्यंजन, मांस, मदिरा, तम्बाकू आदि तामसिक श्रेणी में आते हैं।

तमस हमारी जीवन शक्ति में अवरोध पैदा करता है जिससे धीरे–धीरे स्वास्थ्य और शरीर कमजोर होता जाता है। तामसिक आहार लेने वाले व्यक्ति बहुत ही मूडी किस्म के, असुरक्षा की भावना, अतृप्त इच्छाएं, वासना और भोग की इच्छा रखने वाले होते हैं। ऐसे लोग स्वार्थी और खुद में ही सिमट कर रह जाते हैं और इनमें समय से पहले बुढ़ापे के लक्षण दिखने लगते हैं। ये लोग सामान्यतः कैंसर, हृदयरोग, मधुमेह, गठिया और लगातार थकान जैसी जीवनशैली संबंधित समस्याओं से ग्रस्त पाए जाते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 5.2

1. सात्विक आहार किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

.....

2. राजसिक आहार के कोई दो उदाहरण हैं

.....

.....

3. तामसिक आहार लेने वाले की प्रवृत्ति कैसी होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 अम्लीय और क्षारीय आहार

एक स्वस्थ व्यक्ति का शरीर रसायन और रक्त, क्षारीय होते हैं और मूत्र किंचित अम्ल। हमारे शरीर का अम्लता–क्षारीय संतुलन बहुत हद तक उस भोजन पर निर्भर करता है जो हम ग्रहण करते हैं। शरीर में अम्लीय और क्षारीय तत्वों की प्रतिक्रिया के बीच संतुलन ही उत्तम स्वास्थ्य के लिए सहायक होता है। आहार इस तरह का होना चाहिए कि क्षारीय–अम्लता का अनुपात 80.20 हो, अर्थात अपने भोजन में उन्हें अत्यधिक क्षारीय खाद्य पदार्थों (लगभग 80 प्रतिशत) को सम्मिलित करना चाहिए और अम्लीय खाद्य पदार्थों को कम से कम (लगभग 20 प्रतिशत) सम्मलित करना चाहिए।

चित्र 5.1 संतुलित आहार

जिन खाद्य पदार्थों में कार्बनडाइआक्साइड और कार्बनिक, लैक्टिक और यूरिक एसिड, क्लोरीन, फास्फोरस, गंधक और आयोडीन होता है, वे उन तत्वों में अम्लीय प्रभाव को बढ़ाते हैं। सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, लोहा, तांबा, मैग्नेशियम और मैंगनीज जिन खाद्य पदार्थों में होते हैं, वे उनके क्षारीय प्रभाव को बढ़ाते हैं। विभिन्न खाद्यों में खनिजों और सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की मात्रा, जिस भूमि में वे उत्पन्न होते हैं, उसमें उन तत्वों की उपस्थिति पर निर्भर करती है।

इन अम्लीय या क्षारीय तत्वों में से किसी की भी अधिकता अच्छे स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं होती है। इन तत्वों के बीच सही सन्तुलन, अच्छे स्वास्थ्य की ओर ले जाता है। इस संतुलन में किसी भी प्रकार के परिवर्तन से विभिन्न बीमारियाँ हो सकती हैं:

- अत्यधिक अम्लता मधुमेह उत्पन्न करती है।
- अत्यधिक क्षारीयता कैंसर उत्पन्न कर सकता है।

संक्रमण और जुकाम के कीटाणु क्षारीय तंत्र में जीवित नहीं रहते। वे एक अत्यधिक अम्लीय वातावरण में पनपते हैं। इन समस्याओं से अपनी रक्षा करने के लिए क्षारीय भोजन का अंतर्ग्रहण बढ़ाकर अपने तंत्र को क्षारीय रखना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार का प्रयास रोग से शीघ्र राहत देता है।

एक और विचार करने योग्य बात यह है कि अत्यधिक नमक, जिसमें सोडियम क्लोराइड होता है, क्षारीयता बढ़ाता है और कैंसर की स्थिति के निकट ले जाता है। अतः भोजन के अलावा, सलाद या फलों में ऊपर से अतिरिक्त नमक के सेवन से बचना चाहिए। पेट में अम्लता बढ़ने के साथ बहुत सी पाचन संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। यदि समय पर इन्हें ठीक नहीं किया जाए तो धीरे–धीरे यह भयंकर रोग का रूप ले सकती हैं। अनाज, दालें, मैदा से बने उत्पाद, कोल्ड–ड्रिंक्स, उबाला हुआ दूध और सब प्रकार के मांस अम्लता बढ़ाते हैं। दूसरी ओर प्रायः ताजी, हरी सब्जियां और फल क्षारीयता बढ़ाते हैं और अम्लता कम करते हैं।

असंतुलित आहार लेने से जीव–विष उत्पन्न होता है और जब यह विष शरीर के विभिन्न तंत्रों द्वारा निकाला नहीं जा सकता तो यह शरीर के संबंधित अवयवों को नुकसान पहुँचाता है और रोग का कारण बन जाता है। इसलिए हमें संतुलित आहार लेना चाहिए और अपने रक्त प्रवाह को शुद्ध करना चाहिए।

5.5 आहार संबंधी अच्छी आदतें

उत्तम आहार लेने के साथ–साथ हमें खाने की अच्छी आदतों को विकसित करना भी अत्यंत आवश्यक है। ऐसी ही कुछ आदतों की चर्चा नीचे की गई है –

- भोजन हमेशा शान्त चित्त के साथ प्रारंभ करना चाहिए। कभी भी क्रोध, तनाव, जल्दबाजी में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए।
- भोजन नियत समय पर करना चाहिए।
- कम खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। भोजन की अधिक मात्रा स्वास्थ्य को प्रभावित करतीहै।
- जब भूख लगे तभी भोजन लेना चाहिए। जब तक ठीक प्रकार से भूख न लगे तब तक भोजन नहीं लेना चाहिए।

टिप्पणी

- भोजन को हमेशा अच्छी तरह चबा–चबा कर खाना चाहिए, अन्यथा दांतों का काम आंतों को करना पड़ता है।
- भोजन करते समय बात नहीं करनी चाहिए।
- कच्ची सब्जियां और कच्चे फल एक ही समय पर नहीं खाइये।
- भोजन सुखासन में बैठकर करना सबसे अच्छा होता है। भोजन के तुरंत बाद पांच–दस मिनट के लिए भी वज्रसान में बैठने से भोजन जल्द पच जाता है।
- अंकुरित अन्न, मौसम के फल और हरी सब्जियों का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। अंकुरित आहार शक्ति का स्रोत प्रदान करते हैं। ये दीर्घायु प्रवर्तक हैं।
- पक्व भोजन में चोकर सहित आटे की रोटी, बिना पॉलिश वाला चावल तथा सूप आदि का सेवन करना चाहिए।
- जो आहार आग पर नहीं पकाया गया हो वह स्वास्थ्य के लिए बड़ा महत्वपूर्ण होता है। पकाने से एन्ज़ाइम, कुछ विटामिन और खनिज नष्ट हो जाते हैं।
- भोजन से आधा घण्टे पहले और कम से कम आधा घण्टे बाद तक पानी नहीं लेना चाहिए।

कब और कितना भोजन लें – मिताहार

भोजन के समय के संबंध में कहा गया है कि जब मन शान्त हो, मल–मूत्र विसर्जित हो चुके हों, तत्व संतुलित हों, पेट हवा से मुक्त हो, शरीर हल्का हो, ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य–कुशल हों और भूख हो केवल तभी भोजन ग्रहण करना चाहिए। भोजन लेने के विषय में एक प्रसिद्ध कहावत है–

''एक बार योगी, दो बार भोगी, तीन बार रोगी।'' एक मुख्य भोजन और एक या दो छोटे भोजन अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त होते हैं। यदि वे कई बार भोजन लेते हैं तो पाचन संस्थान को कई बार नए सिरे से अपनी प्रक्रियाएं शुरू करनी पड़ती हैं।

नियत समय पर भोजन करने में बहुत लाभ हैं। हमारे शरीर में मुख्यतः तीन क्रियाएं होती हैं – पाचन, पोषण और निष्कासन। सुबह चार बजे से दोपहर बारह बजे के बीच का समय 'निष्कासन' का होता है। इस दौरान शरीर के पोषण के लिए कम से कम खाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि प्रातःकालीन जलपान या नाश्ता हल्का होना चाहिए और पानी का अधिक से अधिक सेवन करना चाहिए। दोपहर बारह बजे से रात्रि आठ बजे का समय 'पाचन' का होता है। अतः इस अवधि में भोजन ग्रहण करना चाहिए। रात के आठ बजे से सुबह चार बजे तक का समय 'पोषण' का होता है। इस दौरान शरीर तथा पाचन तंत्रों को संपूर्ण आराम देना चाहिए। इसलिए रात का भोजन आठ बजे से पहले कर लेना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।

अब प्रश्न उठता है कि स्वस्थ रहने के लिए कितना भोजन लेना चाहिए? अधिक भोजन लेने से स्वास्थ्य गिरता है और जीवन की अवधि कम हो जाती है। यदि आप आवश्यकता से अधिक खाते हैं, तो शरीर में विषैले पदार्थ इकट्ठा हो जाते हैं, जो आगे चलकर, भयंकर रोग का कारण बनते हैं। इसलिए 'कब्ज' को अधिकतर बीमारियों की जननी माना जाता है। हमें कभी भी पूर्ण रूप से पेट भरकर ठूँस–ठूँस कर नहीं खाना चाहिए। खाते समय आकाश तत्व का ध्यान रखिये। हमारा खाने का नियम इस प्रकार होना चाहिए कि 50% /प्रतिशत खाना खाएं, 25% पानी के लिए जगह छोड़े और बाकी 25% खाली जगह या आकाश तत्व के लिए छोड़ दें। घेरण्ड संहिता में इस आशय का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

अन्नेन पूरयेदर्ध तोयेन च तृतीयकम् उदर चतुर्थास संरक्षेद् वायुचारणे।

यूनिटगत प्रश्न 5.3

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. भोजन में क्षारीय–अम्लता का अनुपात ..... होना .....चाहिए।
2. भोजन .....में बैठकर करना सबसे अच्छा होता है।
3. ..... और .....भोजन में क्षारीयता बढ़ाते है और अम्लता कम करते हैं।

ख. सही अथवा गलत का निशान लगाइए।

1. आहार, पोषण और स्वास्थ्य के बीच एक सकारात्मक संबंध है। ( )
2. आहार में अधिक अम्लीय खाद्य पदार्थों को सम्मलित करना चाहिए। ( )
3. भोजन के तुरंत बाद कोई कड़ी मेहनत का काम नहीं करना चाहिए। ( )
4. अधिक भोजन लेने से स्वास्थ्य बढ़ता है। ( )
5. खाने के साथ खूब पानी पीना चाहिए। ( )

आपने क्या सीखा

1. शरीर के विकास, वृद्धि एवं क्षतिपूर्ति के लिए भोजन अति आवश्यक है। संतुलित आहार, पोषण एवं भोजन में विद्यमान पोषक तत्वों का बहुत महत्व होता है। यौगिक आहार के अंतर्गत सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीन प्रकार के आहार सम्मिलित हैं। स्वास्थ्य के लिए अम्लीय एवं क्षारीय आहार का संतुलित अनुपात परम आवश्यक है।

टिप्पणी

2. उत्तम आहार लेने के साथ–साथ हमें खाने की अच्छी आदतों को विकसित करना भी अत्यंत आवश्यक है। ऐसी ही कुछ आदतों की चर्चा नीचे की गई है –

   - भोजन हमेशा शान्त चित्त के साथ प्रारंभ करना चाहिए। कभी भी क्रोध, तनाव, जल्दबाजी में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए।
   - भोजन नियत समय पर करना चाहिए।
   - कम खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। भोजन की अधिक मात्रा स्वास्थ्य को प्रभावित करतीहै।
   - जब भूख लगे तभी भोजन लेना चाहिए। जब तक ठीक प्रकार से भूख न लगे तब तक भोजन नहीं लेना चाहिए।
   - भोजन को हमेशा अच्छी तरह चबा–चबा कर खाना चाहिए, अन्यथा दांतों का काम आंतों को करना पड़ता है।
   - भोजन करते समय बात नहीं करनी चाहिए।
   - कच्ची सब्जियां और कच्चे फल एक ही समय पर नहीं खाइये।
   - भोजन सुखासन में बैठकर करना सबसे अच्छा होता है। भोजन के तुरंत बाद पांच–दस मिनट के लिए भी वज्रसान में बैठने से भोजन जल्द पच जाता है।
   - अंकुरित अन्न, मौसम के फल और हरी सब्जियों का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। अंकुरित आहार शक्ति का स्रोत प्रदान करते हैं। ये दीर्घायु प्रवर्तक हैं।
   - पक्व भोजन मे ंचोकर सहित आटे की रोटी, बिना पॉलिश वाला चावल एवं सूप आदि का सेवन करना चाहिए।
   - जो आहार आग पर नहीं पकाया गया हो वह स्वास्थ्य के लिए बड़ा महत्वपूर्ण होता है। पकाने से एन्ज़ाइम, कुछ विटामिन और खनिज नष्ट हो जाते हैं।
   - भोजन से आधा घण्टे पहले और कम से कम आधा घण्टे बाद तक पानी नहीं लेना चाहिए।

3. भोजन के समय के संबंध में कहा गया है कि जब मन शान्त हो, मल–मूत्र विसर्जित हो चुके हों, तत्व संतुलित हों, पेट हवा से मुक्त हो, शरीर हल्का हो, ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य–कुशल हों और भूख हो केवल तभी भोजन ग्रहण करना चाहिए। भोजन लेने के विषय में एक प्रसिद्ध कहावत है–

   ''एक बार योगी, दो बार भोगी, तीन बार रोगी।''

4. अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए एक योगी के लिए यौगिक आहार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अतः हमारा भोजन केवल स्वाद के लिए नहीं होना चाहिए अपितु उसमें सभी अनिवार्य पोषक तत्व होने चाहिए। साथ ही भोजन शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिए।

यूनिटांत प्रश्न

1. उत्तम स्वास्थ्य के लिए यौगिक आहार के महत्व का वर्णन कीजिए।
2. 'योगियों के लिए सात्विक आहार आवश्यक है', इस तथ्य की विवेचना कीजिए।
3. आहार से आप क्या समझते हैं? सात्विक, राजसिक व तामसिक आहार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. भोजन से तात्पर्य ऐसे खाद्य पदार्थों से है जिन्हें हम खाते हैं और जिनसे हमारे शरीर का पोषण होता है।
2. पोषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव पोषक तत्वों को अंतग्रहण, पाचन तथा उपयोग करता है।
3. कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण, रेशा, पानी।

5.2

1. सात्विक भोजन ताजा पका हुआ, रसीला, शीघ्र पचने वाला तथा स्वादिष्ट होता है।
2. तीखा, तेज, मसालेदार।
3. मूडी, वासना और भोग की इच्छा रखने वाला।

5.3

क.

1. 80 : 20
2. सुखासन
3. ताजी, हरी सब्जियां, फल

ख

1. सही
2. गलत
3. सही
4. गलत
5. गलत

6

षट्कर्म

हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परम्परा में श्री मत्स्येन्द्रनाथ, स्वामी गोरक्षनाथ, मीननाथ, भर्तृहरि आदि से लेकर स्वात्माराम एवं गोपीचंद पर्यन्तनाथों ने इस परंपरा को जीवित रखा है। हठयोग से हम शरीर को शुद्ध, स्वस्थ एवं निर्मल बनाकर, राजयोग का पात्र बनते हैं क्योंकि राजयोग में यम–नियमों के द्वारा अन्तःकरण को पवित्रकर ध्यान एवं समाधि में प्रवेश का क्रम है।

हठयोग के ऋषियों ने साधकों की प्रकृति भेद के अनुसार वात–पित्त एवं कफ प्रधान शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म के विधान निर्धारित किए हैं। षट्कर्म की क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक होती हैं।

इस यूनिट के अंतर्गत हम षट्कर्म की विभिन्न क्रियाओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप –

- षट्कर्म क्या है, यह परिभाषित कर सकेंगे;
- षट्कर्म के विभिन्न अंगों को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त कर सकेंगे;
- शरीर पर उनका प्रभाव और इसके लाभों का वर्णन कर सकेंगे।

6.1 षट्कर्म की अवधारणा

योग के परिप्रेक्ष्य में षट्कर्म का अर्थ शारीरिक शुद्धि से है। हठयोग में घटशुद्धि के लिए शोधन क्रियाएं षट्कर्म ही कहलाती हैं। षट्कर्म की यह क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक हैं।

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है –

हठं बिना राजयोगं राजयोगं विना हठः।

न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समश्यसेत्।। (हठ. 2/76)

अर्थात हठयोग के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता तथा राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है। इसलिए साधक को हठयोग एवं राजयोग दोनों का सतत् अभ्यास करना चाहिए।

षट्कर्म की ये क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कान्तिमय बनाती हैं।

आयुर्वेद में वर्णित पंचकर्म का यह समानान्तर रुप है, जिसकी खोज हमारे ऋषियों–मुनियों द्वारा शरीर, मन और प्राण के शोधन के लिए की गई है।

षट्कर्म की ये क्रियाएं कौन–कौन सी हैं। आइए, जानते हैं –

धौतिर्बस्तिस्तथानेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणी प्रचक्षते। (हठ. 2/22)

धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाती इन छः कर्मों का योगमार्गानुगामियों के लिए उपदेश किया गया है।

षट्कर्म छः होते हैं –

1. धौति
2. बस्ति
3. नेति
4. त्राटक
5. नौली
6. कपालभाति।

हठयोग में इन छः क्रियाओं को शुद्धि क्रियाएं कहा जाता है।

टिप्पणी

6.1.1 धौति

धौति– षट्कर्मों में सर्वप्रथम धौति कर्म का वर्णन किया गया है। सामान्यतः धौति का अर्थ है– धोना या सफाई करना। घेरण्ड संहिता में धौति के चार प्रकार बतलाये गए है, जिनमें अन्तध ौंति, दन्तधौति, छद् धौति और मूलशोधन आते हैं।

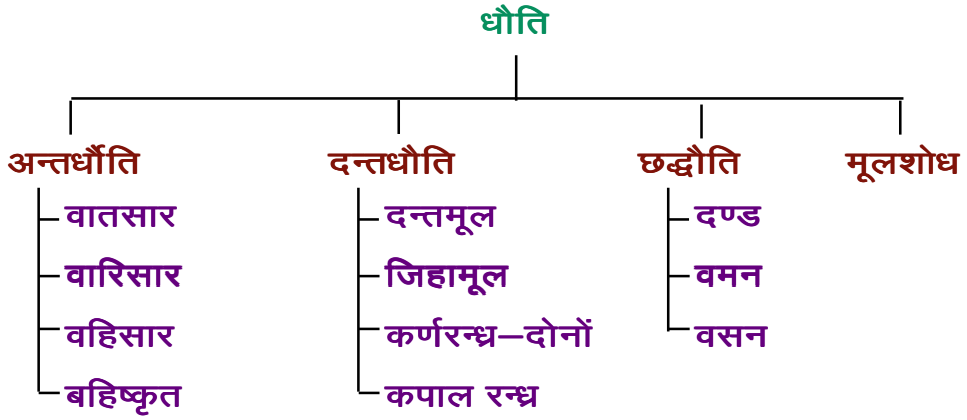

हठप्रदीपिका में धौतिकर्म के अन्तर्गत वस्त्र धौति एवं गजकरणी का उल्लेख किया गया है।

हम यहाँ उपयोग की दृष्टि से कुंजल (वमन), दण्ड धौति, वस्त्र धौति एवं शंख प्रक्षालन वारिसार धौति का अध्ययन करेंगे।

i) कुंजल (वमन धौति)

कुंजल क्रिया मुंह, अन्न नली एवं आमाशय तक की सफाई करती है। इसका अभ्यास खाली पेट किया जाता है। इस क्रिया के अभ्यास का सही समय प्रातःकाल है। इसमें नमकीन गुनगुना पानी पेटभरकर पीने के तुरंत बाद वमन कर दिया जाता है।

पूर्व तैयारी एवं अनुशासन

- हाथ स्वच्छ हों, कुंजल से पूर्व हाथों की अच्छी तरह सफाई कर लें। नाखून कटें हों।
- जग एवं गिलास अपने पास रखें।
- गुनगुने पानी में नमक मिलाकर रखें।
- कुंजल क्रिया खाली पेट सम्पन्न की जाती है।
- इस क्रिया को प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर सम्पन्न करना चाहिए।
- कुंजल करने के बाद घृत युक्त खिचड़ी सेवन करने का विधान है।
- कुंजल क्रिया सम्पन्न करने के दिन किसी प्रकार का मिर्च–मसालों का सेवन नहीं करना है।

विधि

उकडू बैठकर शीघ्रता के साथ एक–एक गिलास करके पानी पीते जाएं। इतना पानी पी लें कि पूरा पेट पानी से भर जाए। पेट भरने के पश्चात् वमन का मन होने लगता है। फिर खड़े होकर कमर से आगे की ओर झुकें। फिर मुंह खोलकर सीधे हाथ की तीन अंगुलियों से जीभ के मूल में घर्षण करने से पानी मुंह से बाहर निकलने लगता है। शुरुआत में पानी कम–कम मात्रा में निकलता है, अतः बार–बार जिह्वामूल से अंगुलियों के स्पर्श अथवा घर्षण से वमन होने लगता है। अभ्यास होने पर बिना जिह्वामूल में अंगुलियों को लगाए वमन होने लगता है।

लाभ

- कुंजल क्रिया स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उपयोगी है।
- यह अमाशयिक अम्लता (Acidity) को दूर करने में परम लाभकारी है।
- दमा के रोगी को भी इसके अभ्यास से आराम मिलता है।
- यह श्वांस की दुर्गन्ध, गले के बलगम को दूर करता है।

सावधानियां

- उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- अमाशय में अल्सर एवं हृदय सम्बन्धी व्याधियों में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

आवृत्ति

सप्ताह में एक बार इस क्रिया को सम्पन्न किया जा सकता है।

ii) दण्ड धौति

घेरण्ड संहिता में दण्ड धौति के लिए हल्दी के दण्ड, केले अथवा बेंत (बांस) के दण्ड का विधान किया गया है। वर्तमान में रबर की बनी हुई दण्ड बाजार में उपलब्ध है। यह क्रिया त्रिदोषों में साम्यता लाती है।

पूर्व तैयारी एवं अनुशासन

- दण्ड धौति की तैयारी कुंजल क्रिया के समान ही की जाती है।
- गुनगुना आवश्यकता अनुसार नमक मिला हुआ पानी अपने समीप रखते हैं।
- रबर का दण्ड गर्म पानी में भली प्रकार से स्वच्छ करके रख लेते हैं।
- दण्ड धौति को खाली पेट प्रातःकाल ही सम्पन्न किया जाता है।
- दण्ड धौति करने के बाद घृतयुक्त खिचड़ी का सेवन किया जाता है। मिर्च–मसालों का सेवन वर्जित होता है।

टिप्पणी

विधि

सर्वप्रथम समीप रखे गुनगुने जल को गिलास से शीघ्रता से पेटभर पी लेते हैं। जल पीने के बाद खड़े होकर कमर से थोड़ा झुककर रबर के दण्ड को मुंह में लेकर कंठ से निगलने का प्रयास करते हैं। शुरुआत में यह आसान नहीं होता है। दण्ड जब आधे से अधिक उदर में प्रवेश कर जाता है तो उदरस्थ पानी दण्ड के माध्यम से बाहर निकलने लगता है। पानी निकल जाने के पश्चात दण्ड को आराम से बाहर निकाल लिया जाता है।

लाभ

इस दण्ड धौति के लाभ कुंजल क्रिया के समान ही हैं।

सावधानी

- अमाशयिक व्रण में इस क्रिया को नहीं किया जाता है।
- उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

आवृत्ति

इस क्रिया का अभ्यास सप्ताह में एक दिन किया जा सकता है।

iii) वस्त्र धौति

वस्त्र धौति जैसाकि इसके नाम से पता चलता है कि इसमें वस्त्र का प्रयोग किया जाता है। वस्त्र के अभ्यास से कई प्रकार के रोगों का शमन होता है।

पूर्व तैयारी एवं अनुशासन

- वस्त्र धौति बाजार से लाकर उसे भली प्रकार से देख लिया जाता है कि वह कहीं से कटी व फटी न हो, किनारे ठीक प्रकार से व्यवस्थित हों।
- वस्त्र धौति को खौलते हुए पानी में कुछ देर रहने देते हैं फिर निकाल कर स्वच्छ पानी से धोकर धूल रहित स्थान पर सुखा देते हैं।
- सूखने के बाद बंद डिब्बे में सूखे स्थान पर रख देते हैं।
- वस्त्र धौति सम्पन्न करने से पहले गुनगुना पानी अवश्यकतानुसार नमक मिलाकर रख लें।
- पानी का जग, धौति रखने का पात्र एवं गिलास पास में रखना चाहिए।

विधि

सर्वप्रथम उकडू बैठकर, दोनों पैरों के बीच में पात्र रखें जिसमें वस्त्र धौति रखी हो। दायीं ओर पानी का गिलास एवं जग रख लेना चाहिए। फिर पात्र से धौति के एक छोर को उठा लेना चाहिए और उसे दोनों तरफ से मोड़ देना चाहिए जिससे वह तीरनुमा नुकीला हो जाएगा। इसके पश्चात् इसे मुंह में डालकर जीभ के सहारे निगलने का प्रयास करना चाहिए। बीच में पानी के घूंट पी लेना चाहिए। जिससे वस्त्र आसानी से कंठ से नीचे चला जाए।

चित्र 6.1: वस्त्र धौति

यहाँ थोड़े धैर्य एवं सतर्कता की आवश्यकता होती है। धीरे–धीरे निगलने का प्रयास करना चाहिए। प्रारंभ में थोड़ी परेशानी होती है। वस्त्र धौति निगलते समय ध्यान रखें कि गले में ही वस्त्र का गुच्छा न बन जाए। प्रारंभ में कुछ दिन थोड़ा–थोड़ा वस्त्र निगलने का अभ्यास करें। प्रारंभ में अभ्यास न होने के कारण गले में अलग सा अनुभव होता है, जैसे कुछ अटक गया हो, खांसी आ सकती है। हो सकता है कि वमन करने का मन हो। इस स्थिति में स्वयं पर नियंत्रण रखें। प्रथम दिन हो सकता है कि थोड़ा भी कपड़ा अन्दर न जाए। एक–दो दिन के अभ्यास के बाद एक फुट कपड़ा अन्दर चला जाएगा, उसे पुनः निकाल देते हैं।

कुछ ही दिनों में कपड़े की अन्दर निगलने की लम्बाई बढ़ती जाएगी।

टिप्पणी

इस प्रकार धीरे–2 अभ्यास करते–करते वस्त्र धौति होने लगेगी जब वस्त्र एक हाथ बचे तब उसे बाहर निकाल देना चाहिए। बाहर निकालते समय किसी प्रकार की हड़बड़ी एवं जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

लाभ

वस्त्र धौति के अभ्यास में कफ, बलगम से निवृत्ति मिलती है। दमा के रोगियों के लिए वस्त्र धौति का अभ्यास रामबाण की तरह है। चर्मरोगों में भी यह परम लाभकारी है।

सावधानियाँ

- इसका अभ्यास स्वयं नहीं करना चाहिए। किसी योग्य मार्गदर्शक के निर्देशन में ही इसे सम्पन्न करना चाहिए।
- अमाशयिक व्रण में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

iv) दंत धौति

प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल दांतों की मालिश और सफाई करनी चाहिए। जल और तेल दोनों में बारीक सेंधा नमक और सरसों का तेल मिलाकर दांत और मसूढ़ों की मालिश से पायरिया और अन्य दंत रोग दूर हो जाते हैं। दांत मजबूत और श्वेत होते हैं।

शंख प्रक्षालन

शंख का अर्थ है – पेट, प्रक्षालन का अर्थ है साफ करना, पेट की सफाई की क्रिया को शंख प्रक्षालन कहा जाता है। हमारी आंत की बनावट, शंखाकार होती है, उस शंखाकार आन्त्र का प्रक्षालन होना (शुद्ध होना) ही शंखप्रक्षालन या वारिसार क्रिया कहलाता है। आंत की लंबाई लगभग 32 फीट होती है। आंत की दीवार पर मल जमने से विभिन्न प्रकार की बीमारियां पैदा होती हैं। मल की परत बनने के कारण निष्कासन की क्रिया सही नहीं होती है। जिससे रोग को बढ़ावा मिलता है। मल सड़ने के बाद पेट में दुर्गन्ध पैदा होती है जिसके परिणामस्वरुप अपचन एवं खट्टी डकारें आती हैं। यह गैस्ट्रिक को भी बढ़ावा देता है। शंख प्रक्षालन से समस्त रोगों में लाभ मिलता है जैसे –सभी उदर रोग, मोटापा, बवासीर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अस्थमा, सर्दी, साइनस आदि।

अनुशासन एवं सामग्री

- शंख प्रक्षालन क्रिया करने से पांच–सात दिन पहले इसके आसनों का अभ्यास शुरु कर दें।
- शंख प्रक्षालन जिस दिन करना हो उसके पूर्व शाम को सुपाच्य एवं हल्का भोजन लें।
- शंख प्रक्षालन की क्रिया के बाद खिचड़ी एवं घी का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए।

- शंख प्रक्षालन की क्रिया प्रातःकाल शौच इत्यादि क्रियाओं से निवृत होने के बाद करें, यदि शौच नहीं हो तो कोई बात नहीं।
- शंख प्रक्षालन करते समय कपड़े ढीले–ढीले होने चाहिए।
- गुन–गुने पानी की समुचित व्यवस्था कर लेनी चाहिए जिसे सरलता से पीया जा सके। उसमें आवश्यकतानुसार नमक मिला लें। पानी ज्यादा गर्म हो तो उसमें ठंडा पानी मिला लें।
- उच्च रक्तचाप एवं चर्म रोगियों को गर्म पानी में नमक के स्थान पर नींबू का रस मिलाकर लेना चाहिए।

विधि

तैयार किया हुआ पानी दो या इससे अधिक गिलास उकडू बैठकर पी जाएं। फिर शंख प्रक्षालन के निर्धारित पांच आसन क्रम से करें। इन निर्धारित आसनों में से एक आसन को पांच बार करने के बाद अगला आसन करें। आसन का क्रम समाप्त हो जाने पर पुनः दो गिलास पानी पीएं और फिर पांच आसनों का क्रम शुरु कर दें। इन पांच आसनों का क्रम इस प्रकार है –

1. ताड़ासन
2. तिर्यक ताड़ासन
3. कटि चक्रासन
4. तिर्यक भुजंगासन
5. उदराकर्षण आसन

निर्धारित पांच आसनों की आवृति को दो या तीन बार पूरा करने के बाद शौच जाना शुरु हो जाएगा। पांच आसन का क्रम जब भी समाप्त हो फिर दो या तीन गिलास पानी पी कर आसन का क्रम शुरु करें। आसन के क्रम में विश्राम नहीं करें। शौचालय में ज्यादा देर तक न बैठें और न शौच के लिए दबाव डालें। यदि आरंभ में शौच नहीं भी आए तो कोई बात नहीं। पानी पी–पीकर निरंतर आसनों का अभ्यास करें। यदि आसन करते–करते शौच की आवश्यकता महसूस हो तो शौच जाएं। पुनः पानी पीकर आसनों का क्रम फिर एक से शुरु कर दें, न कि जिस आसन को छोड़कर गए थे वहां से शुरु करें।

इस तरह लगभग 15–20 गिलास पानी पीकर आसन करने के बाद पांच–छह बार शौचालय जाएं। शुरु में शौच के साथ मल निकलेगा उसके बाद जल मिश्रित मल निकलेगा। फिर शौच में पानी निकलेगा। जब शौच में साफ पानी निकलने लगे तो अभ्यास छोड़ देना चाहिए। इसके बाद कुंजल की क्रिया करें। इस अभ्यास के बाद शवासन में जाकर पूर्ण विश्राम करें। लगभग 30 से 45 मिनट तक विश्राम करें। इस अवस्था में पूर्ण मौन का पालन करें तो अच्छी बात होगी। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शवासन में विश्राम करने के बाद घी के साथ

खिचड़ी भरपूर मात्रा में खाना चाहिए। खिचड़ी में मूंग की दाल ही डाले एवं किसी प्रकार के मसाले का प्रयोग न करें, हल्दी का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए।

चित्र 6.2: शंख प्रक्षालन की क्रियाएँ

सावधानियाँ –

- शंख प्रक्षालन के तीन घंटे बाद तक पानी नहीं पीएं।
- तीन घंटे तक सोना नहीं चाहिए।
- शंख प्रक्षालन के दिन तीन घंटे के बाद गर्म पानी पीएं तो अच्छा होगा। ठंडा पानी पीने से जुकाम–सर्दी हो सकती है।
- इस दिन की शाम एवं अगले दो दिनों तक खाने में घी खिचड़ी का सेवन करें।
- क्रिया के बाद विश्राम करें, (किंतु पंखा, कूलर, एसी में नहीं) हवा में भ्रमण नहीं करें।
- प्रक्षालन करने के बाद सर्दी के मौसम में धूप में एवं गर्मी मे ंपंखे की हवा में नहीं बैठना चाहिए।
- जिस दिन आकाश साफ नहीं हो या वर्षा हो रही हो, उस दिन इन क्रिया को नहीं करें।
- प्रक्षालन के बाद ठंडे पानी से हाथ पैर ज्यादा नहीं धोएं।
- बालक, कमजोर व्यक्ति, मासिक धर्म के समय और गर्भवती स्त्री को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
- क्रिया के पश्चात तीन दिनों तक मिर्च–मसाला, अचार एवं अन्य प्रकार के मसालेदार वस्तुओं का सेवन न करें।
- अगले पांच दिनों तक मिठाई, दही या दूध से बनी कोई चीज़ न खाएं।
- फल या जूस तीन दिनों तक बिल्कुल नहीं लें।
- मांसाहार, मदिरा सेवन एवं तामसिक भोजन से बचें। यह स्वस्थ सुखी जीवन के लिए लाभदायक नहीं है।
- बाजार में उपलब्ध पेय, कोल्ड ड्रिंक एवं सॉफ्ट ड्रिंक से परहेज करें।

लाभ

- पूरी आहार नाल (मुँह से लेकर गुदा द्वार तक) की सफाई हो जाती है।
- शरीर का शुद्धिकरण होता है, गंदे एवं विषैले तत्व शरीर से बाहर निकल जाते हैं, शरीर हल्का एवं कान्तिवान होता है।
- सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं कब्ज, गैस, बवासीर, खट्टी डकारें, मन्दाग्नि इत्यादि।
- मोटापा, मधुमेह, श्वास संबंधी रोग, हृदय रोग, सिर दर्द, अपेन्डिसाईटिस एवं अन्य रोगों में लाभदायक है।

टिप्पणी

- स्त्रियों में मासिक धर्म संबंधी विकृतियाँ दूर होती है।
- नाड़ी के अवरोध को तोड़ता एवं चक्रों का शुद्धिकरण करता है।

नोट – शंख प्रक्षालन की क्रिया साल में दो बार करनी चाहिए। यह समय सितम्बर–अक्तूबर एवं मार्च–अप्रैल का है जो ऋतु परिवर्तन का समय होता है। शंख प्रक्षालन का अभ्यास योग शिक्षक की देखरेख में ही सम्पन्न करना चाहिए।

6.1.2 बस्ति क्रिया

बस्ति क्रिया का अर्थ है यौगिक एनिमा। योगी लोग पहले नदी या तालाब के जल को नाभि तक खड़े होकर गुदा द्वार से अपनी आंतों में जल का प्रवेश कराके, पुनः गुदा द्वारा से ही जल को बाहर निकाल देते थे।

आधुनिक एनिमा

यह प्राचीन बस्ति क्रिया का ही एक परिष्कृत रुप है। नदी में बस्ति क्रिया करने के लिए आज कोई भी तैयार नहीं होगा। अतः नदी में बस्ति क्रिया करने के बदले 'एनिमा' का यंत्र खरीद लेना चाहिए। नींबू–पानी या नमकीन पानी एनिमा यंत्र के सहारे आंतों के भीतर चढ़ाने से आंतों में रुका हुआ मल बाहर निकल जाता है और पेट साफ हो जाता है। रोगियों को एनिमा देने से तत्काल लाभ होता है। समय–समय पर एनिमा लेते रहने से शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। शरीर की कांति बढ़ती है।

इस क्रिया को प्रातः खाली पेट करना सबसे अच्छा होता है।

6.1.3 नेति क्रिया

नेति का अर्थ नाक और उसके आस–पास के क्षेत्र की सफाई और उपचार है। नेति से कपाल–शुद्धि, दृष्टि–शुद्धि और कंधों से ऊपर के हिस्सों का उपचार किया जाता है।

i) **जल नेति –** जल नेति के लोटे में हल्का गरम पानी लेकर उसमें आवश्यकतानुसार नमक मिला लें। लोटे की नली को बायीं नासिका छिद्र में लगाकर दायीं नासिका को थोड़ा नीचे रखें। मुख को खोलकर रखें और श्वास लेना–छोड़ना मुख से ही करते रहें। दायीं नासिका से जल अपने आप बाहर निकलने लगता है और साथ ही कफ विकार भी नासिका से जल धारा के साथ बाहर निकलता जाता है। इसी प्रकार दूसरे नासिका से भी करते हैं। जल नेति करने का समय प्रातःकाल ही है। नेति क्रिया से सर्दी जुकाम ठीक हो जाता है। जल नेति करने के तत्काल बाद कपाल भाति क्रिया करनी चाहिए ताकि नासिका के अंदर रुका हुआ जल भी बाहर निकल जाये और नासिका पूरी तरह खुल जाय। इसके बाद थोड़ी देर शशांकासन में आराम करना चाहिए।

चित्र 6.3: जल नेति

ii) **सूत्र नेति –** सूती धागों से सूत्र बना होता है जिसके एक हिस्से में मोम लगा होता है। उसी से सूत्र नेति की जाती है। सूत्र नेति को नासिका में डालने से पहले जल में भिगो लें। सूत्र के कुछ हिस्से तक मोम लगा होता है उसी हिस्से को नासा द्वार से सरलता पूर्वक धीरे–धीरे अंदर ले जाते हैं। मुख में आने पर सूत्र के दोनों छोरों को दोनों हाथों से पकड़कर सावधानीपूर्वक सूत्र को बाहर निकालते हैं।

चित्र 6.4: सूत्र नेति

टिप्पणी

अब इसी प्रकार दूसरी नासिका छिद्र से भी करते हैं। अच्छा अभ्यास हो जाने पर दोनों नासिका से एक साथ भी कर सकते हैं।

नोट – इस क्रिया का अभ्यास किसी विशेषज्ञ की देखरेख में किया जाना चाहिए।

6.1.4 त्राटक क्रिया

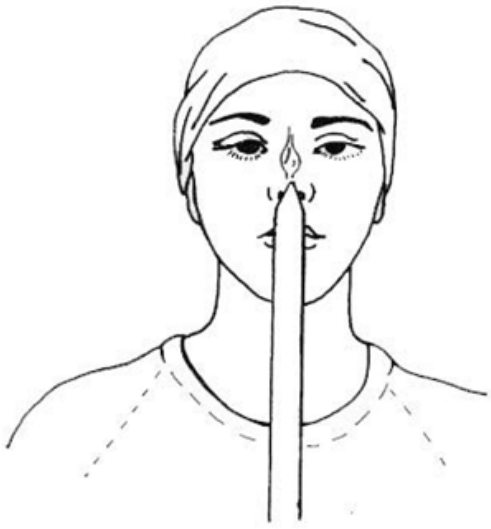

चित्र 6.5: त्राटक क्रिया

आत्मा के संयोग से मन काम करता है और मन के संयोग से इंद्रियाँ कर्म करती हैं। मन बड़ा चंचल और अधम है। आत्मा के बंधन का कारण है मन। मनुष्य के सुख और दुःख का कारण है मन। परन्तु, मनुष्य को ऊपर उठाने वाला भी मन ही है। मुक्ति का साधन भी मन है।

मन तक पहुँचने और उसकी अज्ञात शक्तियों को सक्रिय बनाने के लिए त्राटक साधना की जाती है। त्राटक की साधना एक स्वतंत्र साधना भी है, जो उच्च साधकों के लिए होती है। त्राटक अत्यंत शक्तिशाली साधना है।

विधि

पद्मासन या सुखासन में पीठ सीधा रखकर सुखपूर्वक बैठ जाइए। घी का दीपक जलाकर उसे 4 फीट की दूरी पर आँखों के सामने रखिये। घी के अभाव में मोमबत्ती भी ले सकते हैं।

अब बिना पलक झपकाए दीपक की लौ को देखें। दीपक को निर्वात स्थान पर रखना चाहिए। अनवरत, देखते–देखते जब आँखों में आंसू आने लगें या आँखों में जलन होने लगे तब कोमलता से आँखें बंद कर लें और बंद आँखों से अपने अंतर में वैसा ही प्रकाश देखने की कोशिश करें। पुनः आँखें खोलकर दीपक की स्थिर लौ को एक–टक देखते जायें। आँखों में आंसू व जलन आये तो आँखें बंद कर लें। धीरे–धीरे इस अभ्यास को बढ़ाएं। इसकी अवधि 20 मिनिट से अधिक न बढ़ायें। अपने निर्धारित समय के अनुसार इस क्रिया को

नियमित रूप से करते रहना चाहिए। ज्योति पर ध्यान करते समय अपने ईष्ट देवता का, परमपिता परमेश्वर का स्मरण करते रहना चाहिए। इससे धारणा सिद्ध हो जाती है, फलस्वरूप साधक ध्यान की भूमि में प्रवेश करता है।

यह क्रिया कागज़ पर काला बिंदु लगाकर या 'ऊँ' पर भी कर सकते हैं। चन्द्रमा व उगते हुए सूरज का भी त्राटक किया जाता है।

6.1.5 नौलि क्रिया

दोनों पैरों को दो फुट के फासले पर रखकर खड़े हो जाइए। दोनों हाथों को दोनों जांघों पर रखकर थोड़ा–सा आगे झुक जाइए। अपनी दृष्टि पेट पर रखिए। (उड्यान बंध) श्वास बाहर निकालकर पेट को अंदर की ओर खींचकर पेडू के बीचो–बीच में एक 'नाल' (तना) जैसा आकार दीजिए। पेट के मध्य में मांसपेशियों की एक मोटी नली निकल आयेगी। इस मोटी नली को बायीं ओर ले जाइए। फिर दाहिनी और लाइये। इस तरह जल्दी–जल्दी बांयी और दायीं ओर घूमाइए। जब नाल बांयी ओर रहती है 'बाम–नौलि' कहते हैं। दाहिनी ओर रहने पर 'दक्षिण नौलि' तथा बीच में रहने पर मध्य नौलि' कहते हैं।

यह क्रिया सभी योगाभ्यासी को सीखनी चाहिए। अभ्यास का समय प्रातःकाल, भोजन से पूर्व, खाली पेट है।

नोट – अल्सर, हर्निया और हृदय रोगियों की इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

6.1.6 कपाल–भाति

कपाल का अर्थ है– मस्तिष्क और भाति का अर्थ है चमकाना, अर्थात् मस्तिष्क को शुद्ध करने वाली क्रिया को कपाल भांति कहते हैं।

पद्मासन या सुखासन में बैठ जाइए। दोनों हाथ घुटनों पर रखिए। श्वास अंदर खीचिए फिर श्वास को झटके के साथ बाहर निकालिए। थोड़ी–थोड़ी मात्रा में, झटके के साथ, श्वास को लगातार बाहर निकालते जाना कपाल भाति कहलाता है। बीस–पच्चीस बार थोड़ी–थोड़ी वायु बाहर निकालने के बाद अंतिम श्वास जोर से फेफड़ों के बाहर पूरी तरह निकाल दीजिए और बाह्य कुम्भक लगाइए। जितनी देर आराम से श्वास रोक सकें, शरीर के बाहर ही रोके रखें। फिर धीरे–धीरे स्वाभाविक श्वास में आ जाएँ। इस प्रक्रिया को 2 से 3 बार दोहराइए।

इस क्रिया से फेफड़ों की शुद्धि होती है। शुद्ध वायु अधिक मात्रा में फेफड़ों में जाकर रक्त की शुद्धि करती है। इस क्रिया से मन की चंचलता कम होती है।

नोट –

- हृदय रोगियों और उच्च रक्त चाप के रोगी के लिए यह उपयुक्त नहीं है।
- ➢ गर्मियों में इसका अभ्यास न करें।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 6.1

1. षट्कर्म की क्रियाओं को नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

2. धौति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3. आधुनिक एनिमा कैसे करते हैं?

.....

.....

.....

4. शंख प्रक्षालन का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

5. शंख प्रक्षालन के आसनों का नाम लिखें।

.....

.....

.....

6. शंख प्रक्षालन किसे नहीं करना चाहिए।

.....

.....

.....

आपने क्या सीखा?

- योग के परिप्रेक्ष्य में षट्कर्म का अर्थ शारीरिक शुद्धि से है। हठयोग में घटशुद्धि के लिए शोधन क्रियाएं षट्कर्म ही कहलाती हैं। षट्कर्म की ये क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक हैं।
- हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है –

  हठं बिना राजयोगं राजयोगं विना हठः।

  न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समश्यसेत्।। (हठ. 2/76)

  अर्थात हठयोग के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता तथा राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है। इसलिए साधक को हठयोग एवं राजयोग दोनों का सतत् अभ्यास करना चाहिए।
- षट्कर्म की ये क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कान्तिमय बनाती हैं।
- आयुर्वेद में वर्णित पंचकर्म का यह समानान्तर रुप है, जिसकी खोज हमारे ऋषियों–मुनियों द्वारा शरीर, मन और प्राण के शोधन के लिए की गई है।
- षट्कर्म की ये क्रियाएं हैं –

  धौतिर्बस्तिस्तथानेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणी प्रचक्षते।
  (हठ. 2/22)

  धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाती इन छः कर्मों का योगमार्गानुगामियों के लिए उपदेश किया गया है।

  षट्कर्म छः होते हैं –

  1. धौति
  2. बस्ति
  3. नेति
  4. त्राटक
  5. नौली
  6. कपालभाति।

टिप्पणी

हठयोग में इन छः क्रियाओं को शुद्धि क्रियाएं भी कहा जाता है।

इस यूनिट में आपने वात, पित्त एवं कफ दोष से शरीर को मुक्त करने के लिए ऋषियों द्वारा बताये गए षट्कर्म की क्रियाओं को समझा है। नेत्र, जिह्वा, दांत आदि की स्वच्छता के लिए धौति क्रिया की जाती है। आपने यह भी जाना कि इन क्रियाओं को करने में कौन–कौन सी सावधानियां बर्तनी चाहिए। श्वसन क्रिया को सुव्यवस्थित करने के लिए आपने नेति क्रिया के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। अंतर मन को सशक्त एवं आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करने के लिए त्राटक के अभ्यास को जाना। कफ विकार से मुक्ति पाने के लिए वस्त्र धौति एवं कुंजल क्रिया के बारे में विस्तार से जाना।

यूनिटान्त प्रश्न

1. षट्कर्म को समझाते हुए किन्हीं दो क्रियाओं का वर्णन कीजिए।
2. शंख प्रक्षालन की पूरी विद्या को विस्तार से समझाइए।
3. धौति से क्या अभिप्राय है? शंख प्रक्षलान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. छह, नेति, धौति, बस्ति, नौलि, त्राटक, कपाल भाति।
2. धौति का अर्थ है –धोना, भोजन नलिका से लेकर आमाश्य तक शुद्ध करना।
3. आधुनिक एनिमा में एक पात्र होता है जिसमें लगभग एक मीटर की लंबी नलिका होती है जिसके दूसरे छोर पर एक कैथेटर (रबड़ की ट्यूब) होता है, जिसे गुदा द्वार में लगाते हैं जिससे पानी अंदर चढ़ता है और बड़ी आँत की सफाई हो जाती है।
4. पेट की सफाई की क्रिया शंख प्रक्षालन कहलाती है।
5. ताड़ासन, त्रिर्यक ताड़ासन, कटि चक्रासन, त्रिर्यक भुजंगासन उदराकर्ष आसन।
6. ह्रदय रोगी, शारीरिक रुप से कमजोर व्यक्तियों को शंख प्रक्षालन नहीं करना चाहिए।

गतिविधि: चित्र देखकर षट्कर्म अभ्यासों की पहचान कीजिए तथा अपनी नोटबुक में इनकी विधि एवं लाभों को लिखिए।

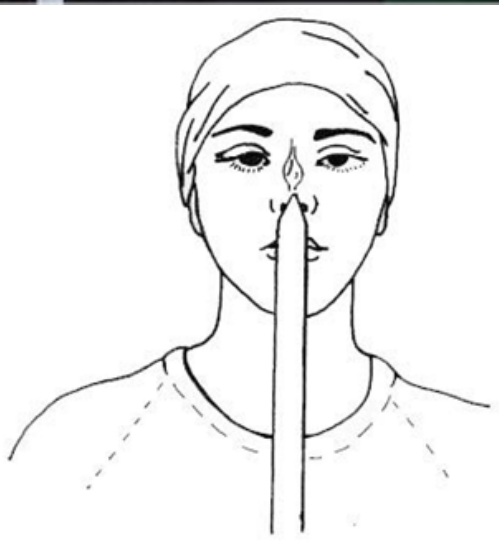

योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम

मॉड्यूल 3: व्यावहारिक योग विज्ञान

(पाठ्यक्रम कोड 497)

7

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएँ (व्यायाम)

पिछले यूनिटों में आप योग का परिचय, अष्टांग योग, योग के विभिन्न मार्गों के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सभी ज्ञानात्मक व क्रियात्मक इन्द्रियां और शरीर के विभिन्न अंग, मन से ही आदेश लेते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए, यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, ध्यानात्मक आसन, प्राणायाम आदि करना अति आवश्यक है।

इस यूनिट के अंतर्गत हम यौगिक सूक्ष्म क्रिया का अध्ययन करेंगे तथा उनके महत्व और आवश्यकता पर चर्चा करेंगे। साथ ही, शरीर के विभिन्न अंगों पर उनके प्रभावों और उनके लाभों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप –

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं की आवश्यकता और उनके महत्व का वर्णन कर सकेंगे;
- सूक्ष्म क्रियाएं करने की विधि और उनके प्रभावों का उल्लेख कर सकेंगे;
- कुछ विशेष आरामदायक व ध्यानात्मक आसन तथा विभिन्न रोगों में उनके लाभ स्पष्ट कर सकेंगे;
- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारियों और सावधानियों की व्याख्या कर सकेंगे।

टिप्पणी

7.1 यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं (व्यायाम) और योग का महत्व

यहां पर हम यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं, उन्हें करने का सही तरीका और उनके लाभों के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे। योग की सरल व सूक्ष्म क्रियाओं से आप क्या समझते हैं?

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं क्या हैं?

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं वे सभी क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों और उनके संचालन के लिए, योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती हैं और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे प्रभावित होता है। यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं (व्यायाम) के अंतर्गत बहुत सी क्रियाएं की जाती हैं, जिन्हें योगासनों को करने से पूर्व करना आवश्यक माना जाता है और शरीर भी योगासन करने के लिए अपने आपको तैयार कर लेता है।

योग का महत्व

क्या आप जानते हैं कि व्यायाम बहुत प्रकार से किए जाते हैं – जैसे टहलना, दौड़ना, भार उठाना, दंड–बैठक, कुश्ती लड़ना, खेल खेलना, यौगिक क्रियाएं और आसन करना आदि। इन सभी व्यायामों की अपनी–अपनी महत्ता है। सभी व्यायामों से शरीर को शक्ति मिलती है, परन्तु शरीर को लचीला बनाने के लिए, रक्त वाहिनी नाड़ियों में रक्त के संतुलित प्रवाह के लिए, यौगिक व्यायाम ही उत्तम माना गया है। अतः शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, मुद्रा और प्राणायाम सर्वोत्तम हैं।

मानसिक स्वास्थ्य यौवन को लंबे समय तक बनाये रखने और व्यक्ति को ओजस्वी बनाने का उचित मार्ग है। स्वास्थ्य और जीवन–शक्ति, शारीरिक स्थिति से कहीं अधिक व्यक्ति की मनःस्थिति पर निर्भर करती है। व्यक्ति बढ़ता है, बूढ़ा नहीं होता। जैसे–जैसे आपके जीवन में वर्ष जुड़ते हैं, 'योग' द्वारा आप अपने वर्षों को अर्थपूर्ण बना सकते हैं। जीवन में विश्वास, आत्मसम्मान और गरिमा भरने के लिए, यौगिक क्रियाओं, आसन, मुद्रा व प्राणायाम का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे मन शुद्ध होता है, अतिरिक्त शक्ति प्राप्त होती है और आत्मिक शान्ति मिलती है। मानसिक स्वास्थ्य दृढ़ होने पर मन ऐसी स्थिति में होगा कि भौतिक शरीर तथा शरीर के अन्य सूक्ष्म अंगों द्वारा जीवन शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग प्रभावपूर्ण ढंग से समस्त कार्य करने में सम्पन्न हो।

> बिना व्यायाम के शरीर अस्वस्थ तथा ओज एवं कान्तिहीन हो जाता है जबकि नियमित रुप से व्यायाम करने से दुर्बल रोगी एवं कुरूप व्यक्ति भी बलवान, स्वस्थ और सुंदर बन जाता है।

टिप्पणी

आसन व प्राणायाम से पूर्ण आरोग्य लाभ होता है तथा किसी प्रकार की कोई हानि नहीं होती। शरीर के साथ मन में एकाग्रता एवं शान्ति का विकास होता है।

नोट – इन यौगिक क्रियाओं को, जिस क्रम में बताया गया है, उसी क्रम के अनुसार करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 7.1

1. यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं क्या हैं?

   .....

   .....

   .....

2. मानसिक स्वास्थ्य की क्या महत्ता है?

   .....

   .....

   .....

7.2 यौगिक क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारियाँ और सावधानियाँ

अब हम इन सूक्ष्म क्रियाओं का विस्तार से अभ्यास करना सीखेंगे। परन्तु यौगिक क्रियाओं और आसनों को करने से पूर्व कुछ निर्देश और सावधानियों को समझना आवश्यक है। नीचे बताए गए निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़िए और समझिए –

- अभ्यास करने का स्थान स्वच्छ, खुला और हवादार होना चाहिए;
- अभ्यास हमेशा समतल जमीन पर दरी या चादर बिछाकर करें;
- ऋतु के अनुसार ढीले और आरामदायक वस्त्रों का उपयोग करें;
- क्रियाएं और आसन धीरे–धीरे करें। यदि किसी अंग पर दर्द का अनुभव हो तो वहाँ जोर न लगाएं;
- चश्मा, घड़ी और आभूषण उतार देने चाहिए ;
- क्रियाएं करते समय शरीर को ढीला रखना चाहिए;
- क्रियाएं अथवा आसन करते समय श्वास नाक से ही लेना चाहिए ;
- अभ्यास करने से पूर्व शौच आदि से निवृत्त होना ठीक रहता है;

- जब भी बीच में कभी थकान हो या पसीना आए तो विश्रामात्मकासन में आराम करें, तभी अगला अभ्यास प्रारंभ करना चाहिए।

अब हम क्रियाएं सीखेंगे। नीचे बताई गई क्रियाओं की स्थिति और विधि को ध्यानपूर्वक पढ़ें, भलीभांति समझे और कंठस्थ कर लें और उचित समय पर इनका अभ्यास करें।

7.2.1 प्रार्थना एवं यौगिक क्रियाओं के अभ्यास

किसी भी तरह का योगाभ्यास प्रारंभ करने से पहले यौगिक प्रार्थना करना आवश्यक समझा जाता है।

स्थिति

- दोनों पैर मिलाकर, शरीर को पाँव से लेकर सिर तक बिल्कुल सीधा रखें;
- आँखें बंद कर लें;
- दोनों हाथ मिलाकर वक्षस्थल पर, हृदय क्षेत्र से थोड़ा ऊपर रखें;
- हाथ के अंगूठे, कंठ की हड्डी के समकक्ष होने चाहिए ;

विधि :

चित्र 7.1: प्रार्थना

टिप्पणी

ईश्वर का ध्यान करते हुए प्रार्थना करें। उदाहरणार्थ प्रार्थना निम्न प्रकार से करनी चाहिए –

श्री करुणा निधेय नमः
हे परम पिता, हे विश्व पिता
हे राष्ट्र पिता, हे जगद्‌धार
हे करुणामय, हे दीन दयालु
हे पूर्ण गुरु, हे अपरम्पार
हे परेष, अब कृपा कर
हमें दीजिए, शुद्ध विचार
जिससे जनता के सेवक बन
नाथ करें, सुखमय संसार
हे परम पिता, हे विश्वपिता
हे राष्ट्र पिता हे जगद्‌धार

प्रार्थना के अंत में, सभी लोग निम्नलिखित कथन को ऊँचे स्वर में एक साथ, तीन बार करें –

हे नाथ, आपकी कृपा से

विश्व का ..... कल्याण हो – (3 बार)

सभी ..... कर्त्तव्यपरायण हों – (3 बार)

परस्पर ..... प्रेम हो – (3 बार)

श्री करुणा निधेय नमः ।।

नोट – इसके स्थान पर आप अपनी इच्छानुसार अपने ईष्ट देव की अन्य प्रार्थना भी कर सकते हैं।

लाभ

- प्रार्थना करने से आस–पास का वायुमंडल शुद्ध और स्पन्दित होता है;
- प्रार्थना से ध्यान लगने में मदद मिलती है;
- मानसिक त्रुटियां दूर होती हैं;
- मन को शान्ति मिलती है;
- आत्म शुद्धि (self-purification) की प्राप्ति होती है।

प्रार्थना के बाद अब यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं प्रारंभ करते हैं।

टिप्पणी

7.2.2 पवनमुक्तासन श्रेणी–1 (संधि संचालन के अभ्यास)

(अ) पैरों के लिए संधि संचालन के अभ्यास)

(i) **पादांगुली नमन –**

चित्र 7.2: पादांगुली नमन

विधि

- दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठें, हाथ को पीछे सहारा देने के लिए रखें;
- पैर की अंगुलियों को मोड़ना और खोलना शुरु करें। केवल अंगुलियाँ मोड़ें;
- श्वास–प्रश्वास के ताल–मेल के साथ, श्वास छोड़ते हुए सामने की तरफ, श्वास लेते हुए अपनी तरफ, पांच बार करेंगे;
- पंजा व टखना स्थिर रखें, केवल अंगुलियों में गति रखें। पांच बार अभ्यास करें फिर थोड़ी देर का विश्राम करें। अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास करें। हल्का खिंचाव एवं प्रभाव का अनुभव करें।

ii) **गुल्फ नमन**

चित्र 7.3: गुल्फ नमन

टिप्पणी

विधि

- दोनों पंजों को आगे–पीछे करें;
- अंगुलियां स्थिर रखें, केवल टखनों में गति बनाएं;
- श्वास लेते हुए पंजा आगे और श्वास छोड़ते हुए पीछे ले जाएं;
- पूरी चेतना और सजगता टखने के आस–पास रखें। पांच बार इस अभ्यास को करें, फिर थोड़ी देर का विश्राम करें।

iii) गुल्फ घूर्णन

चित्र 7.4: गुल्फ घूर्णन

विधि

- एक पैर को मोड़ कर जांघ के पास रखिए;
- एक हाथ पैर के ऊपर और एक हाथ टखने पर रखिए;
- हाथ की सहायता से टखने को गोल–गोल घुमाइये;
- एक श्वास में एक बार घुमायें। पांच बार क्लॉक वाइज़ एवं पांच बार एन्टी क्लॉक वाइज़ कीजिए;
- दर्द(पेन) वाले स्थान पर हल्की मसाज कीजिए ;

- बेहतर रक्त का प्रवाह, बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए। अब दूसरे पैर से इसी तरह इस अभ्यास को कीजिए।

iv) **जानुनमन**

चित्र 7.5: जानुनमन

विधि

- जांघ के नीचे अपनी हथेलियों को फँसाइए;
- घुटने को मोड़ना और खोलना शुरू कीजिए ;
- श्वास लेते हुए खोलिए, श्वास छोड़ते हुए मोड़िए;
- एड़ी जमीन को छुएगी नहीं, ऊपर ही ऊपर लाना और ले जाना है;
- खोलते वक्त घुटना सीधा रखने का प्रयास करेंगे। पूरी सजगता, पूरी चेतना घुटने के आस–पास रहे। श्वास–प्रश्वास के तालमेल के साथ पांच बार बायें से और फिर पांच बार दांये से श्वास लेते हुए खोलिए और श्वास छोड़ते हुए मोड़िए;
- फिर थोड़ी देर विश्राम प्रारंभिक स्थिति में कीजिए ;
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

v) जानु चक्र

चित्र 7.6: जानु चक्र

विधि

- जांघ के नीचे हाथों को कुहनियों तक फंसाइये;
- अब घुटने को गोल–गोल घुमाना है। (जितना बड़ा चक्र बना सकते हैं, बनाने का प्रयास कीजिए, श्वास लेते हुए ऊपर और श्वास छोड़ते हुए नीचे);
- एक श्वास में एक बार। 3 बार क्लॉक वाइज़ और 3 बार एन्टी क्लॉक वाइज़ कीजिए;
- अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए ;
- जांघ की मांसपेशियों, पिंडली की मांसपेशियों में खिंचाव अनुभव कीजिए, जोड़ों और टखने में हल्का दर्द अनुभव कीजिए, उदर क्षेत्र पर हल्का दबाव अनुभव सहित दिया जा सकता है। इस क्रिया को 5–5 बार दोनों दिशाओं में करें, फिर दूसरे पैर से दोहराएं।

vi) जानुफलकाकर्षण –

चित्र 7.7: जानुफलकाकर्षण

विधि

- घुटने की मांसपेशियों को सिकोड़िये और छोड़िए;
- श्वास लेते हुए मांसपेशियों को अपनी तरफ खींचिये, थोड़ी देर रोकिए, श्वास छोड़ते हुए मांसपेशियों को ढीला कीजिए ;
- इस क्रिया को 5—5 बार अपनी श्वास व समय के अनुसार कीजिए, फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए, जानुफलक आकर्षण विशेष रूप से घुटने के दर्द के लिए असरकारक है।

गठिया रोग, घुटनों में अत्यधिक दर्दकारक है जिसके लिए जानुफलकाकर्षण रामबाण है।

vii) **अर्द्धतितली आसन**

चित्र 7.8: अर्द्धतितली आसन

विधि

- एक पैर को मोड़कर दूसरे पैर की जांघ के ऊपर रखिए ;
- एक हाथ टखने के ऊपर एक हाथ जांघ के ऊपर रखिए ;
- हाथ की सहायता से घुटने को ऊपर और नीचे लाइए, श्वास लेते हुए जमीन की तरफ और श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ घुटने को लाइये और ले जाइए ;
- इस क्रिया को बहुत ही धीरे–धीरे 5–5 बार दोनों पैरों से कीजिए।

viii) **पूर्णतितली आसन**

चित्र 7.9: पूर्णतितली आसन

विधि

- दोनों पैर के पंजों को आपस में मिलाइए, दोनों हाथों को पैर के पंजों में लॉक कीजिए ;
- घुटने को ऊपर–नीचे करें;
- सामान्य श्वास–प्रश्वास के साथ, रीढ़ की हड्डी को सीधी रखें, वक्ष स्थल खुला हुआ होना चाहिए;
- तत्पश्चात् घुटनों को यथाशक्ति जल्दी–जल्दी पृथ्वी से अलग व पृथ्वी पर; तितली के पंखों की भांति गति दें।

ix) **श्रोणीचक्र**

चित्र 7.10: श्रोणीचक्र

विधि

- अर्द्धतितली की अवस्था में बैठिये;
- एक हाथ घुटने के ऊपर रखकर, घुटने को गोल–गोल घुमाइये;
- श्वास लेते हुए घुटने जमीन की तरफ, श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ क्लॉक वाइज़ और एन्टी क्लॉक वाइज;
- फिर दूसरे पैर से इसी तरह कीजिए।

x) **वज्रासन**

चित्र 7.11 : वज्रासन

टिप्पणी

विधि

- घुटनों को मोड़ते हुए पैरों को नितंबों के नीचे रखिए ;
- जहां तक संभव हो रीढ़ की हड्डी सीधी रखने का प्रयास कीजिए;
- यदि वज्रासन ज्यादा देर तक संभव न हो सके तो किसी भी आरामदायक आसन में बैठकर विश्राम कीजिए;
- रीढ़ की हड्डी सीधी रखिए।

(ब) हाथों के संधि संचालन के अभ्यास

i) मुष्ठिका बंध

चित्र 7.12: मुष्ठिका बंध

विधि

- हाथ को कंधे के सीध में ऊँचा उठाइए;
- कुहनी सीधी रखिए;
- अंगूठे को अंदर रखते हुए मुट्ठी बांधिये;
- श्वास लेते हुए खोलिए और श्वास छोड़ते हुए बांधिये।

टिप्पणी

ii) **मणिबंध नमन –**

चित्र 7.13: मणिबंध नमन

विधि

- हथेली को सीधी रखते हुए कलाई को ऊपर–नीचे मोड़िये;
- श्वास लेते हुए ऊपर की तरफ, श्वास छोड़ते हुए नीचे की तरफ मोड़िये।

iii) **मणिबंध चक्र**

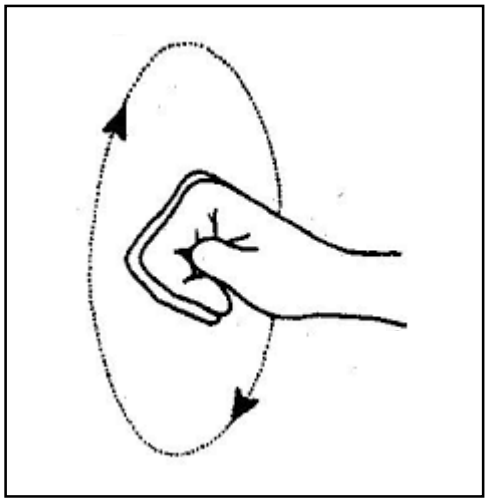

चित्र 7.14: मणिबंध चक्र

विधि

- मुट्ठी बांध कर कलाई को गोल–गोल घुमाइये;
- एक श्वास में एक बार, बाहर से अंदर फिर अंदर से बाहर कीजिए;
- 5–5 बार दोनों दिशाओं में कीजिए, फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए;
- हथेलियों को जांघ के ऊपर रखिए, भुजाओं में हल्की पीड़ा जो उत्पन्न हुई उसको अनुभव कीजिए।

iv) **कोहनीनमन**

चित्र 7.15: कोहनीनमन

विधि

- कोहनी को मोड़िये और खोलिए, श्वास लेते हुए सामने की तरफ, श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ कंधे तक लाइए और ले जाइये;
- फिर बगल की तरफ लाइए और ले जाइये;
- सारी सजगता– सारी सक्रियता कोहनी के आसपास रखिए;
- फिर थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए।

v) **स्कन्ध चक्र**

चित्र 7.16: स्कन्ध चक्र

विधि

- अंगुलियों को कंधे पर रखिए, कोहनियों को स्कन्ध से गोल–गोल घुमाइये;
- श्वास लेते हुए छाती और हाथों को फैलाइये, श्वास छोड़ते हुए कोहनियों को मिलाइये;
- 5–5 बार पीछे से आगे और आगे से पीछे घुमाइये;
- पूरी चेतना, पूरी सजगता कंधे के आसपास रखिए और फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए।

ग्रीवा संचालन

चित्र 7.17: ग्रीवा संचालन

विधि

- श्वास लेते हुए गर्दन पीछे, श्वास छोड़ते हुए गर्दन सामने की तरफ धीरे–धीरे घुमाइये;
- गर्दन में मूवमेंट दीजिए, ध्यान रहे गर्दन की नसें नाजुक होती हैं, कहीं पर ज्यादा दबाव न पड़े, कही कोई ज्यादा न खिंच जाए;
- सामान्य गति में गर्दन आगे–पीछे लायें, फिर साइडवेज जैसे बगल झांकने जैसा, श्वास लेते हुए पीछे और श्वास छोड़ते हुए आगे, 5–5 बार फिर थोड़ी देर विश्राम करें।

अब तक के अभ्यास को अनुभव कीजिए। पूरी शरीर ऊर्जान्वित, पूरा शरीर सक्रिय, बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए, सक्रियता, चैतन्यता अनुभव कीजिए। (संधि संचालन का अभ्यास समाप्त होता है।)

7.2.3 पवनमुक्तासन श्रेणी–2
(उदर संचालन के अभ्यास)

1. उत्तानपादासन

चित्र 7.18: उत्तानपादासन

विधि

- इस अभ्यास के लिए पीठ के बल लेट जाइए, दोनों पैर एक साथ मिलाइये;
- हथेलियां कमर के बगल में रखिए। (यह प्रारंभिक स्थिति हुई);
- श्वास लेते हुए बाएं पैर को धीरे–धीरे उठाइये;
- जहां तक पैर उठा सकते हैं क्षमतानुसार उठाते जाइए;
- अब श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे पैर को वापस नीचे लाइए;

- इसी प्रकार दायें पैर को श्वास भरते हुए उठाइये;
- श्वास छोड़ते हुए पैर को धीरे–धीरे नीचे लाइए;
- तीन–तीन बार कीजिए;
- दोनों पैरों को एक साथ धीरे–धीरे इसी प्रकार उठाइए, फिर नीचे ले आइये;
- दोनों तरफ से, पूरी सक्रियता, पूरी सजगता के साथ, घुटने के आसपास, जांघ, पिंडली की मांसपेशियों में खिंचाव का अनुभव कीजिए, फिर थोड़ी देर विश्राम के लिए शवासन में लेटिये और दोनों हाथ बगल में हथेलियाँ आसमान की ओर खुली हुईं, रीढ़ की हड्डी, सिर और गर्दन एक सीध में रखिए तथा अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए और जांघ, घुटना, कमर, टखना आदि सभी अंगों में बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए।

2. पादचक्रासन

चित्र 7.19 : पादचक्रासन

विधि

- शवासन से चेतनावस्था में आइये;
- पहले की तरह घुटने को सीधा रखते हुए दायें पैर को जमीन से ऊपर उठाकर गोल–गोल घुमाइये;
- श्वास लेते हुए ऊपर की तरफ और श्वास छोड़ते हुए नीचे की तरफ;
- लंबा बड़ा–सा घेरा बनाइये;
- धीरे–धीरे 3–3 बार क्लॉक वाइज़ और एन्टीक्लॉक वाइज कीजिए;
- अब दूसरे पैर से भी इसी प्रकार अभ्यास कीजिए;
- जांघ और पिंडली की मांसपेशियों में बेहतर रक्त का प्रवाह और टखने व कमर में हल्की पीड़ा महसूस कीजिए।
- पूरी चेतना, पूरी सजगता घुटने के आसपास रखिए;
- फिर थोड़ी देर शवासन में विश्राम कीजिए।

टिप्पणी

नोटः दोनों पैर एक साथ उठाकर भी यह अभ्यास किया जाता है, जो कठिन अभ्यास है हृदय व कमर के रोगियों को यह अभ्यास वर्जित है।

3. पादसंचालन (साइकिलिंग)

चित्र 7.20: पादसंचालन

विधि

- पहले की तरह दोनों पैरों को मिला लीजिए;
- हाथ सीधे, हथेलियां जमीन की तरफ रखिए;
- पाद्संचालन जैसे साइकिल चलाते हैं;
- पहले एक पैर के घुटने को मोड़िये; इन्हें छाती के करीब लाइए, फिर श्वास लेते हुए साइकिल चलाने की तरह पंजे को आगे–पीछे लाइए और ले जाइए;
- दूसरे पैर से भी इसी तरह कीजिए;
- फिर दोनों पैर से एक साथ साइकिल चलाइए;
- इस क्रिया को 5–5 बार लयबद्ध तरीके से कीजिए;
- बहुत धीरे–धीरे, कोई जल्दीबाजी नहीं, फिर थोड़ी देर शवासन की स्थिति में विश्राम कीजिए;
- उदर क्षेत्र, छाती के क्षेत्र में जो दबाव दिया गया है, जो दर्द पैदा किया गया है, सारी सजगता, सारी चेतना अभ्यास के प्रभाव पर ले जाइए। ये अभ्यास उदर विकारों को दूर करने में लाभदायक है।

4. पवन मुक्तासन

चित्र 7.21: पवन मुक्तासन

विधि

- दोनों घुटनों को मोड़िये;
- दोनों घुटनों के बाहर हथेलियों को फंसाकर श्वास भरिये और श्वास छोड़ते हुए नाक को घुटने से लगाने का प्रयास कीजिए;
- इस क्रिया को 3 से 4 बार, अपनी श्वास और समय के अनुसार कीजिए;
- फिर थोड़ी देर शवासन में विश्राम कीजिए।

5. उदराकर्षण

चित्र 7.22: उदराकर्षण

टिप्पणी

विधि

- दोनों हथेलियों की अंगुलियों को आपस में फंसाइये;
- इन्हें सिर के नीचे रखिए;
- दोनों घुटनों को मोड़कर सीने के पास रखिये;
- अब सिर को बाँई ओर व घुटने दाँई ओर मोड़िये;
- रीढ़ की हड्डियों में ऐंठन (मसाज) दीजिए;
- फिर विपरीत दिशा में सिर दाँई ओर व घुटने बाँई ओर मोड़िए;
- रीढ़ की हड्डी में मसाज दीजिए।

इससे पेंक्रियाज आदि ग्रंथियां सक्रिय होती हैं। इंसुलिन का सिक्रेशन बेहतर होता है। कब्ज और गैस दूर होती है।

7.2.4 पवन मुक्तासन श्रेणी–3 (शक्ति बंध के अभ्यास)

i) चक्की चलासन

- दोनों पैरों को फैलाकर बैठिए;
- हथेलियों को आपस में गूंथकर आगे की तरफ रखिए;
- हाथ सीधे रखिए;

चित्र 7.23: चक्की चलासन

- अब चक्की की तरह हाथों को चलाइए। यह महसूस करते हुए कि हमारे हाथ में बहुत भारी वजन है और उसे हम धकेल रहे हैं। इसी भावना के साथ कमर से आगे पीछे होइये, श्वास छोड़ते हुए आगे की तरफ और श्वास लेते हुए अपनी (पीछे की) तरफ, गोल–गोल घुमाइये। जांघ और पिंडली की मांसपेशियों में खिंचाव महसूस कीजिए;

- हल्की पीड़ा बाहों में उत्पन्न हो रही है, उनके प्रति सजग होइये और अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए।

ii) नौका चलासन

विधि

- दोनों पैरों को मिला लीजिए;
- हाथों को कमर की बगल में रखिये और अभ्यास कुछ ऐसे कीजिए जैसे नौका चलाते हैं;

चित्र 7.24: नौका चलासन

- कमर से ऊपर का भाग श्वास छोड़ते हुए आगे की तरफ भुजाओं सहित ले जाइए और श्वास लेते हुए अपनी तरफ वापस आइए;
- श्वास छोड़ते हुए आगे और श्वास लेते हुए पीछे की तरफ वापस आइए, जैसे नाव का चप्पू आपके हाथ में है और आप स्वयं नाव चला रहे हैं। थोड़ी देर का विश्राम करें।

iii) रज्जुकर्षण आसन (कुएं से पानी खींचने वाली स्थिति में आसन)

विधि

रज्जुकर्षण अर्थात् (रस्सी से पानी खींचना) जैसे–

- कुंए से पानी निकालते समय जैसे रस्सी को खींचते हैं, उसी प्रकार से ध्यान रखते हुए, श्वास लेते हुए एक हाथ ऊपर ले जाइए और श्वास छोड़ते समय बलपूर्वक मुट्ठी बांधकर नीचे की तरफ खींचिए;
- दोनों हाथों से बारी–बारी से कीजिए।

चित्र 7.25: रज्जुकर्षण

भुजाओं, कंधों तथा रीढ़ की हड्डी में संतुलित प्राण का संचार व रक्त के प्रवाह का अनुभव कीजिए।

iv) काष्ठतक्षण आसन (कुल्हाड़ी चलाने की स्थिति वाला आसन)

विधि

- पैर के पंजों के बल उकड़ू बैठिए;
- दोनों पंजों के बीच थोड़ी दूरी रखते हुए, दोनों हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर हथेलियों को ऊपर ले जाइये, यह अनुभव करते हुए कि हम कुल्हाड़ी चला रहे हैं;

चित्र 7.26: काष्ठतक्षण आसन

- हाथ ऊपर ले जाकर 'हा' ध्वनि के साथ नीचे लाइए;
- श्वास छोड़ते हुए, अंदर के सारे आक्रोश बाहर निकल रहे हैं;
- ऐसी भावना के साथ 5 से 10 बार इस अभ्यास को कीजिए, फिर थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए।

यह अभ्यास तनाव और तनाव जनित रोगों के लिए प्रभावकारक है। साथ ही, अवसाद के रोगियों के लिए प्रभावकारक है। जो घबराते हैं या दबाव में रहते हैं, उन्हें यह अभ्यास सक्रियता के साथ करना चाहिए।

7.2.5 विशेष अभ्यास

i) ताड़ासन –

विधि

- खड़े होकर दोनों पैर एक साथ, हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर, पलटकर सर के ऊपर रखिए;
- सामने दीवार में एक बिंदु निश्चित कीजिए, जिसमें अपनी चेतना को केन्द्रित रखते हुए, श्वास लेते हुए, हाथों को ऊपर उठाइये; और सीधा कीजिए; एड़ी उठाते हुए पंजों के बल खड़े होने का प्रयास कीजिए;

चित्र 7.27: ताड़ासन

- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे नीचे आइए। इस क्रिया को 5 बार कीजिए। खिंचाव का अनुभव कीजिए, विश्राम कीजिए;
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

ii) तिर्यक्ताड़ासन –

विधि

- ताड़ासन की स्थिति में श्वास छोड़ते हुए बायीं तरफ झुकिये;
- खिंचाव अनुभव कीजिए;
- श्वास लेते हुए बीच में आइये;
- अब श्वास छोड़ते हुए दाहिनी तरफ झुकिये; ध्यान रहे हाथ–भुजाएं तने हुए सीधे रहने चाहिए;

चित्र 7.28: तिर्यक्ताड़ासन

- कटिप्रदेश में, कंधास्थि में, हल्की पीड़ा महसूस कीजिए, दोनों ओर समान रूप से झुकिये;
- बांहों, जांघों, उदर और छाती की मांसपेशियों में सक्रियता अनुभव कीजिए।

iii) बुद्धि तथा धृति–शक्ति विकासक

चित्र 7.29: बुद्धि तथा धृति–शक्ति विकासक

स्थिति

- दोनों पैर मिलाकर, शरीर को कंधों तक बिल्कुल सीधा रखें।
- मुँह बंद रखें।
- सिर को बिल्कुल पीछे मोड़ते हुए ले जाएं।
- आँखें खुली रखें और ऊपर आकाश की तरफ देखें।

विधि

- सिर को पीछे रखते हुए, अपना ध्यान सिर के ऊपर, मध्य में लगाने की चेष्टा करें।
- नाक से सांस अंदर–बाहर करें।
- प्रारंभ में श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया 15–20 बार करें।

लाभ

- इस क्रिया से मानसिक विकार, जैसे– मंदबुद्धि, मूढ़ता, भूलना, उदासीनता, सन्देह आदि दूर होते हैं।
- इच्छा शक्ति बढ़ती है।

iv) स्मरण –शक्ति विकासक

चित्र 7.30: स्मरण –शक्ति विकासक

स्थिति –

- दोनों पैर मिलाकर सीधे खड़े हो जाएं।
- अपनी आँखों को पैरों से 5 फीट दूरी पर किसी बिन्दु पर केन्द्रीभूत करें।
- गर्दन की स्थिति सामान्य रखें।

टिप्पणी

विधि –

- ब्रह्म रन्ध्र (मस्तिष्क के बीच का भाग) पर ध्यान लगाएं।
- स्वाभाविक रूप से सांस अंदर–बाहर निकालें।
- इसी क्रिया को 15–20 बार दोहराएं।

लाभ

- इस क्रिया से मानसिक थकावट दूर होती है।
- स्मरण–शक्ति का विकास होता है।
- कार्य–क्षमता बढ़ती है।
- हाइपोथैलेमस (Hypothallamus) में प्राण–शक्ति का संचार होता है।

v) कपोल–शक्ति विकासक

चित्र 7.31: कपोल शक्ति विकासक

स्थिति

- दोनों पैर मिलाकर, सीधे खड़े हो जाएं।
- दोनों हाथों की आठ अंगुलियों का अग्र भाग मिला लें।
- नासिका को दोनों अंगूठों से बंद कर लें।

विधि

- होठों को, चोंच की भांति बनाकर, मुँह से ज़ोर से साँस भरें।
- सांस भरते समय आँखें खुली रखें।

- गाल फुलाकर, आँखें बंद कर लें।
- ठुड्डी को गले की, हड्डी पर रखकर, जब तक संभव हो साँस रोक कर रखें।
- तत्पश्चात्, गर्दन को सामान्य स्थिति में वापस ले आएं।
- आँखें खोल कर सामने देखें।
- धीरे–धीरे साँस को नासिका द्वारा बाहर निकालें।
- प्रारंभ में यह क्रिया तीन बार दोहराएँ।

लाभ –

- इस क्रिया से गालों को शक्ति मिलती है, झूर्रियां दूर होती है और चेहरा दमकने लगता है।
- दाँत मजबूत होते हैं और दंत–रोग जैसे पायरिया, मुँह से बदबू आना आदि ठीक होते हैं।
- आँख के रोग ठीक होते हैं।
- पेट की गर्मी दूर होती है।
- सिरदर्द में आराम मिलता है।
- मुँह का सूखापन ठीक हो जाता है।

vi) नेत्र–शक्ति विकासक क्रियाएं

स्थिति : दोनों पैर मिलाकर, सीधे खड़े हो जाएं।

विधि – क.

- गर्दन को सीधा रखकर आंख की पुतलियों को पहले ऊपर की ओर फिर नीचे की ओर चलायें।
- इस क्रिया को 8 से 10 बार दोहरायें।
- फिर आंखों को सामान्य स्थिति में लाते हुए विश्राम दें।

चित्र 7.32

ख.

- गर्दन को सीधा रखकर आंख की पुतलियों को पहले दायें फिर बायें घुमाएं।
- इस क्रिया को 8 से 10 बार दोहरायें।
- फिर आंखों को सामान्य स्थिति में लाते हुए विश्राम दें।

चित्र 7.33

ग.

- गर्दन को सीधा रखकर आंख की पुतलियों को दायीं से बायीं तथा बायीं से दायीं ओर गोलाई में घुमाएं।
- इस क्रिया को 8 से 10 बार दोहरायें।
- फिर आंखों को सामान्य स्थिति में लाते हुए विश्राम दें।

चित्र 7.34

लाभ

- आंख की सभी विकृतियां दूर होती हैं।
- दृष्टि, तीव्र होती है।
- यदि यह क्रिया लगातार की जाए तो, आंखें सदैव स्वस्थ रहती हैं।
- आंखों के अन्य विकार जैसे – आंखों से पानी आना, जलन होना, खुजली तथा आंखों की थकावट दूर होती है।
- लैंस की पावर भी कम होती है।

7.2.6 विश्रामात्मक आसन

विश्रामात्मक आसनों का भी अन्य आसनों की भांति बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इनके अभ्यास से व्यक्ति शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रुप से भी अपने आपको हल्का एवं ऊर्जावान अनुभव करता है।

विश्रामात्मक आसनों में आप निम्न प्रमुख आसनों का अध्ययन यहाँ करेंगे।

i) शवासन

ii) मकरासन

i) **शवासन**

चित्र 7.35: शवासन

विधि

- पीठ के बल सीधा लेट जाएँ।
- पैरों में थोड़ी दूरी रखकर सीधा फैला लें। दोनों हाथ धड़ के पास रखें, हथेली खुली हुई आकाश की ओर अंगुलियां थोड़ी मुड़ी हुई हों।
- आंखें बंद कर लें और श्वास सामान्य रखें।

- अपने शरीर की सभी मांसपेशियाँ, नस–नाड़ियाँ अंग–प्रत्यंग को ढीला छोड़ दें।
- पैर के अंगूठे से लेकर पिंडली, घुटना, जंघा, छाती, पेट, हाथ, गर्दन, मुँह और सिर, शरीर के प्रत्येक भाग पर क्रम से ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करें।
- ऐसा करने से शरीर के सभी अंग आराम का अनुभव करेंगे।
- बाद में दोनों हाथ आपस में रगड़ें और आँखों पर हल्का स्पर्श करें और धीरे–धीरे आँखें खोल दें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से शरीर की सभी मांसपेशियों, रक्त–नलिकाओं, नस–नाड़ियों और प्रत्येक अंग को संपूर्ण विश्राम मिलता है और अधिक काम करने से जो थकावट होती है, वह भी दूर हो जाती है।
- मानसिक तनाव और उच्च रक्तचाप दूर होता है।
- हृदय और मस्तिष्क में पुनर्वृद्धि होती है।
- अनिद्रा के रोगियों के लिए यह बहुत लाभकारी आसन है।
- डर, चिन्ता और पीड़ा की स्थिति से मन को शान्ति मिलती है।
- पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले आसनों में शवासन में ही विश्राम किया जाता है।

ii) मकरासन (पेट के बल लेटकर की जाने वाली क्रियाएं)

चित्र 7.36: मकरासन

विधि

- पेट के बल लेटें;
- बायाँ हाथ दाएं हाथ के साथ चित्रानुसार मिलाकर अपना मस्तक उसके ऊपर रखें;
- पैर सुविधापूर्वक दूर से दूर खुले हुए रखें। एड़ियां अंदर की ओर हों और पंजे बाहर की ओर;
- छाती को जमीन से थोड़ा उठाकर रखें;
- पेट पर हल्का–सा दबाव रखें;
- शरीर का संतुलन बिल्कुल मध्य में रहे;
- सांस की सामान्य गति रखें;
- इस स्थिति में 5–7 मिनट तक विश्राम कीजिए।

पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसनों के बाद मकरासन में ही विश्राम किया जाता है।

7.2.7 ध्यानात्मक आसन

योग में ध्यान की बहुत सी विधियाँ प्रचलित हैं। यह तल्लीनता की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साधक किसी एक लक्ष्य, ध्वनि, धारणा और ध्यान को लगाने का प्रयत्न करता है। ध्यान का अभ्यास बिना आसन व प्राणायाम की पूर्ण तैयारी के प्रारंभ करना उचित नहीं है। अतः ऐसे ही कुछ ध्यानात्मक आसनों के बारे में आप जानेंगे। अगले यूनिट योग आसन में इन आसनों के साथ–साथ अन्य आसनों पर भी विस्तार से चर्चा होगी। इनके व्यवहारिक स्वरूप को हम प्रयोग के दौरान समझ सकेंगे।

i) सिद्धासन

ii) वज्रासन

iii) पद्मासन

i) **सिद्धासन**

चित्र 7.37: सिद्धासन

टिप्पणी

विधि

- जमीन पर दरी, चटाई अथवा कंबल बिछाकर बैठ जाएँ और पैर आगे की ओर फैला लें।
- अब बायाँ पाँव, घुटने से मोड़ें और हाथों से पकड़ते हुए उसका तला, दाईं जंघा से मिला दें।
- इसी प्रकार दायाँ पाँव और उसे बाई एड़ी के जोड़ पर, जननेंद्रियों के समीप रखें।
- दोनों हाथ (ज्ञान मुद्रा) घुटनों पर रखें।
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से सभी नस–नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।
- मस्तिष्क की एकाग्रता बढ़ती है और दिमाग तेज़ होता है।
- जोड़ों का कड़ापन (विशेषकर कमर, कूल्हे और घुटने का) दूर होता है।
- मेरुदण्ड में रक्त का संचार सुगमता से होता है।

ii) **वज्रासन**

चित्र 7.38: वज्रासन

विधि

- दोनों पाँव घुटने से मोड़ते हुए बैठ जाएं।
- पैर का अग्र भाग नितम्ब (कुल्हे) के नीचे, इस प्रकार रखें कि एड़ी ऊपर की ओर रहे और दोनों पंजे आपस में मिले रहें।
- दोनों हाथ जंघा पर रखें।
- कमर और गर्दन बिल्कुल सीधा रखें।

- आँखें खुली रखें और सामने देखें।
- श्वास सामान्य रखें।

लाभ

- जिन बुर्जुगों को अपच, पेट में भारीपन और बदहज़मी की शिकायत रहती हो, उन्हें यह आसन भोजन के तुरंत बाद अवश्य करना चाहिए।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से शरीर वज्र के समान कठोर हो जाता है।
- गठिया, कमर और घुटनों के रोग के लिए यह बहुत लाभकारी है।

वज्रासन ही अकेला एक आसन है जो भोजन के तुरंत बाद किया जा सकता है।

iii) पद्मासन

विधि

- दाहिने पाँव को बायीं जांघ पर रखें;
- अब बायें पांव को उठाकर दांयी जांघ पर रखें;
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें;
- दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखें।

चित्र 7.39: पदमासन

टिप्पणी

लाभ

- पाचन शक्ति बढ़ाता है;
- जोड़ों का कड़ापन दूर होता है, एकाग्रता बढ़ती है;
- इसके प्रभाव से शरीर कमल के समान खिल जाता है, यानी स्वस्थ हो जाता है।

यूनिटगत प्रश्न 7.2

1. प्रार्थना के कोई दो लाभ बताइए।

   .....

   .....

2. पवनमुक्त श्रेणी के अंतर्गत उदर संचालन के किन्हीं दो मुख्य अभ्यासों के नाम लिखिए।

   .....

   .....

3. किन्हीं दो विश्रामात्मक आसनों के नाम लिखिए।

   .....

   .....

4. किन्हीं तीन ध्यानात्मक आसनों के नाम बताइए।

   .....

   .....

आपने क्या सीखा

- शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सभी ज्ञानात्मक व क्रियात्मक इन्द्रियां और शरीर के विभिन्न अंग, मन से ही आदेश लेते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए, यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, ध्यानात्मक आसन, प्राणायाम आदि करना अति आवश्यक है।
- **यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं वे सभी क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों एवं उनके संचालन के लिए, योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती हैं और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।**

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे प्रभावित होता है। यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं (व्यायाम) के अंतर्गत बहुत सी क्रियाएं की आती हैं, जिन्हें योगासनों को करने से पूर्व करना आवश्यक माना जाता है और शरीर भी योगासन करने के लिए अपने आपको तैयार कर लेता है।

- सभी व्यायामों से शरीर को शक्ति मिलती है, परन्तु शरीर को लचीला बनाने के लिए, रक्त वाहिनी नाड़ियों में रक्त के संतुलित प्रवाह के लिए, यौगिक व्यायाम ही उत्तम माना गया है। अतः शारीरिक और मानसिक रुप से स्वस्थ रहने के लिए यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, मुद्रा एवं प्राणायाम सर्वोत्तम हैं।

- मानसिक स्वास्थ्य यौवन को लंबे समय तक बनाये रखने और व्यक्ति को ओजस्वी बनाने का उचित मार्ग है। स्वास्थ्य और जीवन–शक्ति, शारीरिक स्थिति से कहीं अधिक व्यक्ति की मनोस्थिति पर निर्भर करती है। व्यक्ति बढ़ता है, बूढ़ा नहीं होता। जैसे–जैसे आपके जीवन में वर्ष जुड़ते हैं, 'योग' द्वारा आप अपने वर्षों को अर्थपूर्ण बना सकते हैं। जीवन में विश्वास, आत्म सम्मान और गरिमा भरने के लिए, यौगिक क्रियाओं, आसन, मुद्रा व प्राणायाम का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे मन शुद्ध होता है, अतिरिक्त शक्ति प्राप्त होती है और आत्मिक शान्ति मिलती है।

- सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे सकारात्मक ढंग से प्रभावित होता है और शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए योग क्रियाएं व योगासन बहुत लाभदायक हैं। आसनों से ग्रंथियों, पेशियों, अस्थिबन्धों और स्नायु का व्यायाम होता है जिससे वे स्वस्थ रहते हैं। यौगिक क्रियाओं और आसनों का लक्ष्य इस भौतिक शरीर को आत्मा के निवास के लिए उपयुक्त स्थल बनाना है।

यूनिटांत प्रश्न

1. यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं की आवश्यकता तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं से क्या तात्पर्य है? किन्हीं दो के विषय में सचित्र वर्णन कीजिए।
3. पवनमुक्त श्रेणी–1 की सभी क्रियाओं का नाम बताते हुए किन्हीं तीन पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं वे सभी क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों तथा उनके संचालन के लिए, योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती हैं और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।

2. मानसिक स्वास्थ्य यौवन को लंबे समय तक बनाये रखने और व्यक्ति को ओजस्वी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7.2

- 1. प्रार्थना करने से आसपास का वायुमंडल शुद्ध तथा स्पन्दित होता है।
- 2. प्रार्थना से ध्यान लगाने में मदद मिलती है।

2. (i) उत्तानपादासन, (ii) उदराकर्षण
3. (i) शवासन (ii)मकरासन
4. (i) सिद्धासन, (ii)वज्रासन, (iii)पद्मासन

टिप्पणी

गतिविधि: चित्र देखकर निम्नलिखित योग अभ्यासों को पहचानिए और इनकी विधि एवं लाभों के बारे में लिखिए।

8

योग आसन

पिछले यूनिट में आप यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आप जान चुके हैं कि 'आसन' अष्टांग योग की तीसरी महत्वपूर्ण सीढ़ी है और आसन करने से पहले यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं करना अति आवश्यक होता है। सूक्ष्म क्रियाएं, योग आसन करने से पहले की, प्रारंभिक क्रियाएं हैं, जो शरीर को सही ढंग से आसन करने के लिए तैयार करती है। क्रियाओं के पश्चात आसनों का अभ्यास शारीरिक स्थिरता एवं दृढ़ता प्रदान करने के लिए किया जाता है। जिससे शरीर दृढ़ एवं स्वस्थ होता है। इस यूनिट में हम योग आसन, उनके विभिन्न प्रकार, महत्व एवं आवश्यकता का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप :

- आसन को परिभाषित कर सकेंगे;
- योगासनों की आवश्यकता और उनके महत्व को अभिव्यक्त कर सकेंगे;
- आसनों के प्रकार बता सकेंगे;
- सूर्यनमस्कार तथा अन्य आसनों के लाभ का विश्लेषण कर सकेंगे।

8.1 योगासन

सबसे पहले हम यह जानते हैं कि आसन है क्या? महर्षि पतंजलि द्वारा 'योग दर्शन' में आसन की बहुत ही सरल व्याख्या की गई है –

'स्थिर सुखमासनम् । (योग द0 2/46)

अर्थात निश्चल सुखपूर्वक बैठने का नाम 'आसन' है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि **'बिना हिले–डुले, स्थिरता के साथ, बिना किसी कष्ट के सुखपूर्वक एक ही शारीरिक स्थिति में बने रहना ही 'आसन' है ।'**

यह स्थिति एकाग्रता के लिए नितांत आवश्यक है । यहां यह बात जानना आवश्यक है कि हमारी जितनी एकाग्रता बढ़ेगी, उतनी ही कार्यक्षमता और कार्य कुशलता बढ़ती जायेगी । अतः जितना शरीर दृढ़ एवं स्वस्थ होगा, आसन में उतनी ही स्थिरता अधिक होगी । योगमय स्थिति में आसन 'योगासन' कहलाता है ।

आज समाज में ऐसी भ्रान्तियाँ जन्म लेती जा रही हैं कि लोग कुछ आसन व प्राणायाम करके अपने आपको योगी मानने लगते हैं और उन्हें योगी समझ लिया जाता है । लेकिन जैसा कि पिछले यूनिट अष्टांग योग में भी आप जान चुके हैं कि योगासन तो योग का एक अंग है ।

> योगी बनने के लिए योग के प्रथम अंग–यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह) और द्वितीय अंग नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर (प्राणिधान) का पालन करना अति आवश्यक है, इसके बाद ही अगले अंगों में जाना चाहिए ।

8.1.1 आसन एवं योग क्रियाओं में अंतर

जैसा कि आपको स्पष्ट किया जा चुका है कि यौगिक क्रियाएं आसन करने से पहले की प्रारंभिक क्रियाएं हैं । जिन्हें योग आसन करने से पूर्व किया जाता है । आइए, यहां समझते हैं कि आसन एवं योग क्रियाओं में अंतर क्या है?

यौगिक क्रियाएं – ये स्थायी स्थिति न होकर लगातार करने की क्रियाएं हैं, जिन्हें अपनी रूचि, सामर्थ्य एवं क्षमता के अनुसार करना चाहिए । क्रियाओं में किसी एक अवस्था विशेष पर पहुंचने व रुकने का आग्रह नहीं होता अपितु अपनी क्षमतानुसार जितना हो सके, करना होता है ।

हठयोग की विचारधारा के अनुसार किसी भी विशेष मुद्रा व स्थिति एवं अवस्था में पहुंचना और निश्चित समय के लिए स्थिर होकर बिना कष्ट के रहना 'आसन' कहलाता है । इसमें अभ्यास करने वाले की स्थिति, रुचि, अवस्था, क्षमता को आधार ना बनाकर आसन तक पहुँचने एवं बने रहने पर बल दिया जाता है ।

टिप्पणी

घेरण्ड ऋषि ने आसनों के बारे में लिखा है –

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव–जन्तवः।
चतुरशीति लक्षानि शिवेनाभिहिलानि च।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासन शुभम।।

अर्थात संसार में जितने जीवों की योनियां हैं उतने ही आसन हैं। जीवयोनियां 84 लाख मानी गई हैं अतः आसन भी 84 लाख हैं। इनमें 84 आसन श्रेष्ठ माने गये हैं। **इनमें भी 32 आसन अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझने चाहिए।**

8.1.2 योगासनों का महत्व एवं आवश्यकता

शारीरिक रुप से स्वस्थ रहने के लिए शारीरिक क्रियाएं या व्यायाम आवश्यक है। जैसे टहलना, दौड़ना, तैरना, खेलना, साइकिल चलाना, आधुनिक समय में जिम जाना, आदि। लेकिन प्राचीनकाल से ही योगासनों का अपना महत्व है, क्योंकि योगासनों का प्रभाव विशिष्ट रुप से शरीर के अंगों व प्रत्यंगों पर सकारात्मक रुप से पड़ता है। जिससे अभ्यास करने वाला ना केवल शारीरिक रुप से स्वस्थ रहता है बल्कि मानसिक व आध्यात्मिक रुप से भी स्वस्थ रहता है। योगासन करने के मुख्य लाभ इस प्रकार हैं –

- संपूर्ण शरीर में ऊर्जा का संचार होता है।
- शरीर की अस्थिरता एवं आलस्य दूर होता है।
- शारीरिक थकावट कम होती है और मानसिक तनाव दूर होता है।
- योगासन शरीर को दिव्यता प्रदान करते हैं।
- योगासन शरीर में अंतःस्रावी ग्रंथियों को सुप्रभावित करते हैं, जिससे हारमोनल विकार दूर होते हैं।
- योगासन श्वास–प्रश्वास की क्रिया को नियमित करते हैं।

अतः आप जान गये होंगे कि योगासनों से शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन प्राप्त होता है और स्वस्थ रहने के लिए योगासन परम आवश्यक है।

गुरुपदिष्टमार्गेण योगमेव समभ्यसेत्।

अर्थात योग की सिद्धि गुरुकृपा और उपदिष्ट मार्ग से ही होती है। अतः योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास योग गुरु के दिशानिर्देशन में ही किया जाना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 8.1

1. महर्षि पतंजलि ने आसन के बारे में क्या सूत्र दिया है?

   .....

   .....

   .....

2. यौगिक सूक्ष्म क्रिया और आसन में एक अंतर बताइए।

   .....

   .....

   .....

3. योगासन करने का एक मुख्य लाभ लिखिए।

   .....

   .....

   .....

8.2 सूर्य नमस्कार

यह निश्चित योगासनों का एक समूह है, जिसे एक निश्चित क्रम में किया जाता है।

सूर्य नमस्कार करने की विधि

प्रथम स्थिति : सूर्य के सम्मुख खड़े होकर नमस्कार की मुद्रा में हाथों को वक्ष स्थल के सामने रखें।

द्वितीय स्थिति : श्वास अंदर भरकर सामने से हाथ खोलते हुए पीछे की ओर ले जाएं। आसमान की ओर देखें। कमर को यथा शक्ति पीछे की ओर झुकाएं।

तृतीय स्थिति : श्वास बाहर निकालकर हाथों को पीछे से सामने की ओर झुकाते हुए पैरों के पास जमीन पर टिका दें। प्रयास करें कि हथेलियों को भी भूमि से स्पर्श कराया जा सके और सिर को घुटनों से लगाया जा सके।

चतुर्थ स्थिति : नीचे की ओर झुकते हुए हाथों की हथेलियों को छाती के दोनों ओर टिकाएं। बायां पैर उठाकर पीछे की ओर भुजंग आसन की स्थिति में ले जाएं और दायां पैर दोनों हाथों के बीच रहे। घुटना छाती के सामने व पैर की एड़ी जमीन पर टिकी रहे। श्वास अंदर भरकर आकाश की ओर देखें।

चित्र 8.1: सूर्यनमस्कार

पंचम स्थिति : श्वास बाहर निकालकर दाहिने पैर को अब पीछे ले जायें, गर्दन व सिर दोनों हाथों के बीच में रहें। नितम्ब व कमर को उठाकर तथा सिर को झुकाकर नाभि को देखें।

षष्टम स्थिति : हाथों व पैरों के पंजों को स्थिर रखते हुए छाती व घुटनों को भूमि पर स्पर्श करें। दोनों हाथ दोनों पैर, दोनों घुटने, छाती व सिर से आठ अंग भूमि पर स्पर्श करते हैं तो यह साष्टांगासन कहलाता है। श्वास–प्रश्वास सामान्य रखें।

सप्तम स्थिति : श्वास अंदर भरकर छाती को ऊपर उठाते हुए आसमान की ओर देखें यह भुजंगासन की स्थिति है।

अष्टम स्थिति : विधि संख्या पंचम की तरह।

नवम स्थिति : विधि संख्या चतुर्थ की तरह। लेकिन इसमें बायें पैर को दोनों हाथों के बीच में रखें।

दशम स्थिति : विधि संख्या तृतीय की तरह।

एकादश स्थिति – विधि संख्या द्वितीय की तरह।

द्वादश स्थिति – विधि संख्या प्रथम की तरह।

सूर्यनमस्कार के लाभ :

हमने 'सूर्यनमस्कार' की सभी स्थितियों के विषय में जाना। आइए, अब जानते हैं कि सूर्यनमस्कार के लाभ क्या हैं –

- सूर्यनमस्कार एक पूर्ण व्यायाम है जो संपूर्ण शरीर को पूर्ण आरोग्यता प्रदान करता है।
- यह शरीर के सभी अंगों, प्रत्यंगों को बलिष्ठ व निरोगी बनाता है।
- मेरुदण्ड व कमर को लचीला बनाता है और वहां आए विकारों को दूर करता है।
- यह उदर, आंत्र, आमाश्य, अग्न्याश्य, हृदय और फेफड़ों को स्वस्थ करता है।
- समस्त शरीर में रक्त का संचार, सुचारू रुप से करता है और रक्त की अशुद्धियों को दूर कर चर्म रोगों का विनाश करता है।
- शरीर के सभी अंगों की मांसपेशियां पुष्ट एवं सुंदर होती हैं।
- सूर्यनमस्कार बल, तेज व ओज की वृद्धि करता है, मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

यूनिटगत प्रश्न 8.2

1. सूर्यनमस्कार से आपका क्या अभिप्राय है?

   .....

टिप्पणी

.....

.....

.....

2. सूर्यनमस्कार में कुल कितनी स्थितियां हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3. सूर्यनमस्कार की सप्तम स्थिति किस आसन की स्थिति है?

.....

.....

.....

.....

8.3 आपने योगासन के विषय में जाना। आइए, अब यह जानते हैं कि योगासनों को कितनी श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ;

1. **बैठने की स्थिति में किए जाने वाले आसन**

   सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन, सिहांसन, गोमुखासन, स्वस्तिकासन, हनुमानासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, **कुक्कुटासन** आदि।

2. **खड़े होने की स्थिति में किए जाने वाले आसन**

   गरुड़ासन, ताड़ासन, वृक्षासन, पाद–दृष्टमोत्तानासन, नटराजासन, चन्द्रासन, उत्कटआसन आदि।

3. **पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन**

   उत्तानपादासन, सर्वांगासन, हलासन, कर्णपीड़ासन, बाल–गर्भासन आदि

4. **पेट के बल लेटकर बेकवर्ड बैन्डिंग में आसन**

   भुजंगासन, धनुरासन, मकरासन, शलभासन आदि।

5. **आगे की ओर झुककर किए जाने वाले आसन**

   पश्चिमोत्तानासन, पादहस्त आसन आदि।

6. खड़े होकर Twist (मोड़कर/वक्राकार) करने वाले आसन

कटि–चक्रासन, त्रिकोणासन, तिर्यक ताड़ासन

7. संतुलन रखने वाले आसन।

वृक्षासन, गरुड़ासन, ताड़ासन, मयूरासन और कुक्कुटासन

आइये, कुछ मुख्य आसनों की अभ्यास विधि एवं लाभ के विषय पर चर्चा करें –

1. ताड़ासन

चित्र 8.2: ताड़ासन

विधि

- खड़े होकर दोनों पैर एक साथ, हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर, पलटकर सर के ऊपर रखिए;
- सामने दीवार में एक बिंदु निश्चित कीजिए, जिसमें अपनी चेतना को केन्द्रित रखते हुए, श्वास लेते हुए, हाथों को ऊपर उठाइये; और सीधा कीजिए; एड़ी उठाते हुए पंजों के बल खड़े होने का प्रयास कीजिए;
- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे नीचे आइए। इस क्रिया को 5 बार कीजिए। खिंचाव अनुभव कीजिए, विश्राम कीजिए;
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

2. कटि–चक्रासन

चित्र 8.3: कटि–चक्रासन

विधि

- दोनों पैरों को एक फुट तक खोलकर सीधे खड़े हो जाएं।
- दोनों हाथों को कंधे की ऊँचाई तक लाते हुए सामने ले आयें।
- इस अवस्था में दोनों हाथों की हथेलियां आमने–सामने रहेंगी।
- इसके पश्चात कमर को मोड़ते हुए बांई ओर घूमें।
- इस अवस्था में बायां हाथ मोड़कर कमर पर लगाएं और दायां हाथ आधा मोड़कर अपने वक्षस्थल पर लगाएं।
- इसी प्रकार दूसरी तरफ से इसका अभ्यास करें।

लाभ

- यह आसन भी शंख प्रक्षालन की क्रिया का महत्वपूर्ण आसन है।
- इसके अभ्यास से कमर रबड़ की तरह लचीली हो जाती है।
- कंधे, बाजू व कमर पतली हो जाती है।
- महिलाओं व मधुमेह रोगियों के लिए अच्छा आसन है।

3. सिद्धासन

चित्र 8.4: सिद्धासन

विधि

- जमीन पर दरी, चटाई अथवा कंबल बिछाकर बैठ जाएं और पैर आगे की ओर फैला लें।
- अब बायां पाँव, घुटने से मोड़ें और हाथों से पकड़ते हुए उसका तला, दाईं जंघा से मिला दें।
- इसी प्रकार दायां पांव घुटने से मोड़ें और उसे बाईं ऐड़ी के जोड़ पर, जननेन्द्रियों के समीप रखें।
- दोनों हाथ (ज्ञान मुद्रा) घुटनों पर रखें।
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से सभी नस–नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।
- मस्तिष्क की एकाग्रता बढ़ती है और दिमाग तेज़ होता है।
- जोड़ों का कड़ापन (विशेषकर कमर, कूल्हे और घुटने) दूर होता है।

- मेरुदण्ड में रक्त का संचार सुगमता से होता है।

4. पद्मासन

विधि

- दाहिने पांव को बायें जांघ पर रखें;
- अब बायें पांव को उठाकर दांयी जांघ पर रखें;
- कमर, गर्दन और सिर सीधा रखें;
- दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखें।

चित्र 8.5: पद्मासन

लाभ

- पाचन शक्ति बढ़ाता है;
- जोड़ों का कड़ापन दूर होता है, एकाग्रता बढ़ती है;
- इसके प्रभाव से शरीर कमल के समान खिल जाता है, यानि स्वस्थ हो जाता है।

5. वज्रासन

चित्र 8.6: वज्रासन

विधि

- दोनों पाँव घुटने से मोड़ते हुए बैठ जाएं;
- पैर का अग्र भाग नितम्ब (कूल्हे) के नीचे, इस प्रकार रखें कि ऐड़ी ऊपर की ओर रहे और दोनों पंजे आपस में मिले रहें;
- दोनों हाथ जंघा पर रखें;
- कमर और गर्दन बिल्कुल सीधा रखें;

टिप्पणी

- आँखें खुली रखें और सामने देखें;
- श्वास सामान्य रखें।

लाभ

- जिन बुर्जुगों को अपच, पेट में भारीपन और बदहज़मी की शिकायत रहती हों उन्हें यह आसन भोजन के तुरंत बाद अवश्य करना चाहिए;
- इस आसन के नियमित अभ्यास से शरीर वज्र के समान कठोर हो जाता है;
- गठिया, कमर और घुटनों के रोग के लिए यह बहुत लाभकारी है।

वज्रासन ही अकेला एक आसन है जो भोजन के तुरंत बाद किया जाता है।

6. शशांकासन

विधि

- सर्व प्रथम बज्रासन में बैठना चाहिए।
- दोनों पैरों के घुटनों को एक–दूसरे से दूर फैलाएं।
- इस प्रकार बैठें कि पैरों के अंगूठे एक–दूसरे से मिले हों।

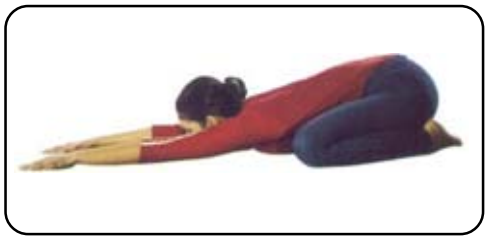

चित्र 8.7: शशांकासन

- दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर रखें।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए दोनों हथेलियों को सामने की ओर स्वयं से दूर ले जाएं।
- आगे की ओर झुकते हुए ठुड्डी को जमीन पर रखें।
- दोनों भुजाओं को समानांतर रखें।
- सामने की ओर देखें और इस स्थिति को बनाए रखें।
- श्वास को अंदर खींचते हुए पीछे की ओर आ जाएं।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए ब्रजासन में वापस लौट आएं।
- पैरों को पीछे खींचकर विश्रामासन में वापस जा जाएं।

लाभ

- शशांकासन का अभ्यास तनाव, क्रोध आदि को कम करने में सहायक है।
- यह जनन अंग संबंधी व्याधि एवं कब्ज से मुक्ति दिलाता है एवं पाचन क्रिया संबंधी व्याधि व पीठ दर्द से छुटकारा दिलाता है।

सावधानियां

- अधिक पीठ दर्द में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- घुटनों से संबंधित ऑस्टियोआर्थराइटिस से पीड़ित व्यक्तियों को इस अभ्यास को सावधानीपूर्वक करना चाहिए अथवा वज्रासन से बचना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए।

7. सिहांसन

चित्र 8.8: सिंहासन

विधि

- सांस भर कर रोकें;
- जिह्वा को अधिक–से–अधिक बाहर की ओर निकालते हुए कमर को आगे की ओर झुकाएं;
- शेर जैसी स्थिति में आने के लिए वज्रासन की स्थिति में बैठकर दोनों हथेली जमीन पर टिकाएं;
- ध्यान रहे कि आपकी गर्दन बिल्कुल सीधी हो;
- जोर से दहाड़े;

- पूर्व स्थिति में बैठ जाएं;
- इस क्रिया को तीन बार दोहराएं;
- तीन बार दोहराने के बाद गले को दोनों हाथों से मलें;
- मुंह में आई लार को अंदर निगल लें।

लाभ

- गले/कंठ के विकार दूर होते हैं;
- स्वर साफ़ व स्पष्ट होता है;
- गले की मांसपेशियां सुदृढ़ होती हैं।

8. गोमुखासन

चित्र 8.9: गोमुखासन

विधि

- बायीं टांग घुटने से मोड़कर उसी पाद तल पर बैठें और दाहिनी टांग को मोड़कर बायीं टांग पर रखें;
- दाहिनी भुजा को ऊपर से पीठ पर ऐसा मोड़ें कि उसका पिछला भाग कान को स्पर्श करे;
- कोहनी शिखा से सटी रहे;
- पीठ पर बायें हाथ से दाहिने हाथ की तर्जनी पकड़ें;

- इसी प्रकार दूसरी ओर से इसका विपरीत करें।

लाभ

- फेफड़े संबंधी बीमारियों में उपयोगी है;
- दमा तथा क्षय रोगियों को अवश्य करना चाहिए;
- इसके अलावा कंधों में मजबूती आती है;
- कोहनी, जंघा एवं घुटने, टखनों के लिए अच्छा है;
- जिनके घुटनों में दर्द रहता हो, उनको इसका अभ्यास निरंतर करना चाहिए।

9. अर्ध उष्ट्रासन

विधि

चित्र 8.10: अर्ध उष्ट्रासन

- सर्वप्रथम विश्रामासन में बैठ जाएं।
- पुनः दंडासन की स्थिति में आ जाएं।
- पैरों को मोड़ते हुए एड़ियों पर बैठ जाएं।
- जांधों को सटाकर रखें एवं अंगूठे एक–दूसरे से सटे हों।
- हाथों को घुटनों पर रखें।
- सिर एवं पीठ को बिना झुकाए सीधा रखें।
- यह स्थिति वज्रासन कहलाती है।
- घुटनों पर खड़े हो जाएं।
- हाथों को कमर पर इस प्रकार रखें कि अंगुलियां जमीन की ओर हों।
- कोहनियों एवं कंधों को समानांतर रखें।
- अब सिर को पीछे की तरफ झुकाते हुए ग्रीवा की मांसपेशियों को खींचें।
- श्वास अंदर खींचें एवं धड़ को जितना संभव हो सके झुकाएं।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए शिथिल हो जाना चाहिए।
- पुनः जांघों को जमीन से लंबवत रखें।
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस मुद्रा में 10–30 सेंकंड तक रुकें।
- श्वास अंदर खींचते हुए सामान्य मुद्रा में वापस लौटते हुए वज्रासन में बैठ जाएं।
- पुनः विश्रामासन में शिथिल हो जाना चाहिए।

लाभ

- इस योगाभ्यास से पीठ और गर्दन की मांसपेशियां मजबूत होती हैं।
- कब्ज एवं पीठ दर्द से मुक्ति हमलती है।
- सिर एवं हृदय क्षेत्र में रक्त संचार बढ़ाता है।
- यह योगाभ्यास हृदय रोगियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, किंतु इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।

सावधानियां

- हर्निया एवं उदर संबंधी गंभीर व्याधि तथा आर्थराइटिस, चक्कर आना, स्त्रियों के लिए गर्भावस्था के समय में इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

10. उष्ट्रासन

विधि

- घुटनों को जमीन पर टिकाते हुए अपने दोनों पैरों के जांघ और पंजों को आपस में मिला लीजिए, पंजों को बाहर की तरफ रखते हुए जमीन पर फैला दीजिए।
- घुटनों और पंजों के बीच एक फुट की दूरी रखते हुए घुटनों के बल खड़े हो जाएं।
- श्वास लेते हुए पीछे की ओर झुकें।
- इस बात का ध्यान रखें कि पीछे ढुकते समय गर्दन को झटका न लगे।

चित्र 8.11: उष्ट्रासन

- पीछे की ओर झुकें और धीरे–धीरे दाहिने हाथ से दाहिनी एड़ी और बायें हाथ से बाईं एड़ी को पकड़ने का प्रयास करें।
- अंतिम स्थिति में जांघ को जमीन पर उर्ध्वाकार (लंबवत्) रखते हुए सिर को हल्का सा पीछे की ओर खींचकर रखें।
- यथासंभव पूरे शरीर का भार अपनी भुजाओं और पैरों पर होना चाहिए।
- इसका अभ्यास सर्वांगासन के बाद करना चाहिए इस मुद्रा में उचित लाभ होता है।

लाभ

- उष्ट्रासन दृष्टिदोष में अत्यंत लाभदायक है।
- यह पीठ और गले के दर्द से आराम दिलाता है।
- यह उदर और नितंब की चर्बी को कम करने में सहायक है।

- पाचन क्रिया संबंधी समस्याओं के लिए यह अत्यंत लाभदायक है।

सावधानियां

- उच्च रक्तचात, हृदय रोगी, हर्निया के मरीजों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

11. अर्धमत्स्येन्द्रासन

चित्र 8.12: अर्धमत्स्येन्द्रासन

विधि

- सर्वप्रथम सामने पैर फैलाकर बैठ जाइए। इसके पश्चात बायें पैर को घुटने से मोड़ते हुए दाँयी तरफ से लाते हुए नितम्बों के पास स्थित करें;
- फिर दायें पैर को बायें घुटने के ऊपर से लाते हुए घुटने के पास रखें;
- ध्यान रहे कि पंजे घुटने से आगे न जाएं;
- बायें हाथ को कंधें से घुमाते हुए दाएं पैर के ऊपर से इस प्रकार से लायें कि दायें पैर का अंगूठा पकड़ लें;
- फिर दायें हाथ को पीछे से घुमाते हुए नाभि को स्पर्श करने का प्रयत्न करें;
- ठीक इसी प्रकार विपरीत दिशा में भी करें।

लाभ

- यह आसन विशेष रुप से मधुमेह के रोगियों के लिए उपयोगी है।

टिप्पणी

- इसके निरंतर अभ्यास से पेन्क्रियाज ग्लेण्ड की मसाज हो जाती है जिससे इंसुलिन बनने लगती है जो कि मधुमेह के रोगियों के लिए अति आवश्यक है;
- इससे पेट के आंतरिक अवयवों की भी अच्छी तरह मसाज हो जाती है, जिससे वे भी अच्छी तरह कार्य करने लगते हैं;
- अपच को दूर करता है;
- कब्ज, वायु विकार आदि रोग इसके निरंतर अभ्यास से दूर होते हैं;
- पेट में कई प्रकार के कृमि और कीड़े होते हैं, इसके निरंतर अभ्यास से ये कृमि और कीड़े अपने आप ही मर जाते हैं;
- इसके अलावा, कमर लचीली व पतली हो जाती है और पेट पर से अत्यधिक चर्बी कम हो जाती है।

12. पश्चिमोत्तानासन

चित्र 8.13: पश्चिमोत्तानासन

विधि

- दोनों पैरों को सामने लाते हुए बैठ जाएं।
- दोनों एड़ी पंजे मिले रहेंगे, तत्पश्चात सांस छोड़ते हुए आगे झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लें;
- अब माथे को घुटनों से लगाएं व दोनों कोहनियां जमीन पर लगाएं।

लाभ

- इस आसन के निरंतर अभ्यास से मेरुदंड लचीला होता है।
- रक्त संचार भली–भांति होता है;
- इसके अभ्यास के समय कमर व पिंडलियों की मांसपेशियों में खिंचाव आता है जिसके शरीर का निचला हिस्सा भारी होता है, उन्हें इसका निरंतर अभ्यास करना चाहिए;

- कमर पतली तथा सुडौल होती है;
- यह आसन चर्मरोग व शारीरिक दुर्गन्ध को दूर करता है;
- चेहरा कांतिमान एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है;
- इसके अभ्यास से पेट के कीड़े (कृमि) मर जाते हैं;
- रक्त की शुद्धि होती है।

नोट –यह आसन कमर दर्द व गर्दन दर्द वालों को नहीं करना चाहिए।

13. शवासन

चित्र 8.14: शवासन

विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाना चाहिए।
- हाथों और पैरों को आरामदायक स्थिति में फैलाकर रखें।
- आंखें बंद होनी चाहिए।
- पूरे शरीर को अचेतन अवस्था में शिथिल छोड़ दें।
- नैसर्गिक श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करें।

इस अवस्था में तब तक रहें, जब तक कि पूर्ण विश्रान्ति एवं चित शान्त न हो जाए।

लाभ

- सभी प्रकार के तनावों से मुक्त करता है।
- शरीर तथा मस्तिष्क दोनों को आराम प्रदान करता है।
- पूरे मन तथा शरीर तंत्र को विश्राम प्रदान करता है।

टिप्पणी

- बाहरी दुनिया के प्रति लगातार आकर्षित होने वाला मन अंदर की ओर गमन करता है। इस तरह धीरे–धीरे महसूस होता है कि मस्तिष्क स्थिर हो गया है।

  अभ्यासकर्ता बाहरी वातावरण से अलग होकर शांत बना रहता है।
- तनाव एवं इसके परिणामों के प्रबंधन में यह बहुत लाभदायक होता है।

14. उत्तानपाद आसन

विधि

- जमीन पर आराम से लेट जाएं, पैरों की स्थिति सीधी हो और हाथों को बगल में रखें।
- श्वास लेते हुए घुटनों को बिना मोड़े धीरे–धीरे अपने दोनों पैरों को ऊपर उठाएं और 30 डिग्री का कोण बनाएं।
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस अवस्था में कुछ देर ठहरें।

चित्र 8.15: उत्तानपाद आसन

- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे अपने दोनों पैरों को नीचे लाएं और जमीन पर रखें।
- इस आसन को एक बार और दोहराएं।

लाभ

- यह आसन नाभि केंद्र (नाभिमणिचक्र) में संतुलन स्थापित करता है।
- यह उदर पीड़ा, वाई (उदर–वायु), अपच और अतिसार (दस्त) को दूर करने में सहायक होता है।
- यह उदर की मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करता है।
- यह आसन घबराहट और चिंताओं से उबरने में सहायक है।
- यह श्वसन क्रिया को उन्नत करता है और फेफड़े की क्षमता में वृद्धि करता है।

सावधानियां

- गहरे तनाव से पीड़ित मरीज बिना श्वास रोके बारी–बारी से अपने पैरों का उपयोग करते हुए इस आसन का अभ्यास करें।

15. अर्धहलासन

चित्र 8.16: अर्धहलासन

विधि

- उत्तान अवस्था में बैठ जाएं, दोनों हाथ जांघों के बगल में रखें और हथेलियां जमीन पर हों।
- घुटने को बिना मोड़े अपने पैरों को धीरे–धीरे ऊपर उठाएं और 30 डिग्री पर लाकर रोक दें।
- थोड़ी देर इसी अवस्था में बने रहें, कुछ देर बाद पुनः पैरों को धीरे–धीरे ऊपर उठाएं और 60 डिग्री पर रोक दें।
- इसके बाद थोड़ा रुककर पुनः पैरों को ऊपर उठाते हुए 90 डिग्री पर लाकर रोक दें, यह हलासन की उचित मुद्रा है।
- इस अवस्था में नितंब से कंधे की स्थिति खींची हुई रहेगी।

  इस अवस्था में तब तक रहें जब तक आप रह सकते हैं।

  अपने पैरों को 90 डिग्री की स्थिति से धीरे–धीरे वापस जमीन पर लाएं। ध्यान रहे वापसी की स्थिति में सिर जमीन से ऊपर न उठे।

लाभ

- यह आसन बदहज़मी और कब्ज़ियत से छुटकारा दिलाता है।
- यह आसन मधुमेह, बवासीर और गले संबंधी समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक है।

टिप्पणी

- यह आसन गहरे तनाव से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, परंतु उन्हें बड़ी सावधानीपूर्वक यह आसन करना चाहिए।

सावधानियां

- पीठ के निचले हिस्से के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को दोनों की सहायता से इस आसन को नहीं करना चाहिए।
- उदर में जख्म होने, हर्निया आदि से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

16. सर्वांगासन

चित्र 8.17: सर्वांगासन

विधि

- कमर के बल फर्श पर सीधा लेट जाएं।
- श्वास भरते हुए, धीरे–धीरे दोनों पैर एक साथ उठाएं।
- इसी अवस्था में धीरे–धीरे कूल्हे और कमर को उठाने की भी चेष्टा करें, जब तक कि पाँव बिल्कुल सीधे न हो जाएं।

- कमर दोनों हाथों से पकड़ कर रखें।
- श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे पैर वापस नीचे ले आएं।

लाभ

- यह आसन मस्तिष्क की ओर रक्त संचार बढ़ाता है। जिससे स्मरण शक्ति बढ़ती है। मानसिक विकार ठीक होते हैं।
- मेरुदंड को लचीला बनाता है और अधिक समय तक युवावस्था कायम रखने में मदद करता है।
- पेट की चर्बी कम करता है और कमर और कूल्हे सुडौल बनाता है।

हृदय रोगियों, स्पॉन्डिलाइट्स (spondylitis) और उच्च एवं निम्न रक्तचाप के रोगियों के लिए यह आसन उपयुक्त नहीं है।

मुख्य आसनों का वर्णन नीचे किया जा रहा है –

17. शीर्षासन

चित्र 8.18: शीर्षासन

विधि

- जमीन पर बैठकर हाथों व कोहनियों को एक–दूसरे से मिलाकर गस्सा बना लें।
- इसी गस्से में अपना सिर रखकर कोहनियों को सिर के पास रखें।

टिप्पणी

- अब धीरे–धीरे शरीर को ऊपर उठाएं और पूरा शरीर खड़ा कर दें।
- शरीर का सारा भार बांहों और कोहनियों पर रखें।
- आंख अधखुली रखें। शीर्षासन साधने में महीने और साल भी लग सकते हैं। इसे किसी अनुभवी योगाचार्य से सीखकर ही करना चाहिए।
- इसके गलत अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोग हो सकते हैं।
- यदि दोनों नासिका बंद हों तो शीर्षासन नहीं करना चाहिए।
- यह हृदय रोगियों और कब्ज वालों को नहीं करना चाहिए।

लाभ

- शीर्षासन आसनों का राजा है। इस आसन से सभी रोग प्रभावित होते हैं।
- रक्त संचार ठीक करता है।
- नेत्र संबंधी दोष, बाल पकना, बाल झड़ना, प्रमेय, स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी बीमारियों के लिए विशेष लाभदायक है।
- नजला–जुकाम और मस्तिष्क संबंधी रोग ठीक हो जाते हैं।
- पागलपन भी ठीक हो जाता है। इससे चेहरे पर कांति तथा नेत्रों में तेज आ जाता है। इस आसन के बाद शवासन अवश्य करें।

18. मकरासन

चित्र 8.19: मकरासन

विधि

- जमीन पर पेट के बल लेट जाएं।
- दोनों हाथों की हथेलियों को एक–दूसरे के नीचे ऊपर सामने जमीन पर टिकाएं या सिर की तरफ ले आएं व ऊपर ठोड़ी या माथे को टिका दें।

- दोनों पैरों को 60–90 सें.मी. का अंतर देते हुए खोल दें।

नोट – ध्यान रहे कि दोनों एड़ियों की दिशा अंदर की तरफ आमने–सामने होगी।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से थकान दूर होती है।
- पेट के लिए भी यह आसन अच्छा होता है।
- इससे शरीर के अंदर सूक्ष्म शक्ति की वृद्धि होती है और संपूर्ण शरीर मकर के समान ही दृढ़ हो जाता है।
- इसके अभ्यास से मन में नम्रता का भाव अधिक उत्पन्न होता है।
- इस आसन के अभ्यास से मानसिक एवं शारीरिक थकान दूर होती है।

19. भुजंगासन

चित्र 8.20: भुजंगासन

विधि

- जमीन पर सीधा लेट जाएं और अपना मुंह नीचे, जमीन की ओर रखें।
- दोनों पाँव मिलाकर रखें और हथेली जमीन पर कंधों के पास रखें।
- श्वास भरते हुए, हथेली से जमीन पर दबाव डालते हुए नाभि से ऊपर का भाग, जहां तक संभव हो उठाएं।

- अपनी गर्दन और कमर पीछे की ओर ले जाएं।
- श्वास छोड़ते हुए सामान्य अवस्था में आएं।

लाभ

- इस आसन से कमर दर्द दूर होता है और कमर के दूसरे रोगों (cervical, lumbar spondylitis) में लाभ मिलता है।
- पेट के रोग जैसे कब्ज, अपच, वायु–विकार दूर होते हैं और भूख बढ़ती है।
- इससे मोटापा भी दूर होता है।
- मेरुदण्ड सशक्त होता है।

नोट: हर्निया के रोगी को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

20. धनुरासन

चित्र 8.21: धनुरासन

विधि

- पेट के बल लेट जाएं;
- सिर धीरे–धीरे ऊपर की ओर उठाते हुए दोनों हाथों से अपने पैरों के पंजों को पकड़ें;
- धीरे–धीरे अब अपने शरीर को धनुष की आकृति में तानें;
- जितना आसानी से धनुषकार हो सकते हैं, उतना करने का प्रयास करें।

लाभ

- कमर दर्द, सरवाइकल, स्पॉन्डिलाइट्स (spondylitis) में लाभ मिलता है;
- पेट के रोग दूर होते हैं;

- मोटापा दूर करता है। मेरूदण्ड को सुदृढ़ एवं लचीली बनाता है।

21. शलभासन

चित्र 8.22: शलभासन

विधि

- जमीन पर पेट के बल लेट जाएं और अपना माथा जमीन से लगाएं।
- दोनों हाथ धड़ के साथ और जंघाओं के नीचे रखें।
- दोनों पाँव मिला लें।
- श्वास भरते हुए धीरे–धीरे दायाँ पाँव उठाएँ और श्वास बाहर निकालते हुए वापस जमीन पर ले आएं।
- इसी प्रकार बाएं पाँव से करें (एकपादशलभासन)।
- बाद में यही क्रिया दोनों पैरों से एक साथ करें (द्विपादशलभासन)।

लाभ

- यह आसन कमर और मेरुदंड को लचीला बनाता है और छाती चौड़ी होती है।
- इससे भूख बढ़ती है और पेट के कई रोग जैसे गैस, अम्लता, भूख न लगना, अपच, पेट में गड़गड़ाहट होना आदि दूर होते हैं।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से नाभि अपनी जगह रहती है।
- इससे पेट, जंघा और पैरों की मांस–पेशियां सशक्त होती हैं।
- इससे जलोदर रोग (Dropsy) ठीक हो जाता है और भगंदर (fistula) रोग में भी लाभ होता है।

22. नौकासन

चित्र 8.23: नौकासन

विधि

- पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को सिर से आगे लाकर आपस में मिला लें।
- दोनों एड़ी पंजे आपस में मिले रहेंगे।
- इसके पश्चात् धीरे–धीरे सांस लेते हुए शरीर के आगे के हिस्से और पैरों को इतना ऊपर ले जाएं कि शरीर का पूरा भार पेट पर आ जाएं।
- इस अवस्था में शरीर नौका के समान दिखाई देगा, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

लाभ

- इसके निरंतर अभ्यास से नस–नाड़ियों में रक्त प्रवाह तेज हो जाता है।
- मांसपेशियाँ आदि लचीली हो जाती हैं।
- फेफड़ों में ऑक्सीजन का प्रवाह अत्यधिक मात्रा में होता है। जिससे श्वास संबंधी बीमारियां दूर होती हैं।
- कमर दर्द व गर्दन दर्द वालों के लिए यह उत्तम आसन है।
- इसके निरंतर अभ्यास से पेट की अत्यधिक चर्बी कम हो जाती है।
- शरीर हल्का व फुर्तीला हो जाता है।

नोट : अल्सर, कोलाइटिस के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

23. मयूरासन

चित्र 8.24: मयूरासन

विधि

- दोनों एड़ी पंजे मिलाकर दोनों घुटनों को फैलाकर घुटनों को जमीन पर रखते हुए एड़ी पर बैठ जाएं।
- फिर दोनों हाथों के बीच चार अंगुल का अंतर रखते हुए हथेलियों को जमीन पर घुटनों के पास स्थित करें।
- दोनों कोहनियों को आपस में मिलाते हुए नाभि स्थान पर रखें।
- फिर थोड़ा आगे झुकते हुए दोनों पैरों को जमीन से ऊपर उठा दें।

नोटः इस अवस्था में संपूर्ण शरीर का भार पेट पर रहेगा। धीरे–धीरे शरीर का संतुलन बनाते हुए दोनों पैरों को सीधा करें तथा सामने की ओर देखें।

लाभ

- इस आसन के निरंतर अभ्यास से अपच, कब्ज और वायु विकार की शिकायत दूर हो जाती है।
- पेट के आंतरिक अवयवों की अच्छी मसाज हो जाती है।
- भूख तेज हो जाती है।
- अधिक गरिष्ठ अन्न को भी आसानी से पचा लेने की क्षमता आ जाती है।

24. कुक्कुटासन

चित्र 8.25: कुक्कुटासन

विधि

- सर्वप्रथम पद्मासन लगा लें। तत्पश्चात दोनों हाथों की जंघाओं और दोनों पांव की पिंडलियों के बीच से इतना बाहर निकाल लें कि कोहनी का हिस्सा बाहर आ जाए।
- दोनों हाथों को जमीन पर लगा दें और हाथों के बल सारे शरीर को उठा लें। इसका यथासंभव अभ्यास करें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से शरीर के ऊपरी हिस्से जैसे हाथों की अंगुलियां, कलाई, बाजू, कोहनियों एवं कंधों में असीम बल आ जाता है।
- इससे शरीर में मजबूती व दृढ़ता आती है।
- इसके निरंतर अभ्यास से भूख बहुत बढ़ती है।
- इसके अभ्यास से कुक्कुट (मुर्गे) की भांति प्रातःकाल ही निद्रा खुल जाती है।
- लिखते समय जिनके हाथों में कंपन हो अथवा थक जाते हों, उन्हें भी यह आसन बहुत हितकर है।

25. गरुड़ासन

चित्र 8.26: गरुड़ासन

विधि

- सीधे खड़े होकर बाएं पैर की जंघा को दाएं पैर की जंघा पर रखते हुए घुटनों और पिंडलियों से एक पैर को दूसरे पैर पर लपेट लें;
- तत्पश्चात सीने के सामने दोनों बाजुओं को लाते हुए बांईं भुजा को दाईं भुजा पर रखते हुए आपस में लपेट लें;
- इस अवस्था में दोनों हाथ गरुड़ की चोंच के समान बन जाएंगे;
- फिर धीरे–धीरे नीचे झुकते हुए पैर के पंजों को जमीन पर रखने का प्रयत्न करें।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से जोड़ों का दर्द ठीक हो जाता है;
- गठिया के रोगियों को इसका अभ्यास नियमित करना चाहिए;
- जिनके शरीर में कंपन होती हो, उन्हें और पतले व्यक्तियों को इसके अभ्यास से लाभ मिलता है;
- इसके अभ्यास से बढ़ा हुआ अण्डकोष ठीक हो जाता है।

26. पवनमुक्तासन

चित्र 8.27: पवनमुक्तासन

विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लंबवत् लेटना चाहिए;
- दोनों घुटनों को मोड़ते हुए जांघों को वक्ष के ऊपर ले जाएं;
- दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में गूंथते हुए पैरों को पकड़ लें;
- ठुड्डी को घुटनों के नीचे ले जाएं;
- श्वास बाहर छोड़ते हुए सिर को तब तक ऊपर उठाएं जब तक कि ठुड्डी घुटनों से नहीं लग जाए। कुछ समय तक इस स्थिति में रुकें;
- यह अभ्यास पवनमुक्तासन कहा जाता है;
- सिर को वापस जमीन पर ले आएं;
- श्वास बाहर छोड़ते समय पैरों को जमीन पर ले आएं;
- अभ्यास के अंत में शवासन में आराम करें।

ध्यातव्य

- पैरों की गतिविधि के अनुसार श्वास–प्रश्वास को एक लय में लाना चाहिए।
- घुटनों को ललाट से स्पर्श करते हुए अनुभव करना चाहिए कि कटि प्रदेश में खिंचाव हो रहा है;
- आंखें बंद रखनी चाहिए और ध्यान कटि प्रदेश पर होना चाहिए।

लाभ

- कब्जियत दूर करता है;
- वात से राहत दिलाता है और उदर के फुलाव को कम करता है;
- पाचन क्रिया में भी सहायता करता है;
- गहरा आंतरिक दबाव डालता है, श्रोणि और कटिक्षेत्र मे मांसपेशियों, लिंगामेंट्स और स्नायु की अति जटिल समस्याओं का निदान करता है और उनमें कसावट लाता है;
- यह पीठ की मांसपेशियों और मेरु के स्नायुओं को सुगठित बनाता है।

सावधानियां

- उदर संबंधी व्याधि, हर्निया, साइटिका या तीव्र पीठ दर्द तथा गर्भावस्था समय इस अभ्यास को न करें।

28. चक्रासन

चित्र 8.28: चक्रासन

विधि

- **ज**मीन पर पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को नितम्बों के साथ सटाकर जमीन पर रखें;
- फिर दोनों हाथों की दोनों हथेलियों को कंधों के पीछे रखें;
- शरीर का बीच का हिस्सा (कमर को) ऊपर उठा दें;
- शरीर का पूरा भार दोनों हाथों और दोनों पैरों पर समान रूप से पड़ेगा;
- थोड़ी देर इसी स्थिति में रहकर वापस सीधा लेट जाएं;

टिप्पणी

नोट : शरीर को ऊपर उठाते समय गर्दन को ढीला छोड़ें अन्यथा गर्दन में मोच आने का डर रहेगा। आसन में स्थित होने पर भी गर्दन को ढ़ीला छोड़कर रखें जिससे कि वह नीचे की ओर झूलती रहे।

लाभ

- इस आसन को करने से मनुष्य का यौवन बना रह सकता है।
- इसका सीधा प्रभाव मेरूदंड पर पड़ता है, जिससे शरीर में इतना लचीलापन आता है कि शरीर रबड़ के समान हो जाता है।
- नाभि –मंडल भी स्वतः ही अपने स्थान पर आ जाता है।
- शरीर के अंदर 72864 नाड़ियों में स्थिरता आती है।
- कमर सुंदर तथा आकर्षक बनती है।

नोट : इस आसन का अभ्यास धीरे–धीरे करना चाहिए।

29. सुप्तवज्रासन

चित्र 8.29: सुप्तवज्रासन

विधि

- सबसे पहले वज्रासन में बैठ जाएं;
- फिर दोनों हाथों की हथेलियों को कमर के पीछे जमीन पर रखें;
- इसके पश्चात बाजू की कोहनियों को मोड़ते हुए धीरे–धीरे पीछे लेट जाएं;
- कंधे व गर्दन जमीन पर लग जाएंगे। तत्पश्चात दोनों हाथों की हथेलियों को मोड़ते हुए दोनों कंधों के नीचे रखें;

- फिर धीरे–धीरे सिर को ऊपर की तरफ इस तरह उठाएं कि चोटी वाला हिस्सा जमीन पर लग जाए;
- वापस आते हुए दोनों हाथों को दोनों जंघाओं पर रखें। इस अवस्था में दोनों घुटने आपस में मिले रहेंगे।

लाभ

- इसके निरंतर अभ्यास से छाती चौड़ी व कमर पतली होती है। श्वास संबंधी बीमारी जैसे दमा, ब्रोंकाइटिस के लिए यह अच्छा आसन है।
- इसके अभ्यास के समय फेफड़े पूरी तरह फूलते हैं, जिससे फेफड़े की सांस लेने की क्षमता दुगुनी हो जाती है।
- इससे गले के अंगों की मसाज हो जाती है।
- जिन व्यक्तियों के पेट पर अत्यधिक चर्बी होती है, कमर मोटी होती है उन्हें इसका धीरे–धीरे निरंतर अभ्यास करना चाहिए।
- रक्त प्रवाह सुचारू रूप से होता है और रक्त की शुद्धि होती है।
- शरीर में हल्कापन आता है।
- जिनकी नाभि अपने स्थान से हट जाती है, इसके निरंतर अभ्यास से हटी हुई नाभि अपने स्थान पर आ जाती है।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि शुद्धिकरण के बाद आसनों का अभ्यास शारीरिक स्थिरता एवं दृढ़ता के लिए किया जाता है। यहां दृढ़ता का अर्थ है – शरीर का स्थिर होना। महर्षि पतंजलि द्वारा 'योग दर्शन' में आसन की बहुत ही सरल व्याख्या की गई है –

'स्थिर सुखमासनम्। (योग 2/46)

अर्थात सुखपूर्वक, स्थिरता से, बहुत समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में रहना 'आसन' कहलाता है।

योगी बनने के लिए योग के प्रथम अंग–यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह) और द्वितीय अंग नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर (प्राणिधान) का पालन करना अति आवश्यक हैं। इसके बाद ही अगले अंगों में जाना चाहिए।

टिप्पणी

घेरण्ड ऋषि ने आसनों के बारे में लिखा है –

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव–जन्तवः।
चतुरशीति लक्षानि शिवेनाभिहिलानि च।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासन शुभम।।

अर्थात संसार में जितने जीवों की योनियां हैं उतने ही आसन हैं। जीवयोनियां 84 लाख मानी गई हैं अतः आसन भी 84 लाख हैं। इनमें 84 आसन श्रेष्ठ माने गये हैं। इनमें भी 32 आसन अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझने चाहिए।

सूर्य नमस्कार निश्चित योगासनों का एक समूह है जिसे एक निश्चित क्रम में किया जाता है। सूर्य नमस्कार में कुल 12 स्थितियां होती हैं।

साथ ही हमने विभिन्न मुख्य–मुख्य योगासनों की अभ्यास विधि एवं उनके लाभ के बारें में जाना।

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए योगासन बहुत लाभदायक है। आसनों से ग्रंथियों, पेशियों, अस्थिबन्धों और स्नायु का व्यायाम होता है जिससे वे स्वस्थ रहते हैं। यौगिक क्रियाओं और आसनों का लक्ष्य इस भौतिक शरीर को आत्मा के निवास के लिए उपयुक्त स्थल बनाना है।

यूनिटांत प्रश्न

1. आसन क्या है? सूर्य नमस्कार का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
2. योगासनों को कितनी श्रेणियों में बांटा गया है। सभी की संक्षिप्त में विवेचना कीजिए।
3. किन्हीं पांच आसनों की क्रियाविधि एवं उनके लाभों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. *'स्थिर सुखमासनम्। (यो0 द0 2/46)*

2. यौगिक क्रियाएं – स्थाई न होकर लगातार करने की क्रियाएं हैं जिन्हें अपनी रूचि, सामर्थ्य एवं क्षमता के अनुसार करना चाहिए। जबकि आसन में किसी भी विशेष मुद्रा व स्थिति एवं अवस्था में पहुंचना और निश्चित समय के लिए स्थिर होकर बिना कष्ट के रहना होता है।
3. संपूर्ण शरीर में ऊर्जा का संचार करता है।

8.2

1. सूर्यनमस्कार निश्चित योगासनों का एक समूह है जिसे एक निश्चित क्रम में किया जाता है।
2. 12
3. भुजंगासन की।

9

प्राणायाम, मुद्रा-बंध और ध्यान साधना

पिछले यूनिट में आप अष्टांग योग के तृतीय चरण—योगासन के विषय में पढ़ चुके हैं। अष्टांग योग का चौथा चरण है 'प्राणायाम'। आसन और योग क्रियाएं करने के पश्चात प्राणायाम करने की इच्छा होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार आसन आदि करने से पहले कुछ सावधानियाँ आवश्यक हैं; उसी प्रकार प्राणायाम करने से पहले भी कुछ सावधानियाँ अति आवश्यक हैं। हम योगासनों का अभ्यास अपनी क्षमता तथा अवस्था के अनुरूप करते हैं, प्राणायाम भी अपनी क्षमता के अनुसार करना चाहिए क्योंकि गलत ढंग से प्राणायाम करने पर हमें लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है और हम अस्वस्थ हो सकते हैं। इस अध्याय में हम प्राणायाम व ध्यान साधना के स्वरूप पर चर्चा करेंगे। साथ ही, मुद्रा—बंध एवं योगनिद्रा के विषय में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- प्राणायाम का अभिप्राय स्पष्ट कर सकेंगे;
- प्राणायाम के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
- मुद्रा एवं बंध का उल्लेख कर सकेंगे;
- प्राणायाम, मुद्रा—बंध एवं योगनिद्रा के महत्व तथा लाभ का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

9.1 प्राणायाम

महर्षि पतंजलि के अनुसार 'श्वास और प्रश्वास' की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। जब श्वास–प्रश्वास अनुशासित होकर निग्रह की स्थिति में पहुंचता है, तब प्राणायाम की पूर्णता होती है। सरल शब्दों में प्राणायाम को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ''प्राण तथा अपान का योग प्राणायाम है अर्थात् श्वास–प्रश्वास पर नियमन तथा नियंत्रण प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम शब्द का अर्थ है – प्राणिक ऊर्जाओं का नियंत्रण। यह उस प्राणिक ऊर्जा का नियंत्रण है जो लोगों के स्नायुओं में सनसनाती, उसकी मांसपेशियों का संचालन करती तथा उसके बाहरी जगत का अनुभव करने और आंतरिक विचारों को सोचने का कारण बनती है। प्राणायाम के द्वारा इस ऊर्जा पर नियंत्रण पाना ही योगियों का लक्ष्य है।

आसनों के अभ्यास से आप स्थूल शरीर को वश में कर सकते हैं जबकि प्राणायाम के अभ्यास से आप सूक्ष्म शरीर को वश में कर सकते हैं। श्वास तथा प्राणिक नाड़ियों के बीच गहरा संबंध है। अतः श्वास के नियंत्रण से प्राणिक प्रवाहों पर भी नियंत्रण हो जाता है।

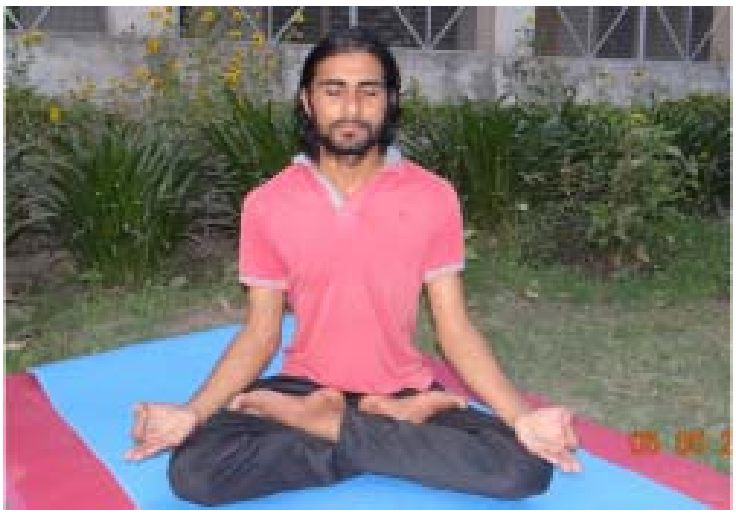

चित्र 9.1: प्राणायाम हेतु पद्मासन

जिस प्रकार सोने को गरम भट्ठी में तपाकर उसकी गंदगी को दूर कर दिया जाता है, ठीक उसी तरह योग साधक, प्राणायाम के व्यवहार से अपने शरीर तथा इन्द्रियों के मल–विकारों का निवारण करता है।

प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है प्राण तथा अपान को संयुक्त करना तथा इस संयुक्त प्राण–अपान को धीरे–धीरे मस्तक की ओर ले जाना। शरीर के भीतर सुप्त शक्तियों को जागृत करना प्राणायाम का फल है।

टिप्पणी

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए लिखा है – ***''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम''*** अर्थात् प्राणायाम द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है। हम कह सकते हैं कि चेतना जागृत होती है। चित्त की निर्मलता बढ़ती है, ज्ञान का विकास होता है। इंद्रियां शुद्ध होती हैं और मन की प्रसन्नता व एकाग्रता बढ़ती है। प्राणायाम से शक्ति का संचयन होता है, जठराग्नि की वृद्धि, शरीर में स्फूर्ति आती है और वह दीप्तिमान और स्वस्थ होता है।

9.1.1 प्राण का स्वरूप

प्राण विश्व में अभिव्यक्त सभी शक्तियों का योग है। ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व – ये सभी प्राण की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। सारी भौतिक तथा मानसिक शक्तियाँ प्राण की ही श्रेणी में आती हैं। यह वह शक्ति है जो हमारी सत्ता के उच्चतम से निम्नतम स्तर तक प्रत्येक तल में विद्यमान है। जो कुछ भी गतिशील अथवा कार्यशील है अथवा जिसमें जीवन है, वह सभी प्राण के ही स्वरूप में अभिव्यक्त है।

प्राण का स्थान हृदय है। प्राण का प्राकृतिक स्वरूप एक है, परन्तु कार्य के अनुसार इसके पाँच रूप हैं –

1. प्राण
2. अपान
3. समान
4. उदान
5. व्यान

प्रधान प्राण महाप्राण कहलाता है। इन पाँचों में प्राण तथा अपान ही महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। प्राण का स्थान हृदय है, अपान का स्थान गुदा है, समान का स्थान नाभि है, उदान का स्थान कण्ठ है तथा व्यान सारे शरीर में व्याप्त है।

जैसा कि आप जान चुके हैं कि श्वास–प्रश्वास पर नियमन तथा नियंत्रण प्राणायाम है। श्वास–प्रश्वास के संचालन को योग की भाषा में इस प्रकार वर्णित किया गया है।

1. **रेचक :** श्वास को नासिका से बाहर निकालकर उसकी स्वाभाविक गति पर नियंत्रण करना रेचक कहलाता है। यह प्रश्वास है।
2. **पूरक** – श्वास को नासिका से अंदर खींच कर उसकी स्वाभाविक गति पर नियंत्रण करना पूरक कहलाता है। यह श्वास है।
3. **कुम्भक** – श्वास–प्रश्वास दोनों गतियों पर नियंत्रण से प्राण को जहाँ–का–तहाँ रोक देना कुम्भक कहलाता है। कुम्भक आयु को बढ़ाता है। इससे आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

9.1.2 प्राणवाही नाड़ियां

मेरुदंड के दोनों ओर दो नाड़ियां पायी जाती हैं जिनसे प्राण का संचार होता है। इनमें बांयीं नासिका से संबंधित नाड़ी को 'इड़ा' कहते हैं, इसे चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है। दाहिनी नासिका से संबंधित नाड़ी को 'पिंगला' कहते हैं, इसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। इड़ा का स्वभाव शीतल तथा पिंगला का स्वभाव गरम है। इड़ा तथा पिंगला से जब श्वास चलती है तब मनुष्य सांसारिक कार्यों तथा मान्यताओं को पूरा करने में व्यस्त रहता है, यही उसकी दिनचर्या का मुख्य भाग होता है।

इन दो प्राणवाही नाड़ियों के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण नाड़ी है – सुषुम्ना। वैसे तो मनुष्य के शरीर में कुल 72000 नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। सुषुम्ना मेरुदंड के मध्य से होकर जाती है। अन्य सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना से संबंध रखती हैं।

इस प्रकार हमारे शरीर में सबसे मुख्य तथा महत्वपूर्ण तीन प्राणवाही नाड़ियां हैं

प्राणवाही नाड़ियाँ (मुख्य)

इड़ा (चन्द्रनाड़ी) पिंगला (सूर्य नाड़ी) सुषुम्ना नाड़ी

इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना तीनों प्राणवाहिनी नाड़ियों का सीधा संबंध क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि से है। जब प्राण सुषुम्ना से संचरित हो, तो ध्यान के लिए बैठ जाना चाहिए। आप ध्यान की गहराई में प्रवेश कर जायेंगे।

ईश्वर की कृपा से हमें यह स्वचालित रूप से चलने वाला यंत्र मिला हुआ है। जब हमारे शरीर में उष्णता की आवश्यकता होती है, तब दायीं नासिका से श्वास आने लगता है और जब हमारे शरीर में ठण्डक की आवश्यकता होती है तो बायीं नासिका से श्वास आने लगती है। इस स्वचालित यंत्र को हम अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार भी उपयोग में ला सकते हैं।

9.1.3 प्राणायाम करने की क्रिया विधि

प्राणायाम करने से पहले प्राणायाम साधना के कुछ महत्वपूर्ण निर्देश जानना अति आवश्यक है –

महत्वपूर्ण निर्देश

1. प्राणायाम से पहले अपनी नासिकाओं को अच्छी तरह से साफ कर लें।
2. पद्मासन, सुखासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन आदि किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठें।
3. स्थिरतापूर्वक मेरुदंड को सीधा रखें और सुखपूर्वक पूरे आत्मविश्वास के साथ बैठें।
4. जो प्राणायाम शरीर में गर्मी उत्पन्न करते हैं – उन्हें गर्मियों में न करें। इसी प्रकार जो शरीर में शीतलता लाते हैं – उन्हें सर्दियों में न करें।

टिप्पणी

5. दमा, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोग से पीड़ित रोगी अपनी अपनी सीमाओं व क्षमताओं का ध्यान रखते हुए प्राणायाम करें। यह अच्छा होगा कि प्राणायाम का अभ्यास किसी योग शिक्षक के मार्गदर्शन में करें।
6. प्राणायाम में ब्रह्मचर्य का विशेष महत्व है।

9.3.3 प्राणायाम के प्रकार

साधना के प्राचीन ग्रंथ घेरण्ड *संहिता* में प्राणायाम के संबंध में लिखा है –

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्छा केवली, चाष्टकुम्भकाः।। के.स.

अर्थात आठ प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख घरेण्ड संहिता में मिलता है।

हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है –

***सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्च्छा प्लावनी इत्यष्टकुम्भकाः* (ह. प्र.)**

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम
2. सूर्यभेदी प्राणायाम
3. उज्जाई प्राणायाम
4. सीतकारी प्राणायाम
5. शीतली प्राणायाम
6. भस्त्रिका प्राणायाम
7. भ्रामरी प्राणायाम
8. प्लावनी प्राणायाम

प्राणायाम से पूर्व श्वसन–अभ्यास

यह श्वसन अभ्यास श्वास–प्रश्वास की धारा को सरलतापूर्वक लंबा–गहरा बनाने के लिए किया जाता है। यह डायफ्राम की क्रियाशीलता को ठीक करता है। यदि श्वास लेते समय पेट फूलता है और श्वास छोड़ते समय पेट सिकुड़ता है तो समझना चाहिए कि डायफ्राम ठीक से काम कर रहा है। यदि इसके विपरीत क्रिया होती है तो इसका तात्पर्य है कि डायफ्राम उल्टा चल रहा है, इसको ठीक करने के लिए इस प्राणायाम को करते हैं। डायफ्राम ठीक होने के बाद साधक का श्वास–प्रश्वास स्वतः ही लंबा और गहरा होने लगता है।

स्थिति

- पद्मासन, सुखासन अथवा वज्रासन
- हाथों को घुटनों पर रखें
- मेरुदण्ड को सुखपूर्वक सीधा रखें।
- कोमलता से आँखें बंद रखें।

विधि

- धीरे–धीरे सुखपूर्वक दोनों नासिका से समान रुप से श्वास लें।
- श्वास लेने के साथ–साथ पेट को धीरे–धीरे फुलाते जाएं।
- पेट फुलाकर मन में 06 तक गिनती गिनने तक श्वास अंदर रोके रखें।
- अब धीरे–धीरे समान भाव से श्वास छोड़ते जाएं तथा पेट को सिकोड़ते जाएं।
- यदि आप चाहें तो श्वास को 06 गिनती गिनने तक बाहर भी रोक सकते हैं।
- इसी क्रम को तीन मिनट से पांच मिनट तक सरलतापूर्वक कीजिए।
- क्रिया करते समय थकना नहीं चाहिए।
- संपूर्ण शरीर में हल्कापन अनुभव करें।

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम

जैसा कि इस प्राणायाम के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसके अभ्यास से शरीर में विद्यमान 72000 नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है। नाड़ियों में जमा मल को यह प्राणायाम बाहर निकालता है, जिसके फलस्वरुप शरीर में प्राण का संचार सुनियोजित होता है। शरीर के कोषाणु ऊर्जावान् होते हैं।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठ जाएं;
- मेरुदण्ड को सीधा करें;
- आँखें कोमलता से बंद करें;
- बायां हाथ बायें घुटने पर रखें;
- दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली बायें नासिका रन्ध्र पर तथा अगूंठा दाहिने नासिका रन्ध्र पर रखें।

चित्र 9.2: नाड़ी शोधन प्राणायाम

टिप्पणी

विधि

- बांयें नासिका रन्ध्र से 08 गिनती तक मन में गिनते हुए श्वास भरें।
- मन में 32 गिनती गिनने तक श्वास अंदर रोकें।
- बांयें नासिका रन्ध्र को बंद करें और दाएं नासिका रन्ध्र से 16 गिनती मन में गिनते हुए तक श्वास बाहर छोड़ें।
- अब दाएं नासिका रन्ध्र से 08 गिनने तक श्वास लें।
- फिर 32 गिनती गिनने तक श्वास अंदर रोकें। इसे अन्तः कुम्भक कहते हैं।
- अब बायें नासिका रन्ध्र से 16 गिनती गिनने तक श्वास छोड़ें।

यह इस प्राणायाम की एक आवृति है। इसी क्रम को दुहराते हुए लगभग 3–5 मिनट तक कीजिए।

इस प्राणायाम में पूरक, कुम्भक तथा रेचक में क्रमशः 1:4:2 का अनुपात होता है। यह सभी प्राणायामों में श्रेष्ठ है। इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से नाड़ियां भली–भांति शुद्ध हो जाती हैं।

2. उज्जाई प्राणायाम

हमारे गले में श्वास नलिका होती है। यही श्वास क्रिया का यंत्र है। यह श्वास नलिका हमारे नासिका द्वार तथा मुख द्वार दोनों से जुड़ा हुआ है। हम श्वास चाहे मुख से लें अथवा नासिका से, श्वास इसी नलिका द्वारा फेफड़ों में पहुँचती है। इसी नलिका को कुछ संकुचित करके श्वास लेने – छोड़ने से इस प्रकार की खर्राटे जैसी आवाज होती है। इसी श्वास प्रक्रिया को उज्जाई प्राणायाम के रूप में जानते हैं।

स्थिति

- पद्मासन, वज्रासन या सुखासन में बैठ जाएं;
- मेरुदण्ड को सीधा करें;
- दोनों हाथों को घुटने पर रखें।

विधि

- पेट को थोड़ा अंदर की ओर पिचका लें।
- जिह्वा के अग्र भाग को थोड़ा अंदर की ओर मोड़कर ऊपर तालू में लगा लें।

चित्र 9.3: उज्जाई प्राणायाम

- ठुड्डी को कंठकूप में लगाकर थोड़ा संकुचित कर लें।
- कंठ में सरसराहट करते हुए नासिका से समान रूप से श्वास लें तथा छोड़े। इसे सरलतापूर्वक करते रहें।
- श्वास कंठ से हृदय तक लें और हृदय से गले तक छोड़ें।
- श्वास की गति समान भाव से धीमी रहे।
- श्वास लेते छोड़ते समय मुँह में लार भर आएगी तो उसे निगल लें।
- प्राणायाम करते समय ध्यान कंठ में ही रखें।

3. सूर्य भेदी प्राणायाम

सूर्य भेदन का मतलब है पिंगला नाड़ी का भेदन करना अथवा उसे जागृत करना। यह शरीर में प्राण–ऊर्जा को तीव्रता से बढ़ाता है। शरीर में ताप पैदा करता है और रक्त का शोधन करता है। इसके अभ्यास से रक्त में लाल–कण अधिक मात्रा में बढ़ते हैं। यह इच्छा शक्ति को बढ़ाता है।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठ जाएं;
- मेरुदण्ड को सीधा करें;
- आँखें बंद कर लें।

विधि

- दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका से बाएं नासिका रन्ध्र को बंद करें।
- बिना किसी ध्वनि के सुखपूर्वक दाहिने नासिका रन्ध्र से धीरे–धीरे श्वास लें।

- अब दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नासिका रन्ध्र को बंद कर लें और आंतरिक कुम्भक करें।
- जालंधर बंध लगाकर श्वास को यथासंभव रोके रखें।
- कुम्भक का समय धीरे–धीरे बढ़ाते रहें। इस अभ्यास को सूर्य भेद कुम्भक कहते हैं।

चित्र 9.4: सूर्य भेदी प्राणायाम

- अब दाहिने–नासिका रन्ध्र से अंगूठे को बंद कर बायें नासिका रन्ध्र से बिना ध्वनि के धीरे–धीरे श्वास छोड़ें।
- यह मस्तिष्क को शुद्ध करता है, आँतों के कीड़ों को मारता है तथा वायु दोष को दूर करता है।

4. सीतकारी प्राणायाम

यह शरीर में ठंडक पहुँचाने वाला प्राणायाम है। यह भूख, प्यास, आलस्य तथा निद्रा को दूर करता है।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठें;
- मेरुदण्ड सीधा रखें;
- दोनों हाथ घुटनों पर रखें;
- जिह्वा के अग्रभाग को तालू में लगा लें।

चित्र 9.5: सीतकारी प्राणायाम

विधि

- दाँतों तथा जबड़ों को भींचकर होठों के दायें–बायें से मुख से श्वास अंदर खींचें;
- श्वास लेते समय शीतकार की सी आवाज करें;
- फिर आंतरिक कुम्भक करें;
- कुम्भक का अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ायें, इस प्रकार 8–10 बार इसे करें।

5. शीतली कुम्भक प्राणायाम

यह प्राणायाम भी शरीर के अंदर शीतलता पहुँचाने के लिए किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी को शांत करने के लिए यह अत्यंत उपयोगी है। उच्च रक्त चाप को ठीक करता है। रक्त को शुद्ध करता है। प्यास को बुझाता है।

स्थिति

- पद्मासन या सुखासन में बैठें;
- पीठ सीधी रखते हुए शरीर को ढ़ीला रखें;
- जिह्वा को बाहर निकालकर नाली की तरह बना लें;
- इस प्राणायाम को खड़े होकर भी कर सकते हैं।

चित्र 9.6: शीतली प्राणायाम

विधि

- शीतकार (सी SSS) की आवाज़ करते हुए नली से वायु को अंदर खींचे।
- जब तक सुखपूर्वक श्वास को रोक सकें, रोके रखें।
- अब दोनों नासिका रन्ध्रों से धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकालें।
- प्रतिदिन 15–30 बार इसका अभ्यास करें।

6. भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का अर्थ भाथी या धौंकनी है। धौंकनी की तरह लंबा तथा वेगपूर्वक श्वास लेना और निकालना, 'भस्त्रिका प्राणायाम' कहलाता है। जिस तरह लौहार जल्दी–जल्दी भाथी चलाता है, उसी तरह जल्दी–जल्दी श्वास लेना तथा निकालना है। इससे शरीर ऊर्जावान बनता है। श्वास गहरा व लंबा लेने की शक्ति बढ़ती है।

स्थिति

- पद्मासन में बैठ जाएं;
- सिर, ग्रीवा तथा शरीर को एक सीध में रखें;
- मुंह को बंद कर लें।

चित्र 9.7: भस्त्रिका प्राणायाम

विधि

- लोहार की धौकनी के समान नासिका से 10–15 बार जल्दी–जल्दी श्वास लें तथा छोड़ें।
- श्वास छोड़ने के साथ–साथ पेट को अंदर सिकोड़ते रहें।
- अभ्यास के समय फुफकारने की सी ध्वनि करें।
- श्वास लेने व छोड़ने के क्रम को तीव्र बनाए रखें।
- तीव्रगति से लेना–छोड़ना करते–करते अंतिम रेचक के बाद यथाशक्ति लंबा–गहरा श्वास लें।
- जब तक सुखपूर्वक श्वास छोड़ें। यह एक आवृत्ति भस्त्रिका है। इसी क्रम को तीन आवृत्ति तक कर सकते हैं।

7. भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी शब्द भौंरे (भ्रमर) से लिया गया है। इस प्राणायाम में भौंरे जैसा गुंजन करते हुए रेचक किया जाता है। यह प्राणायाम मस्तिष्क के स्नायुओं को सुखद रूप में स्पन्दित करता है। स्मरण शक्ति बढ़ती है। इससे मानसिक थकान दूर होती है। मन शांत होता है। आध्यात्मिक विकास के लिए श्रेष्ठ प्राणायाम है।

स्थिति

- पद्मासन, वज्रासन या सिद्धासन में बैठें;
- मेरुदण्ड सीधा रखें;

- आँखें कोमलता से बंद रखें;
- दोनों हाथों की तर्जनी से दोनों कान बंद कर लें।

चित्र 9.8: भ्रामरी प्राणायाम

विधि

- दोनों नासिका रन्ध्रों से लंबा–गहरा पूरक करें।
- कान बंद रखते हुए श्वास छोड़ते जाएँ और भौंरे जैसा गुंजन ध्वनि करते जाएँ।
- पुनः श्वास भरें और गुंजन करें। इस क्रम को 5, 10, 15,20 बार तक कर सकते हैं।
- अंत में दोनों नासिकारन्ध्रों से पूरक करें, यथाशक्ति अन्तःकुम्भक करें तथा धीरे–धीरे रेचक करें।

8. प्लावनी प्राणायाम

प्लव का अर्थ है –नौका। नाव जल पर जैसे तैरती है, उसी प्रकार जल की सतह पर पड़े रहने को प्लावनी कहते हैं। यह प्राणायाम शरीर को फूल के समान हल्का बनाता है जिससे साधक जल की सतह पर अपने शरीर को छोड़ सकता है। यह योग साधक के लिए एक कौशल का कार्य भी है। जो प्लावनी कुम्भक का अभ्यास करता है, वह वायु पीकर अन्न के बिना ही कई दिनों तक रह सकता है।

स्थिति

- पद्मासन में बैठ जाइए।

- शरीर को सुखपूर्वक रखते हुए मेरुदण्ड को सीधा रखें।

विधि

- जल की तरह घूंट–घूंट करके वायु पीएं और उसे पेट में पहुँचाएं।
- वायु भरने से पेट फूलता है, पेट थपथपाने से ढोल की सी आवाज आती है।
- अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ा सकते हैं और अंत में डकार द्वारा धीरे–धीरे पेट की हवा को बाहर निकाल सकते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 9.1

1. महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए क्या लिखा है?

   .....

   .....

   .....

2. प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य क्या है?

   .....

   .....

3. शरीर में सबसे महत्वपूर्ण एवं मुख्य तीनों नाड़ियों के नाम बताइए।

   .....

   .....

4. किस प्राणायाम से शरीर में गर्मी उत्पन्न की जा सकती है?

   .....

   .....

9.2 मुद्रा एवं बंध

आसन प्राणायाम से भी ज्यादा प्रभावी अभ्यास मुद्रा–बंध का माना गया है। मुद्रा शब्द मुद् धातु से निर्मित है जिसका अर्थ प्रसन्नता होता है। मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है। योग में मुद्रा और बंध का प्रयोग प्राण ऊर्जा के नियमन के लिए किया जाता है।

मुद्रा–बंध का वर्णन नीचे किया गया है जिनके अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्षमताओं का विकास किया जा सकता है।

9.2.1 बंध

बंध का अर्थ है बांधना या नियंत्रित करना। इस प्रक्रिया में शरीर के विभिन्न आन्तरिक अवयवों को नियंत्रित कर साधना की जाती है।

बंध के प्रकार –

i) जालन्धर बन्ध

जालन्धर बन्ध गले से संबंधित होता है। जाल का अर्थ है – जाला, जाली, झंझरी। कंठ क्षेत्र का बंधन जालन्धर बन्ध के द्वारा होता है। कंठ एक ऐसा क्षेत्र है जिससे होकर शरीर की सभी नाड़ियां सिर में प्रवेश करती हैं। पूरे शरीर का संबंध कंठ से होता है।

घेरण्ड संहिता में जालन्धर बन्ध की विधि का वर्णन इस प्रकार मिलता है –

कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।

जालन्धरेकृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम्।।

अर्थात कंठ संकोच करें और हृदय पर ठुड्डी को रखें तो उसे जालन्धर बन्ध कहते हैं।

विधि

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते हैं। सिर एवं मेरूदंड सीधा रखते हैं। दोनों हथेलियों को घुटने पर रखते हैं। इसके बाद धीरे–धीरे श्वास भरते हैं, श्वास भरकर रोकते हैं फिर कंठ को संकुचित कर ठुड्डी को छाती (कंठ के मूल भाग में) से लगाने का प्रयास करते हैं।

चित्र 9.9: जालन्धर बन्ध

घुटनों पर हथेलियों से दबाव डालते हुए भुजाओं को सीधा करते हैं। जब तक आराम से श्वास अंदर रोक सकें तब तक रोके रखें। इसके बाद कंधों, भुजाओं को शिथिल कर, सिर को ऊपर उठाते हैं, तत्पश्चात श्वास को धीरे–धीरे छोड़ते हैं। इसको चार बार दोहरा सकते हैं।

लाभ

- थायराइड ग्रंथि के कार्यों को संतुलित करने के लिए इसका अभ्यास लाभदायक है;
- शरीर के विकास के लिए लाभदायक है;
- चयापचय क्रिया संतुलित होती है;
- सिर में रक्त संचार की मात्रा बढ़ती है।

सावधानियां

सर्वाइकल, स्पॉण्डिलाइटिस, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

ii) उड्डियान बन्ध

उड्डियान का अर्थ होता है 'उड़ना', ऊपर उठाना आदि। उड्डियान बन्ध के द्वारा प्राण ऊर्जा को ऊपर की ओर उठाया जाता है।

घेरण्ड संहिता में इसकी विधि निम्नानुसार दी गई है –

उदरे पश्चिमं तानं नाभिरुष्टर्वंतु कारयेत्।

उड्डीनं कुरुते यस्माद् विश्रातं महाखगः।।

अर्थात नाभि के ऊपर उदर को पीठ की ओर समभाव में सिकोड़ें, जिसके परिणामस्वरूप महाखग (प्राण) ऊपर उठता है। इसे उड्डियान बन्ध कहते हैं।

चित्र 9.10: उड्डियान बन्ध

विधि

किसी भी ध्यानात्मक आसन जैसे पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि में सिर व मेरूदंड सीधा करके बैठते हैं। हथेलियां घुटने के ऊपर रखते हैं। आंखें बंद कर पूरे शरीर को ढीला

टिप्पणी

छोड़ देते हैं। नासिका से धीरे–धीरे गहरी श्वास लेकर फिर श्वास को छोड़ते हैं। फेफड़ों को संपूर्ण रूप से खाली करने का प्रयास करते हैं। श्वास को बाहर रोककर अर्थात बिना श्वास लिए ही हाथ सीधे करके कंधों को ऊपर उठाते हैं साथ ही जालन्धर बन्ध लगाते हैं। पेट की मांसपेशियों को संकुचित करके नाभि को भीतर ऊपर की ओर उठाते हैं। इस स्थिति में जब तक सहजता अनुभव करें तब तक रहते हैं। फिर इसके बाद पेट की मांसपेशियों को ढीलाकर, कोहनियों से मोड़ते हैं। कंधों को सामान्य करके जालन्धर बंध खोलते हैं, फिर धीरे–धीरे श्वास लेते हैं। श्वास–प्रश्वास को सामान्य करते हैं। जब श्वास–प्रश्वास सामान्य हो जाए तो फिर से दोहराते हैं।

लाभ

- पाचन संस्थान स्वस्थ होता है, जठराग्नि तीव्र होती है;
- फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है;
- आलस्य तनाव चिंता कम होती है।

अमाशय एवं आन्त्र व्रण, हर्निया, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, ग्लूकोमा, सिरदर्द से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

iii) मूलबन्ध

मूलबन्ध अर्थात शरीर का मूल स्थान जहाँ गुदा होता है। वहाँ अपान प्राण स्थित होता है। अपान प्राण के उर्ध्वगमन के लिए इसका अभ्यास किया जाता है।

घेरण्ड संहिता में इसकी विधि निम्नानुसार है :

पढिर्णना वामपादस्य योनिमाकुन्चयिततः
नाभिग्रंथि मेरूदण्डे सुधीः संपीडय यत्नतः।
मेढ्रं दक्षिणगुल्फेन दृढ़बन्धं समाचरेत
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धे निगद्यते।।

अर्थात् बाईं एड़ी से गुहा प्रदेश को संकुचित करें और प्रयत्नपूर्वक मेरूदण्ड में नाभि–ग्रंथि को लगाकर दबाएं और दाईं एड़ी से उपस्थ को दृढ़तापूर्वक दबा लें। यह मूलबंध है जिसके अभ्यास से वृद्धावस्था नष्ट होती है।

विधि

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर, कमर सीधा करके बैठ जाते हैं। आंखें को बंद कर दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा अथवा किसी अन्य मुद्रा में रख लेते हैं।

थोड़ी देर सामान्य श्वास–प्रश्वास करते हैं। फिर अपना ध्यान गुदा प्रदेश पर ले जाते हैं। गुदा प्रदेश की मांसपेशियों को ऊपर की ओर संकुचित करते हैं, थोड़ी देर इस अवस्था में रहते हैं, फिर मांसपेशियों को ढीला छोड़ दिया जाता है। यह प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है। इस प्रक्रिया में श्वास–प्रश्वास सामान्य रहता है।

लाभ

- इसका अभ्यास उत्सर्जन एवं प्रजनन तंत्र को स्वस्थ बनाता है;
- कब्ज, बवासीर आदि रोग नहीं होते हैं;
- शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं;
- ब्रह्मचर्य पालन में सहायक होता है।

गुदा प्रदेश से संबंधित गंभीर रोगों में इसे परामर्शक के निर्देशन में ही सम्पन्न करें।

9.2.2 मुद्रा

मुद्रा शब्द मुद् धातु से बना है जिसका अर्थ प्रसन्नता से है। मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है। सरल शब्दों में कहा जाय तो चिन्त को प्रकट करने वाले विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। आइए यहाँ पर हम संक्षिप्त में कुछ हस्त एवं मुख की प्रमुख मुद्राओं के विषय में जानते हैं।

क) हस्त मुद्रा

स्वास्थ्य नियन्त्रण कक्ष आपके हाथ की अंगुलियों में है और यहीं से सम्पूर्ण शरीर का संचालन होता है। जिस तत्व के कारण आप अस्वस्थ हैं उस तत्व की कमी नियन्त्रण कक्ष के अनुकूल स्विच को दबाकर अभाव की पूर्ति कर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

हाथ की अंगुलियों को परस्पर विभिन्न विधि द्वारा स्पर्श करना हस्त मुद्रा कहलाता है।

हमारे हाथ की पाँच अंगुलियों से पाँच तत्वों का बोध निम्न प्रकार होता है।

1) अंगूठा (Thumb) – अग्नि तत्व
2) तर्जनी (Index Finger) – वायु तत्व
3) मध्यमा (Middle Finger) – आकाश तत्व
4) अनामिका (Ring Finger) – पृथ्वी तत्व
5) कनिष्ठा (छोटी (Small Finger) – जल

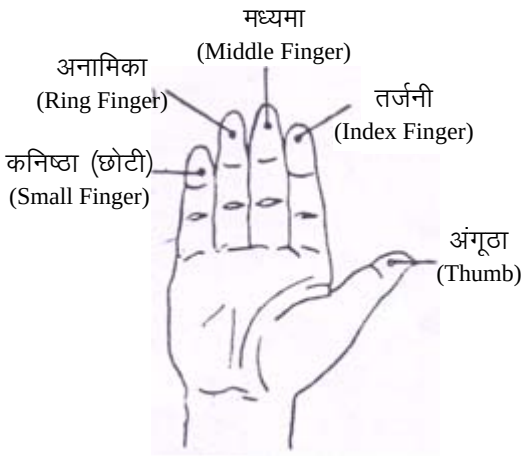

हस्त मुद्रा द्वारा शरीर की पाँच भौतिक स्थित को संतुलित रखकर स्वास्थ्य कायम रखा और खोए हुए स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है।

ज्ञान मुद्रा

1) **ज्ञान मुद्रा :** अंगूठा और तर्जनी को मिलाने से बनती है।

लाभ : स्मरण शक्ति उन्नत होती है, मानसिक रोग, चिड़चिड़ापन एवं अनिद्रा दूर होती है। इससे होने वाली स्मरण शक्ति विद्यार्थियों एवं बुद्धिजीवियों के लिए वरदान एवं मानसिक रोगों के लिए रामबाण है।

2) **वायु मुद्रा :** तर्जनी अंगूली को अंगूठे की जड़ में लगाकर उसे अंगूठे से दबाने पर यह मुद्रा बनती है।

वायु मुद्रा

लाभ : इस मुद्रा से सभी प्रकार के वायु रोग, गठिया, कम्पन, लकवा, वायुशूल एवं रेंगने वाला दर्द निश्चय ही ठीक होते हैं।

3) **सूर्य मुद्रा :** अनामिका को अंगूठे की जड़ में लगाकर अंगूठे से दबाने से बनती है।

सूर्य मुद्रा

लाभ : मोटापा, भारीपन दूर करता है।

नोट : अनामिका और अंगुष्ठ दोनों ही तेज का विशेष विद्युत प्रवाह करते हैं। यौगिक दृष्टि से ललाट पर द्विदल कमल का आज्ञाचक्र स्थित है। उस पर अनामिका और अंगुष्ठ से एक विशेष विधि और भावना द्वारा तिलक करके कोई भी स्त्री अथवा पुरुष अपनी अदृश्य शक्ति को दूसरे में पहुँचाकर उसकी शक्ति द्विगुणित कर सकता है।

4) **लिंग मुद्रा :** दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फंसाकर बायें हाथ के अंगूठे को सीधा रखें।

लिंग मुद्रा

लाभ : सर्दी के रोग नजला जुकाम आदि दूर होते हैं।

5) **पृथ्वी मुद्रा :** अनामिका और अंगुष्ठ के अग्र भाग को मिलाएं।

पृथ्वी मुद्रा

लाभ : दुबले पतले व्यक्ति के लिए एवं कान्ति और तेज की कमी में लाभ देता है। संकुचित विचारों में परिवर्तन होता है।

6) **प्राण मुद्रा :** कनिष्ठ एवं अनामिका दोनों को मोड़कर अंगूठा से स्पर्श करें।

प्राण मुद्रा

लाभ : शरीर शारीरिक–मानसिक दृष्टि से इतना शक्तिशाली हो जाता है कि कोई भी बीमारी आक्रमण नहीं कर सकती। रक्त संचार उन्नत होकर रक्त नलिकाओं की रुकावट को दूर करता है। तन–मन में स्फूर्ति, आशा एवं उत्साह प्रदान करता है। नेत्र दोष दूर होते हैं।

7) **अपान मुद्रा:** मध्यमा एवं अनामिका को एक साथ मिला कर एवं मोड़कर अंगूठा से स्पर्श करें।

अपान मुद्रा

लाभ : उदर की वायु को कम कर वहां के दर्द एवं अन्य उपद्रव को दूर करता है।

8) **शून्य मुद्रा :** मध्यमा अंगुली को मोड़कर अंगूठा से दबाएं।

शून्य मुद्रा

लाभ : कान के दर्द में लाभ मिलता है। निरन्तर अभ्यास से कान के रोग से बचाव, बहरा है तो सुनाई देगा। (जन्म से गूंगा–बहरा है तो असर नहीं होगा)।

9) **हृदय मुद्रा :** तर्जनी अंगुली को मोड़कर अंगुठे की गद्दी पर लगा दे और तब छोटी अंगुली को छोड़कर बाकी दोनों अंगुलियों को अंगूठा से स्पर्श करें।

हृदय मुद्रा

लाभ : यह मुद्रा दिल का दौरा रोकने में इन्जेक्शन की भांति काम करती है। नियमित अभ्यास से हृदय रोग ठीक हो सकता है।

10) **वरुण मुद्रा :** सबसे छोटी अंगुली को अंगुष्ठ के अग्र भाग से मिलाने पर वरुण मुद्रा बनती है।

वरुण मुद्रा

लाभ : इसके अभ्यास से शरीर में जल तत्व की कमी से उत्पन्न होने वाले सभी रोग दूर हो जाते हैं। त्वचा एवं रक्त विकार दूर होते हैं।

ख) मुख मुद्रा

i) महामुद्रा

घेरण्ड संहिता में इसका वर्णन निम्नानुसार प्राप्त होता है –

पायुमूलं वामगुल्फे संपीडय दृढ़यत्नतः।
याम्यपादं प्रासार्याथ करोपात्तपदाङ्.गुति।।
कष्ठ संकोचनं कप्त्या भ्रुवोर्मध्यं निरीक्ष्येत्।
पूरकैर्वायुं सम्पूर्य महामुद्रा निगद्यते।।

चित्र 9.10: महामुद्रा

अर्थात

बाईं एड़ी से गुदा प्रदेश को दबाएं और दाहिने पैर को फैलाकर उसकी अंगुलियों को हाथ से पकड़े और कंठ को सिकोड़ कर भौंहों के मध्य में दृष्टि लगाएं, यह 'महामुद्रा' कहलाती है।

विधि

सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर दंडासन की अवस्था में बैठते हैं। इसके बाद बाएं पैर को घुटने से मोड़ते हुए, बाईं एड़ी को मूलभाग (गुदा प्रदेश) में रखते हैं। दाहिना पैर सीधा रहता है, फिर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर श्वास छोड़ते हुए आगे की ओर झुकते हैं

और दोनों हाथों से दाहिने पैर के पंजे को पकड़ लेते हैं। फिर सिर को थोड़ा पीछे की ओर झुकाते हुए धीरे–धीरे श्वास लेते हैं। ***कुम्भक का प्रयोग करते हैं।*** दृष्टि दोनों भौंहों के मध्य में स्थिर रहती है।

तत्पश्चात सिर नीचे करते हैं। दोनों हाथों को नीचे करते हैं। फिर दूसरे पैर को इसी क्रम से रखकर यह प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है।

लाभ

- यह चित्त को शांत करती है और मन की चंचलता को समाप्त करती है।
- यह मन को अर्न्तमुखी बनाती है।
- तंत्रिका तंत्र को संतुलित करती है।
- प्राण ऊर्जा को जाग्रत करती है।
- उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगियों का इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- शरीर शुद्धिकरण से पूर्ण इस महामुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

ii) विपरीतकरणी

घेरण्ड संहिता के अनुसार विपरीतकरणी मुद्रा की विधि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि –

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।
उर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता।।

अर्थात सिर भूमि में लगाकर दोनों हाथों का सहारा लेकर दोनों पावों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकें यही 'विपरीतकरणी मुद्रा' है।

विधि

सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं। पैर सीधे एवं मिले हुए रहेंगे। दोनों हाथों की हथेलियों को बगल में रखेंगे। शरीर शिथिल छोड़ देंगे। फिर श्वास भरते हुए दोनों पैरों को घुटने से मोड़े बिना एक साथ ऊपर उठायेंगे। फिर नितम्बों को ऊपर उठायेंगे। कमर से थोड़ी मुड़ी हुई पैर थोड़ा सिर की और झुके रहेंगे। पैर आंखें की दृष्टि की सीध में रहेंगे। कुम्भक लगाकर रखेंगे। तत्पश्चात श्वास छोड़ते हुए वापस सामान्य अवस्था में आयेंगे।

लाभ

- यह अभ्यास वृद्धावस्था को दूर करता है;
- पाचन संस्थान को दुरुस्त करता है;

- थायराइड की क्रियाशीलता में संतुलन आता है;
- मस्तिष्क में रक्त संचार ठीक प्रकार से होने लगता है।
- कब्ज या अस्वस्थ हों तब इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए;
- उच्च रक्तचाप, हृदय रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

iii) शाम्भवी मुद्रा

घेरण्ड संहिता में शाम्भवी मुद्रा का वर्णन निम्नानुसार है –

नेत्रान्तरं समालोक्य चात्मारामं निरीक्ष्येत्।
सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषंगोपिता।।

अर्थात – दृष्टि को दोनों भौंहों के मध्य स्थिर कर 'स्वयं' पर अर्थात अपनी आत्मा पर ध्यान करें, यही 'शाम्भवी मुद्रा' है।

विधि

किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर व मेरूदण्ड को सीधा करके बैठ जाते हैं। दोनों हाथ ज्ञान अथवा ध्यान मुद्रा में रख लेते है। आंखों को बंदकर शरीर को ढीला छोड़ देते हैं। चेहरे की संपूर्ण मांसपेशियों को शिथिल करते है। फिर आंख खोलकर सामने किसी बिंदु पर आंखों को एकाग्र करते हैं, तत्पश्चात आंखों की दृष्टि ऊपर भूमध्य में टिका देते हैं। श्वास लेकर कुम्भक का प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात् श्वास छोड़ते हुए आंखों को सामान्य अवस्था में लेकर आते हैं।

यह प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है।

लाभ

- मानसिक एकाग्रता का विकास होता है;
- आज्ञाचक्र के जागरण में सहायता मिलती है;
- मन और प्राण को संतुलित करता है।
- आंखें बहुत अधिक संवेदनशील होती है। अतः ज्यादा देर तक इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिन व्यक्तियों की आंखों का ऑपरेशन हुआ हो वो इसे न करें।

iv) काकी मुद्रा

कौवे के समान मुख की आकृति होने से इस मुद्रा को काकी मुद्रा कहा जाता है। इसका वर्णन घरेण्ड संहिता में निम्नानुसार किया गया है –

काकचन्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः।

काकी मुद्रा भवरैषां सर्वरोग बिनाशिनी।।

अर्थात् मुख को कौवे की चोंच के समान करके उसके द्वारा धीरे–धीरे वायु का पान करें। यह सब रोगों को नष्ट करने वाली काकी मुद्रा कहलाती है।

चित्र 9.11: काकी मुद्रा

विधि

सर्वप्रथम किसी भी सुविधाजनक ध्यानात्मक आसन में सिर एवं मेरूदण्ड सीधा करके बैठ जाते हैं। दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में रख लेते हैं और आंखें बंदकर शरीर को शिथिल करते हैं। तत्पश्चात आंखें खोलकर दृष्टि को नासिकाग्र पर केन्द्रित करते हैं। कौवे की चोंच के समान मुख की आकृति बनाते हैं फिर जिह्वा के सहारे धीरे–धीरे मुख द्वारा वायु का पान करते हैं। फिर कुम्भक का प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात नासिका से धीरे–धीरे श्वास छोड़ देते हैं। कुम्भक की अवस्था में आंखें बंद रहती है।

लाभ

- काकी मुद्रा से शरीर व मन में शीतलता का विकास होता है।
- मानसिक तनाव, चिंता कम होती है।
- समस्त प्रकार की बीमारियां दूर होती हैं।
- काकी मुद्रा का अभ्यास प्रदूषित वातावरण में नहीं करना चाहिए।
- ठंड के मौसम में भी इसका अभ्यास नहीं किया जाता है।

v) अश्विनी मुद्रा

घेरण्ड संहिता में अश्विनी मुद्रा का वर्णन निम्नानुसार किया गया है –

आकुंचयेद् गुदाद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।

सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोध कारिणी।।

अर्थात – गुदाद्वार का बार–बार संकोच और प्रसार करें यह अश्विनी मुद्रा कहलाती है।

विधि

किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर मेरूदंड सीधी करके बैठ जाते हैं। दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में रख लेते हैं। तत्पश्चात् गुदा को संकुचित करके पुनः उसको ढीला छोड़ देते हैं। गुदा को सुकोड़ने और फैलाने की क्रिया लयबद्धता के साथ की जाती है। प्रयत्न किया जाता है कि केवल गुदा द्वार का ही संकुचन होने चाहिए।

लाभ

- गुदा के स्नायुओं पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है;
- गुदा द्वार संबंधी रोग होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

गुदा नाल में व्रण होने अथवा बवासीर से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।

यूनिटगत प्रश्न 9.2

1. मुद्रा शब्द किस धातु से बना है?

   .....

   .....

   .....

2. योग में मुद्रा–बन्ध का प्रयोग किसके लिए किया जाता है?

   .....

   .....

   .....

3. उड्डियान बंध में उड्डियान का क्या अर्थ है?

   .....

   .....

   .....

टिप्पणी

4. किस मुद्रा में कौवे की चोंच के समान की आकृति बनाकर वायु का सेवन किया जाता है?

.....

.....

.....

9.3 ध्यान साधना

ध्यान–साधना भारतीय आध्यात्म का विशेष वैज्ञानिक पहलू है जिससे साधक अपने अंदर विद्यमान सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है। यह सब कुछ मन की शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मन की शक्तियों को अपने जीवन में उजागर करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं, वही ध्यान–साधना है। 'ध्यान की निर्विकार अवस्था है।' ध्यान मन की शक्तियों को नष्ट होने से बचाता है। परेशान व अशान्त मन को शांत करता है। मन की एकाग्रता बढ़ाता है। ध्यान सबके लिए समान रूप से उपयोगी है।

आइए, ध्यान साधना के निम्न पहलुओं को समझते हैं:

9.3.1 मंत्र

मंत्र विज्ञान बहुत प्राचीन है। मंत्रों का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों एवं वेदों में मिलता है। मंत्र का शाब्दिक अर्थ है – 'प्रकट ध्वनि'। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार मंत्र का अर्थ ध्वनि अथवा अनेक ध्वनियों का मेल होता है। ये ध्वनियाँ हमारे मंत्रद्रष्टा ऋषियों को गहन ध्यान की अवस्था में सुनाई पड़ी थीं। मंत्र की शक्ति शब्दों में नहीं बल्कि उनकी ध्वनि–तरंगों में छिपी रहती है। यह ध्वनि तरंगें मंत्रोच्चार के साथ अथवा जब मंत्र मन में आकार धारण करता है, उस समय उत्पन्न होती है।

व्यक्ति तथा उसकी आत्मा के बीच मंत्र एक प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति में निहित ब्रह्माण्डीय शक्ति तथा ज्ञान के स्रोत जागृत होते हैं। मंत्र की ध्वनि साधक के मन तथा आत्मा पर एक निश्चित प्रभाव छोड़ती है। प्रत्येक मंत्र साधक के भीतर एक विशिष्ट प्रतीक का निर्माण करता है।

जिस प्रकार आपका व्यक्तित्व आपकी बाह्य अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार मंत्र भी आपके आंतरिक व्यक्तित्व का परिचायक होता है। मंत्र के द्वारा ही हम अपने यथार्थ अतीन्द्रिय व्यक्तित्व को पा सकते हैं।

विभिन्न धर्मों में मंत्र विधान

विभिन्न धर्मों, भाषाओं तथा संस्कृतियों में हजारों मंत्रों का उल्लेख मिलता है। धर्मों की प्राचीनता तथा उपासना विधान के अनुकूल मंत्रों में शक्ति विद्यमान रहती है। इसी शक्ति को साधक, मंत्र जप साधना से प्राप्त करता है और स्वयं शक्ति संपन्न बन जाता है हिंदू, बौद्ध,

इस्लाम, सिख, ईसाई तथा पारसी आदि धर्मों में मंत्र पाए जाते हैं। कही–कहीं नाम सुमिरन से ही साधक शक्ति संपन्न बनता है। सभी धर्मों में मंत्र जप के अपने–अपने तौर–तरीके होते हैं; उन्हीं के अनुसार साधक को मंत्र साधना करनी चाहिए। मंत्र का अनुवाद नहीं हो सकता। यदि आप मंत्र के ध्वनि क्रम को अनुवाद द्वारा उलट–पलट दें तो मंत्र, मंत्र नहीं रह जाता। मंत्र के अनुवाद से भले ही आप सुंदर प्रार्थना बना लें परन्तु मंत्र का मौलिक स्वरूप समाप्त हो जाता है। जिस धर्म से मंत्र संबंधित है उसी धर्म की मान्यताओं के अनुसार ही मंत्र जप साधना करनी चाहिए इसी में साधक की भलाई है।

मंत्र शिक्षा

परंपरानुसार मंत्र, गुरु, माता अथवा मंत्र की आंतरिक अभिव्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। मंत्र कभी भी खरीदा या बेचा नहीं जाता। व्यक्तिगत मंत्र, गुरु या शिष्य के बीच दीक्षा के समय क्षणिक संपर्क द्वारा कभी भी प्रदान किया जा सकता है। शिष्यों के अनुसार दीक्षा प्रारूप गुरु अपनी योग्यतानुसार निश्चित करता है।

गुरु द्वारा दिया गया मंत्र निर्णायक होता है, अतः उसे असीम् श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। साधक का मन मंत्र द्वारा पूरी तरह प्रभावित होना चाहिए। चूंकि मंत्र पूर्णरूप से व्यक्तिगत होता है अतएव उसे गुप्त रखना चाहिए। यदि आपका मंत्र गुप्त रहेगा तो वह बहुत शक्तिशाली होगा। यह बात जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती है। धरती में कोई भी बीज बोने पर वह तभी अंकुरित होता है जब उसके ऊपर मिट्टी का एक आवरण होता है। यदि बीज को खुला छोड़ दिया जाए और उस पर सबकी दृष्टि पड़े तो वह कभी भी पौधा नहीं बन सकता।

जप विधि

मंत्र का जप विभिन्न तरीकों से किया जाता है।

- श्वास की धारा के साथ मंत्र को जोड़कर – इसमें श्वास के आरोह–अवरोह की चेतना के साथ मंत्र को दोहराया जाता है।
- मंत्र माला के सहारे जपते हैं।
- विभिन्न सूक्ष्म पंथों में चेतना के साथ मंत्र को जपते हैं।
- कुछ लोग भूमध्य में चेतना को स्थिर कर मंत्र का जप करते हैं।
- मंत्र आरोग्य प्राप्ति का एक सशक्त साधन होता है।

शारीरिक व्याधियों के क्षेत्र में कई निश्चित प्रभावशाली मंत्र है। इस क्षेत्र में किसी विशेष बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उपयुक्त मंत्र किसी ऐसे विशिष्ट व्यक्ति से प्राप्त करने चाहिए जिसे मंत्र विद्या तथा रोगोपचार का अच्छा ज्ञान हो।

टिप्पणी

मंत्र द्वारा शक्ति तथा नवजीवन की प्राप्ति का आधार उसकी ध्वनि, ध्वनि की आवृति, वेग तथा तापमान होता है। शिवजी का मंत्र वैराग्य की भावना को बढ़ाता है। आंतरिक आनंद तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति उदासीन की भावना में वृद्धि करता है।

'ऊँ' एक अत्यंत प्रचलित मंत्र है। कोई भी व्यक्ति किसी भी समय अथवा स्थान पर बिना किसी रोक–टोक के इसका जप कर सकता है। ऊँ के जप से मनुष्य अंतर्मुखी होने लगता है। समत्व की भावना का विकास होता है।

9.3.2 अजपा साधना

'अजपा जप' ध्यान का एक महत्वपूर्ण अभ्यास है जिसके द्वारा हम अपनी चेतना को विकसित तथा ग्रहणशील बना सकते हैं। अजपा जप (साधना) का दूसरा नाम 'स्वतः स्फूर्त चेतना' है, जिसका अर्थ अपने अंदर देखने से है।

जप में मंत्र का सतत स्मरण होता है, परन्तु जब बिना चेतन प्रयास के मंत्र का स्मरण मशीन की तरह चलता रहता है तो वह अजपा कहलाता है। ऐसा कहा जाता है कि अजपा जप हृदय से होता है जबकि जप मुख से होता है।

जो लोग बहुत अध्ययन तथा मानसिक कार्य करते हैं, वे ध्यान की इस विधि से बड़े लाभान्वित होते हैं, क्योंकि अजपा जप मानसिक श्रम तथा शारीरिक गतिविधियों के बीच स्वस्थ संतुलन स्थापित करता है। अध्ययन तथा मानसिक श्रम के कार्यों से मन अन्तर्मुखी होता है। अजपा साधना में व्यक्ति को अपनी मानसिकता के प्रति सचेत रहना पड़ता है।

अजपा साधना में अपनी सहज श्वास पर ध्यान देना चाहिए। आप प्रति मिनट 15 बार, प्रति घंटा 900 बार तथा चौबीस घंटों में 21600 बार श्वास लेते छोड़ते हैं, परन्तु इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया के प्रति जो जीवन की कुंजी है, उससे आप सर्वथा बेखबर रहते हैं।

अजपा जप के अभ्यास में साधक को श्वास के बदलते स्वरूपों को देखना होता है।

विधि

अजपा जप के अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था में श्वास को कंठ और नाभि के बीच देखते हैं। साधक प्राण शक्ति का प्रवाह मूल स्थान से भृकुटि (बिंदी का स्थान) तथा भृकुटि से मूल स्थान के बीच अनुभव करता है। उच्च अभ्यास में श्वास सामान्य से कुछ अधिक लंबी तथा धीमी रहती है। अजपा जप में प्राण प्रवाह के साथ कोई मंत्र भी प्रयुक्त हो सकता है। कुछ 'सोहं' तथा कुछ 'ऊँ' नाद के रूप में सुनते हैं। किसी और मंत्र के रूप में भी इसे सुनते हैं। वास्तव में कोई भी मंत्र अजपा साधना में लिया जा सकता है। परन्तु 'सोऽ' का व्यापक रूप से प्रयोग होता है, क्योंकि श्वास–प्रश्वास की ध्वनि का लय इससे मिलता–जुलता है। इसमें मंत्र को श्वास के साथ लयबद्ध किया जाता है। जब आप श्वास लेते हैं तो उसकी ध्वनि को ध्यानपूर्वक सुनें। यह 'सो' जैसी होती है और श्वास छोड़ते समय जो ध्वनि होती है वह 'हं'

जैसी लय में प्रतीत होती है। इस अभ्यास से शरीर की सभी नाड़ियाँ जिनसे प्राण शक्ति प्रवाहित होती है, वे शुद्ध होती हैं। इसमें थोड़ी कल्पना शक्ति लगाने की भी आवश्यकता है।

लाभ

जब श्वास में मंत्र जागृत होता है तो उससे पूरा शरीर आवेशित हो जाता है। नाड़ियों में संचित विषाक्त तत्व बाहर निकलते हैं तथा मानसिक अवरोध दूर होते हैं।

जप की सघन अवस्था में जब 'सुषुम्ना' तरंगित होती है तो 'स्व' की चेतना गतिशील हो उठती है। जब इड़ा तरंगित होती है तो मन सक्रिय होता है और जब पिंगला तरंगित होती है तो प्राण शक्ति सक्रिय होती है तथा समूचे शरीर में ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है। यहां तक कि उसका प्रवाह भौतिक शरीर के बाहर भी होने लगता है।

अजपा साधना में कुशलता प्राप्ति से प्रत्याहार, धारणा तथा एकाग्रता की प्राप्ति होती है। अजपा साधना में पूर्णता प्राप्त होने पर संस्कार क्षय हो जाते हैं तथा मन पूरी तरह एकाग्र हो जाता है। यहीं से ध्यान योग प्रारंभ होता है।

9.3.3 अन्तर्मौन

अन्तर्मौन का अर्थ **'अंदर की शांति'** से है। अन्तर्मौन योग का ही बुनियादी अभ्यास है। यह बौद्ध धर्म की साधना का प्रमुख अंग है। बौद्ध धर्म में इसे विपश्यना कहते हैं। अन्तर्मौन के अभ्यास से व्यक्ति अपना मानसिक प्रक्षालन कर सकता है। इसके बाद एकाग्रता की प्राप्ति सहज ढ़ंग से हो सकती है।

यदि हम स्वस्थ व्यक्तित्व की कामना करते हैं तो हमें अपने मन का आदर करना होगा। हमारे विचार भले ही शुभ अथवा अशुभ हों, हमें उन्हें स्वीकार करना होगा। हमेशा ध्यान रखिए, जब भी आप अन्तर्मौन का अभ्यास करते हैं, मन को एकाग्र करने की कोशिश मत कीजिए। उसकी हरकतों को निरपेक्ष भाव से देखिए। मन के सोचने वाले हिस्से को देखिए, उस हिस्से को भी देखिए जो आपके विचारों को नकारता है। इसे मन का अवलोकन कहते हैं। यदि अभ्यास के मध्य कोई व्यक्ति आता है, आसमान में आपके सिर पर से हवाई जहाज गुजरता है अथवा अन्य कोई बाधा उपस्थित होती है तो उसे तथा उससे होने वाली मानसिक प्रक्रिया को भी देखिए। अन्तर्मौन के अभ्यास में हम एक साथ अपने विचारों, दृश्यों, आवाज़ों, अनुभूतियों, अपने आसपास के लोगों तथा वस्तुओं के प्रति सजग रहते हैं।

टिप्पणी

अभ्यास विधि

प्रथम अभ्यास

इस अवस्था में अपनी एकाग्रता को बाहरी जगत से खींचकर मन के कार्यकलापों पर केन्द्रित किया जाता है। हम देखते हैं कि हमारा मन क्या सोचता है और अवचेतन में से उठने वाले विचारों तथा दृश्यों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया कैसी है? इसके अभ्यास से भय तथा तनाव दूर होते हैं। हम भूतकाल के अनुभवों से मुक्त हो जाते हैं तथा दमित इच्छाओं के विस्फोट को देखते हैं। इस अभ्यास को तब तक करना चाहिए जब तक आपका मन पर्याप्त रूप से शांत तथा परेशानियों से मुक्त नहीं हो जाता।

द्वितीय अभ्यास

इस अवस्था में मन में अपने आप उठने वाले विचारों को देखते हैं। जो विचार अधिक शक्तिशाली होते हैं, उनका विश्लेषण किया जाता है और फिर उन्हें हटा दिया जाता है। इस अभ्यास में व्यक्ति को स्वतः उठने वाली विचार तरंगों की प्रक्रिया के प्रति सजग रहना चाहिए। स्वेच्छा पूर्वक महत्वपूर्ण विचारों को सामने लाकर देखना तथा हटाना चाहिए। यदि आप इस अभ्यास को सफलतापूर्वक कर लेंगे तो आपका मन अवचेतन की अतल गहराइयों में उतरने में सक्षम होगा।

तृतीय अभ्यास

इस अभ्यास में मन पर्याप्त रूप से शांत होना चाहिए। विचार तो इस अवस्था में भी उठेंगे परन्तु वे इतने सशक्त नहीं होंगे कि आपके भीतर भावनात्मक उथल–पुथल उत्पन्न कर सकें। इस अवस्था में उठने वाले विचारों को दबाना उचित नहीं है। इस अभ्यास से आपका मन निर्विचार तथा प्रत्याहार की अवस्था में पहुँच सकता है।

चतुर्थ अभ्यास

अन्तर्मौन का अभ्यास पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, सुखासन अथवा शवासन में किया जाता है। इसे आराम से कुर्सी पर बैठकर या लेटकर भी कर सकते हैं। अन्तर्मौन के प्रारंभिक अभ्यास कहीं भी और कभी भी किए जा सकते हैं। अरुचिकर वातावरण में तथा कोलाहल के बीच मन को शान्त तथा स्थिर रखने के लिए अन्तर्मौन का अभ्यास किया जा सकता है।

अन्तर्मौन साधना का आदर्श समय रात्रि में सोने से पूर्व अथवा प्रातःकाल है।

9.3.4 स्वदर्शन

'स्वदर्शन' ध्यान साधना का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभ्यास है जिसका अर्थ है –स्वयं अपने अंदर दर्शन करना तथा एकाग्रचित होकर अपने में ही स्थिर हो जाना।

क्रिया विधि

सर्वप्रथम पद्मासन या सुखासन में बैठ जाइए। शरीर को सुखपूर्वक स्थिति में रखिए और मेरूदंड को सीधा कर लीजिए। आँखें बंद कर लीजिए। अपने शरीर को स्थिर रखिए तथा स्वयं को हर तरह के तनाव से मुक्त कर लीजिए।

आइए, अब आंतरिक भावना से अपने शरीर के बारे में विचार करें। हमारा यह शरीर पांच महाभूतों के मेल से बना है। (शरीर = पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + आकाश)। मैं पृथ्वी नहीं, पृथ्वी का साक्षी हूँ। मैं जल नहीं, जल का साक्षी हूँ। मैं अग्नि नहीं, अग्नि का साक्षी हूँ। मैं वायु नहीं, वायु का साक्षी हूँ। मैं आकाश नहीं, आकाश का साक्षी हूँ। मैं समस्त पंचमहाभूतों का साक्षी हूँ, मैं देख रहा हूँ। मैं शरीर में उनका अनुभव कर रहा हूँ।

हमारे शरीर में छह मनोशक्ति केन्द्र हैं। इन्हीं के मूल में पंचमहाभूतों की स्थिति है। इन केन्द्रों को योग–विज्ञान में चक्रों के नाम से जानते हैं:

1. **मूलाधार चक्र** –यह शरीर के नीचे आधार में गुदाद्वार से लगभग डेढ़ इंच ऊपर है। इस स्थान पर हम पृथ्वी तत्व की उपस्थिति का अनुभव करते हैं।
2. **स्वाधिष्ठान चक्र**– यह योनि का स्थान है, यहाँ हम जल तत्व की उपस्थिति का अनुभव करते हैं।

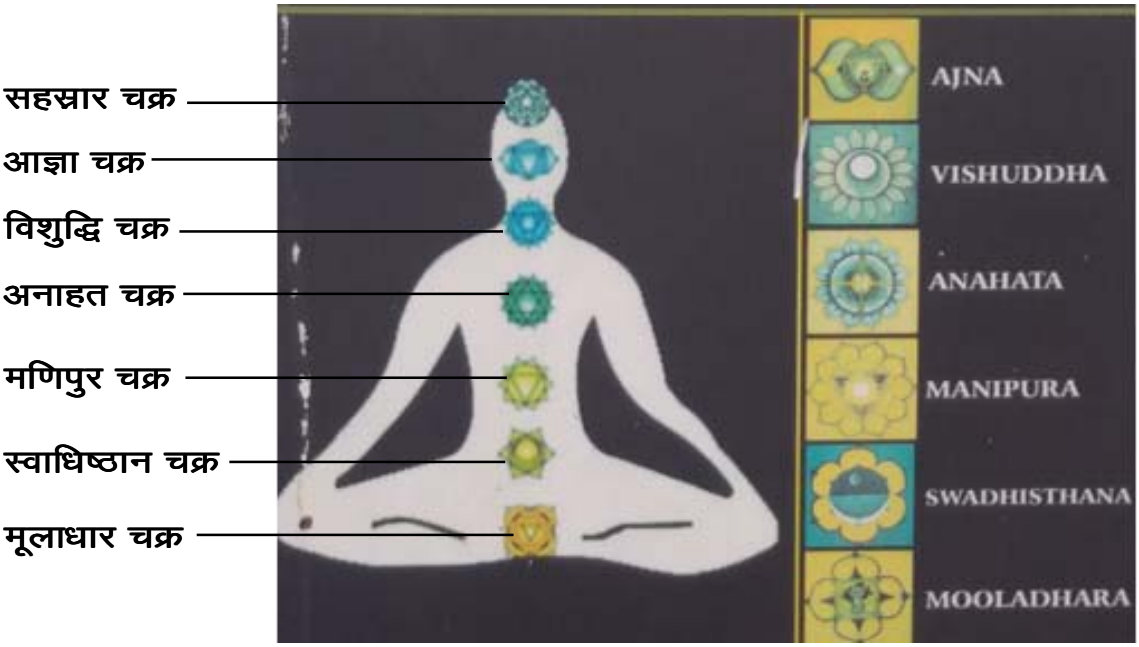

चित्र 9.12: चक्र

3. **मणिपुर चक्र–** नाभि स्थान के अंदर है। यहाँ अग्नि तत्व है और सभी नाड़ियों का केन्द्र है।

टिप्पणी

4. **अनाहत चक्र–** यह भावना का केन्द्र है, जो हृदय भाग के अंदर स्थित है।

   यह वायु तत्व का क्षेत्र है, जो प्राण शक्ति का ईंधन है। हमारे शरीर के रोम–रोम में प्राण शक्ति का संचार इसी स्थान से रक्त कणों के माध्यम से होता रहता है।

5. **विशुद्धि चक्र** – यह आकाश तत्व का प्रतीक है। यह कण्ठ के अंदर वाणी के स्थान पर स्थित है। इसी स्थान से स्वर निकलता है।

6. **आज्ञा चक्र –** यह भूमध्य (तिलक का स्थान) के सामने खोपड़ी के अंदर स्थित है। समस्त नाड़ियों के लिए आदेश यहीं से मिलता है। हमारे मस्तिष्क के उर्ध्व भाग में सहस्रार की स्थिति है। यह मंगलमय भगवान शिव का निर्मल स्थान है। इस स्थान से विभिन्न अनुभूतियों को प्राप्त करते हैं और परमानन्दित होते है।

पंचभूतों से निर्मित शरीर मेरा है किन्तु मैं शरीर नहीं हूँ बल्कि शरीर में निवास करने वाली दिव्य शक्ति का अंश हूँ। मेरा यह शरीर पूर्ण रूप से स्थिर हो चुका है। इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है।

यह पूर्ण रूप से शांत हो चुका है, शिथिल हो चुका है। मैं सत्–चित्त–आनंद स्वरुप इस शरीर में विराजमान हूँ। मेरा सूक्ष्म स्वरुप अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। मैं सत्–चित्त–आनंद रूप ब्रह्म का साक्षी हूँ। अनन्त हूँ और अविनाशी हूँ। ऐसे ही भाव से हमें अभिभूत होना चाहिए।

लाभ

शरीर को शान्ति–सुख मिलता है। शरीर पर पूरा नियंत्रण रहता है। मन एकाग्र होता है; सांसारिक मोह–माया से अलग रखने में हमारी मदद करता है।

यूनिटगत प्रश्न 9.3

1. मंत्र का शाब्दिक अर्थ क्या है?

   .....

   .....

   .....

2. ध्यान साधना से आप क्या समझते हैं?

   .....

   .....

   .....

3. स्वदर्शन से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

9.4 योग निद्रा

योग निद्रा योगियों की निद्रा है। इसमें मन की एकाग्रता द्वारा विश्राम की प्राप्ति होती है। योग निद्रा में साधक सोता नहीं है। जीवात्मा निरन्तर जागृत रहती है। योग निद्रा के अभ्यास से साधक अपने शरीर के एक–एक अंग का शिथिलीकरण करता है। शिथिलीकरण की इस क्रिया को योग निद्रा कहते हैं।

वास्तव में देखा जाए तो योगनिद्रा प्रत्याहार साधना का एक अंग है। इसमें समस्त इंद्रियों को उनके विषयों से खींचकर भीतर की ओर मोड़ा जाता है। एक घंटे की योगनिद्रा अभ्यास से मिलने वाला शारीरिक और मानसिक विश्राम चार घंटे की सामान्य निद्रा से कहीं अधिक लाभप्रद है।

शारीरिक स्थिति

योग निद्रा का अभ्यास समतल और शांत स्थान पर शवासन में करना चाहिए। फर्श पर कंबल या दरी बिछाकर योगनिद्रा का अभ्यास किया जाता है। ठंड तथा मच्छरों से बचने के लिए चादर से शरीर को अच्छी तरह ढक लेना चाहिए। योगनिद्रा की पूरी अवधि में नेत्र बंद रखने चाहिए। शरीर पूरी तरह शिथिल रखना तथा किसी भी परिस्थिति में कोई भी शारीरिक हलचल नहीं होनी चाहिए। पूर्ण आराम के साथ, शवासन में लेटकर योगनिद्रा के लिए स्वयं को तैयार कीजिए।

चित्र 9.13 : शवासन में योग निद्रा

टिप्पणी

शिथिलीकरण

एक व्यवस्थित क्रम से शरीर के प्रत्येक अंग, शरीर के प्रत्येक जोड़, मांस पेशी, रक्त–संस्थान तथा श्वसन–संस्थान, मस्तिष्क, चेहरा, आँखें आदि सभी को बारी–बारी से शिथिल करते जाइए। अपने भाव को अपने ही अंदर इस प्रकार प्रकट कीजिए – मेरे दाहिने पैर की एड़ी तथा आस–पास के हिस्से शिथिल हो रहे हैं, शिथिल हो रहे हैं, शिथिल हो चुके हैं। इसी प्रकार क्रम से एक–एक कर शरीर के सभी अंगों को शिथिल कीजिए।

मानस दर्शन

शरीर के शिथिल होने के साथ–साथ मन भी पूरी तरह शिथिल और शांत हो जाता है। शांत होने के उपरांत भी मन को व्यस्त रखना है। उसे एक क्रम से शरीर के विभिन्न अंगों पर ले जाइए। उसे श्वास–प्रश्वास का साक्षी बनाइए। भिन्न–भिन्न संवेदनाओं का अनुभव कराइये। तरह–तरह की वस्तुओं तथा काल्पनिक प्रतिमूर्तियों का मानस दर्शन कराइए।

आपको अभ्यास की पूरी अवधि में सोना नहीं है। सदा चैतन्य रहना है।

संकल्प

योगनिद्रा के प्रारंभ में एक संकल्प लिया जाता है जो आपके जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास के साथ इस संकल्प को तीन बार दोहराइए। आपका संकल्प परम कल्याणकारी हो, सुख–शान्ति प्रदान करने वाला हो और धरती माता की प्रतिष्ठा के लिए हो।

योग निद्रा में लिया गया संकल्प हमारे अवचेतन मन की गहराइयों में चला जाता है और समय आने पर निश्चित रुप से वास्तविकता में परिणत होने लगता है।

क्रिया विधि

1. शवासन में गहरी श्वास लीजिए व उसके साथ–साथ पूरे शरीर में शान्ति का अनुभव कीजिए। श्वास छोड़ते समय शरीर में शिथिलता का अनुभव कीजिए।

2. जैसे–जैसे शरीर के अलग–अलग अंगों का नाम लिया जाए, अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों पर घुमाइए। ध्यान रहे कि शरीर में किसी प्रकार की कोई अस्थिरता या तनाव ना हो।

3. अपने ध्यान को दाहिने पैर के अंगूठे पर ले जाइए, दूसरी अंगुली, तीसरी, चौथी, पांचवी, पंजा, तलुआ, एढ़ी, टखना, पिंडली, घुटना, जांघ आदि अंगों पर क्रम से चेतना को घुमाइए।

4. इसी प्रकार बायें पैर के साथ कीजिए। इसके बाद दाहिना हाथ तथा बायां हाथ के भी हिस्सों पर अपनी चेतना को ले जाइए।

5. हाथ–पैर के बाद अपनी चेतना को धड़ के हिस्सों पर ले जाइए तथा इसके बाद संपूर्ण मुख मंडल पर चेतना को घुमाइए। इसे देह दर्शन अथवा न्यास की क्रिया भी कहते हैं।

6. शरीर दर्शन के उपरांत अपने प्राण प्रवाह को रग–रग में अनुभव कीजिए तथा शरीर के कमजोर व रोग ग्रस्त हिस्से पर प्राण प्रवाह के स्पन्दन को अनुभव कीजिए तथा मन को सुझाव दीजिए कि रूग्ण अंग स्वस्थ हो रहा है।

7. इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों पर एक से अधिक बार चेतना को घुमाइए, साथ ही शरीर को अधिक से अधिक विश्राम तथा शिथिलता मिलेगी।

8. मानसिक रुप से श्वास के प्रति सचेत रहिए। उसे उल्टी गिनती में 54 से 0 (शून्य) तक गणना कीजिए। मैं जानता हूँ कि मैं श्वास ले रहा हूँ। 54 मैं जानता हूँ कि मैं श्वास छोड़ रहा हूँ 53 इस प्रकार 54 से 0 तक गणना कीजिए। यदि बीच में श्वास गिनने में भूल हो जाए तो पुनः 54 से ही गिनती प्रारंभ कीजिए। सोइए नहीं गणना जारी रखिए।

9. अपनी मन की आँखों से प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखिए। जैसे आप ऊँचे पर्वत, गिरते हुए झरने को देखते हैं। समुद्र में उठने वाली लहरों को देखते हैं। प्रातःकाल में उगते हुए सूरज को देखें। किसी दिव्य मंदिर के दर्शन कीजिए। आप जिस पूजा विधान को मानते हैं उसके रमणीय स्थल तथा होने वाली प्रार्थना में मानसिक रुप से सम्मिलित हो जाइए। आप मुस्लिम हैं तो मस्जिद में नमाज के दृश्य को देखिए। आप सिख हैं तो गुरुद्वारे में अपनी अरदास कीजिए। ईसाई हैं तो चर्च में प्रार्थना कीजिए। आप जो दृश्य स्वीकार करते हैं उसमें भावनात्मक रुप से सम्मिलित रहिए।

10. इन सब दृश्यों में से गुजरते हुए आप पुनः शवासन में पड़े हुए अपने शरीर को देखिए। तीव्रता से शरीर के अंगों में पुनः क्रम से अपनी चेतना को घुमाइए। अब फिर से अपने शरीर में प्राण प्रवाह का अनुभव कीजिए और संपूर्ण शरीर को चैतन्य कर लीजिए।

11. अब आप अनुभव कीजिए कि आपका शरीर फूल के समान हल्का हो चुका है। मेरे चारों ओर सुगन्धि फैली हुई है। मैं अब दिव्य तरंगों से अभिभूत हो चुका हूँ। मैं पूर्ण शान्त हूँ। मैं आनन्दित हूँ।

अब अंत में दाहिने करवट जाइए और उठकर बैठ जाइए। अभी आँखें नहीं खोलेंगे। पीठ सीधा रखते हुए हाथ जोड़कर अपने ईष्ट की प्रार्थना कीजिए और अपने को नई चेतना के साथ शुभ कर्मों के लिए तैयार रखिए।

1. योग निद्रा के अभ्यास को किसी सक्षम योग शिक्षक के निर्देशन में ही करना चाहिए।
2. योग निद्रा का अभ्यास करते समय लगातार सजग रहना चाहिए।
3. सोना नहीं चाहिए।

टिप्पणी

यूनिटगत प्रश्न 9.4

1. योग निद्रा क्या है? इसे क्यों करना चाहिए?

   .....

   .....

2. शरीर के विभिन्न अंगों में चेतना को कैसे ले जाएंगे।

   .....

   .....

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

अष्टांग योग का चौथा चरण है 'प्राणायाम'। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'श्वास और प्रश्वास' की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। जब श्वास प्रश्वास अनुशासित होकर निग्रह की स्थिति में पहुंचता है, तब प्राणायाम की पूर्णताः होती है। सरल शब्दों में प्राणायाम को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ''प्राण एवं अपान का योग प्राणायाम है अर्थात श्वास–प्रश्वास पर नियमन एवं नियंत्रण प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम शब्द का अर्थ है – प्राणिक ऊर्जाओं का नियंत्रण। साधना के प्राचीन ग्रंथ घेरण्ड संहिता में प्राणायाम के संबंध में लिखा है –

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्छा केवली, चाष्टकुम्भ काः।। के.स.

अर्थात आठ प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख मिलता है। कुछ योग विद्वानों ने इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है–

1. नाड़ी शोधन प्राणायाम
2. सूर्यभेदी प्राणायाम
3. उज्जाई प्राणायाम
4. सीतकारी प्राणायाम
5. शीतली प्राणायाम
6. भस्त्रिका प्राणायाम
7. भ्रामरी प्राणायाम
8. प्लावनी प्राणायाम

आसन प्राणायाम से भी ज्यादा प्रभावी अभ्यास मुद्रा–बंध का माना गया है। मुद्रा शब्द मुद् धातु से निर्मित है जिसका अर्थ प्रसन्नता होता है। मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है। योग में मुद्रा और बंध का प्रयोग प्राणऊर्जा के नियमन के लिए किया जाता है।

ध्यान–साधना भारतीय आध्यात्म का विशेष वैज्ञानिक पहलू है जिससे साधक अपने अंदर विद्यमान सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है। यह सब कुछ मन की शक्तियों से सम्पन्न हो

सकता है। मन की शक्तियों को अपने जीवन में प्रकट करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं, वही ध्यान–साधना है। 'ध्यान अंतर मन की निर्विकार अवस्था है।'

योग निद्रा योगियों की निद्रा है। इसमें मन की एकाग्रता द्वारा विश्राम की प्राप्ति होती है। योग निद्रा में साधक सोता नहीं है। जीवात्मा निरन्तर जागृत रहती है। योग निद्रा के अभ्यास से साधक अपने शरीर के एक–एक अंग का शिथिलीकरण करता है। शिथिलीकरण की इस क्रिया को योग निद्रा कहते हैं।

यूनिटांत प्रश्न

1. प्राणायाम से आपका क्या अभिप्राय है? ये कितने प्रकार के होते हैं? किन्हीं दो का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
2. मुद्रा–बंध से क्या तात्पर्य है? किन्हीं दो मुद्रा–बंध पर संक्षिप्त में लिखिए।
3. ध्यान साधना से आप क्या समझते हैं? ध्यान साधना पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

1. ***"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम"*** अर्थात् प्राणायाम द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है।
2. प्राण तथा अपान को संयुक्त करना तथा इस संयुक्त प्राण–अपान को धीरे–धीरे मस्तक की ओर ले जाना।
3. (क) इड़ा, (ख) पिंगला, (ग) सुषिम्ना
4. सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा

9.2

1) मुद्रा शब्द मुद् धातु से निर्मित है।
2) प्राण ऊर्जा के नियमन के लिए।
3) उड़ना।
4) काकी मुद्रा में।

9.3

1) 'प्रकट ध्वनि'।
2) मन की शक्तियों को अपने जीवन में उजागर करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं वह ध्यान साधना कहलाती है।
3) स्वयं अपने अंदर दर्शन करना तथा एकाग्रचित होकर अपने में ही स्थिर हो जाना।

9.4

1) योग निद्रा प्रत्याहार साधना का एक अंग है। इसमें साधक सोता नहीं है। मन की एकाग्रता द्वारा विश्राम की प्राप्ति करता है।
2) जैसे–जैसे शरीर के अंगों का नाम लिया, अपनी चेतना को उन पर ले जाइए।

10

योग द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन (सभी के लिए योग)

स्वास्थ्य ही समग्र सुखों को प्राप्त करने का आधार है। मनुष्य जीवन विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बालपन, किशोरावस्था, व्यस्कावस्था और अंत में वृद्धावस्था आती है। प्रत्येक अवस्था में स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए ध्यान रखना आवश्यक है।

स्वास्थ्य संवर्धन करना प्रत्येक मनुष्य की जिम्मेदारी है। अपने दैनिक जीवन में योग की विभिन्न तकनीकों जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि को सम्मिलित करके समग्र स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

क्या आप जानते हैं कि प्रत्येक आयु और अवस्था में समग्र रुप से स्वस्थ रहना, वर्तमान में चुनौती से कम नहीं है? शरीर, मन, तथा आत्मा के स्तर पर हम स्वस्थ होने चाहिए और इसके लिए जीवन शैली इस प्रकार निर्धारित करनी होगी, जिससे हम स्वस्थ रहकर जीवन के आनंद का उपभोग कर सकें। प्रत्येक अवस्था में स्वस्थ रहने के लिए यौगिक अभ्यास करना बहुत आवश्यक है। लेकिन कौन से योगाभ्यास किये जाएं यह जानना अति आवश्यक है?

इस यूनिट में आप यह जानेंगे कि बच्चों, व्यस्कों, वृद्धों और महिलाओं को किस प्रकार के यौगिक अभ्यास (आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि) कराए जाने चाहिए?

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- समग्र स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों को समझा सकेंगे;
- बच्चों, किशोरों, व्यस्कों, वृद्धों एवं महिलाओं के लिए आवश्यक यौगिक क्रियाओं के विषय में वर्णन कर सकेंगे;
- कौन–कौन से यौगिक अभ्यास सूक्ष्मक्रियाएं, आसन, प्राणायाम आदि आयु एवं अवस्थानुसार कराये जा सकते हैं, का उल्लेख कर सकेंगे।

10.1 समग्र स्वास्थ्य के आयाम (योग द्वारा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य)

जिनका शरीर व्याधियों से पीड़ित नहीं है, वही स्वस्थ है, यह अवधारणा सत्य नहीं है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि ***'शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न, इन्द्रियां नियंत्रित और सभी दोष, धातुएं, मल व अग्नि सम भाव में हों।'***

समदोषः समग्निश्चः समधातु मलक्रिया।
प्रसन्नात्मेद्रियमनः स्वस्थ्यतिभिधीयते।। (सु0सं0 आयुर्वेद में)

आधुनिक युग में ''विश्व स्वास्थ्य संगठन भी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य को ही पूर्ण स्वास्थ्य मानता है।'' यदि इस तरह देखा जाये तो कोई भी व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं है; परन्तु इस ओर प्रयास किया जा सकता है। योग–अभ्यास की कुछ चुनी हुई प्रक्रिया यदि नियमित रुप से की जाए तो इस ओर सफलता पाई जा सकती है। जिनका शरीर स्वस्थ है उन्हें मानसिक व भावनात्मक संतुलन और आध्यात्मिक उत्थान हेतु प्रयास करने चाहिए। यह प्रयास हर व्यक्ति को अपने शरीर की प्रकृति व प्रवृति को ध्यान में रखकर करने चाहिए।

10.2 बच्चों एवं किशोरों के लिए योग

बच्चों में चंचलता व अस्थिरता बहुत अधिक हेाती है। इस अवस्था में प्राण ऊर्जा भी बहुत अधिक होती है। अतः बच्चों की प्राण ऊर्जा का सुनियोजन हो सके, इस दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए। यदि उनकी रुचि के अनुरुप ही दैनिक क्रियाऐं व कार्य हों, तो उनके हठी स्वभाव तथा अनुशासनहीनता की प्रवृति बदली जा सकती है। बच्चों में यूनिट भूलने और शीघ्र स्मरण न होने की समस्या तो सामान्य रूप में पायी जाती है। योग के कुछ चुने हुए अभ्यास इन बच्चों की सभी समस्याओं का हल आसानी से कर सकते हैं। बच्चों में एकाग्रता, स्मृति और रचनात्मक क्षमता का विकास योग के माध्यम से किया जा सकता है।

चित्र 10.1: बच्चों के लिए योग

किशोरों की समस्या भी बच्चों से मिलती–जुलती ही होती है। उनके अंदर हो रहे परिवर्तन को संतुलित करना आवश्यक होता है। उनकी व्यावहारिकता एवं मानसिकता में अचानक बदलाव का कारण, उनके शरीर में हो रहे हॉर्मोन्स का स्राव है। यदि उनकी रुचि के अनुरूप कुछ योगाभ्यास, दैनिक कार्य और नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम हों तो परिपक्वता आने में सहायता मिलती है और उनके हठी व आक्रामक स्वभाव में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है। योग के माध्यम से उन्हें अनुशासनप्रिय बनाया जा सकता है। कौन–कौन से योगाभ्यास उन्हें कराये जा सकते हैं, आइए चर्चा करते हैं –

अभ्यास :

आसन : ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन (5–5 चक्र), सूर्य नमस्कार (5 चक्र), शवासन 15 मिनट। हलासन, पश्चिमोत्तानासन, मत्स्यासन, कुक्कुटासन, नटराजासन, भुजंगाासन, शलभासन, शशांकासन सर्वांगासन, धनुरासन, पद्मासन, शवासन पुनः 5 मिनट।

प्राणायाम : अनुलोम–विलोम, नाड़ीशोधन, शीतली, भ्रामरी, भस्त्रिका।

क्रियाएं : जलनेति, कपालभाति (25से 50 चक्र नियमित), वमन (सप्ताह में 1 बार), त्राटक।

विशेष : योगनिद्रा, गायत्री मंत्र जाप।

यूनिटगत प्रश्न 10.1

1. समग्र स्वास्थ्य के चार आयाम कौन–कौन से हैं?

.....

.....

2. आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा लिखिए।

.....

.....

3. बच्चों व किशोरों के लिए कौन–कौन से आसन कराये जा सकते हैं। किन्हीं पांच के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

10.3 युवाओं के लिए योगाभ्यास

योग का उद्देश्य अपने वास्तविक स्वरुप को जानना है। योग के अभ्यास से रोगों में लाभ प्राप्त होता है, जो एक प्रकार से अतिरिक्त लाभ है। अगर स्वस्थ व्यक्ति योग की तकनीकों को अपनी दैनिक जीवनचर्या में सम्मिलित कर लेता है तो उसकी क्षमताओं में अभिवृद्धि होती है। ***'मनुष्य की भावनात्मक, बौद्धिक, आध्यात्मिक क्षमता के विकास के लिए योगाभ्यास एकमात्र राजमार्ग है।'*** योग अभ्यास व्यक्ति की सोई हुई क्षमता को जाग्रत करता है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रुप से स्वस्थ रहने के लिए युवाओं को योगाभ्यास बहुत आवश्यक है।

'जीवेम् शरद् शतम' की कल्पना हमारे ऋषि–मुनियों ने की है, हम स्वस्थ रहकर अपनी आयु के सौ वर्ष पूर्ण करें। अपनी संपूर्ण आयु की अवस्था में स्वस्थ रहे और इसके लिए नियमित रुप से योगाभ्यास करने चाहिए।

चित्र 10.2: युवाओं के लिए योगाभ्यास

टिप्पणी

आइए, जानें कौन–कौन से योगाभ्यास युवाओं को स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक हैं।

अभ्यास : युवाओं को सभी प्रकार के योगाभ्यास कराये जा सकते है। फिर भी यदि कोई युवा किसी प्रकार के रोग से ग्रसित है तो इस बात को ध्यान में रखते हुए योगाभ्यास कराया जाए। यह जान लेना चाहिए कि किसी को कोई शारीरिक समस्या तो नहीं है।

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं एवं आसन

आसन : संधि संचालन के अभ्यास (श्वास–प्रश्वास के तालमेल के साथ), ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्र आसन (5–5 चक्र), सूर्य नमस्कार (5चक्र), शवासन 15 मिनट। हलासन, पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, पद्मासन, सिद्धासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन (क्षमतानुसार) शवासन पुनः 5 मिनट। अंत में शवासन कराना न भूलें।

प्राणायाम : नाड़ीशोधन, शीतली, भ्रामरी और भस्त्रिका।

क्रियाएं : जलनेति (सप्ताह में 1 बार) परन्तु ठंड के मौसम में नहीं करनी चाहिए, कपालभाति (25से 50 चक्र नियमित), वमन (सप्ताह में 1 बार), लघु–शंख प्रक्षालन (महीने में 1 बार)।

विशेष : योगनिद्रा, सोऽहं साधना और गायत्री मंत्र जाप।

अन्य निर्देश

- स्वस्थ रहने के लिए नियमित दिनचर्या, उचित खान–पान (मिताहार) और योगाभ्यास की नियमितता बनाए रखें।
- सुबह–शाम टहलने का क्रम बनाएं, तनाव मुक्त रहने का प्रयास करें।

यूनिटगत प्रश्न 10.2

1. युवाओं को स्वस्थ रहने के लिए किन्हीं पांच यौगिक आसनों का नाम बताइए।

   .....

   .....

   .....

2. आयु के विषय में हमारे ऋषि–मुनियों ने क्या कल्पना की है?

   .....

   .....

   .....

10.4 महिलाओं के लिए योगाभ्यास

समाज–परिवार एवं राष्ट्र में नारी की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। एक स्वस्थ नारी ही स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ परिवार तथा सभ्य समाज के निर्माण में योगदान दे सकती है। घर के अंदर और बाहर दोनों तरफ की जिम्मेदारी निभाने में महिलाएं अपने स्वास्थ्य की चिंता बहुत कम ही करती हैं। आज के समाज में महिलाओं ने अपने स्वास्थ्य के प्रति थोड़ी सजगता दिखाई है। आज तेजी से जिम, व्यायाम शाला, हेल्थ–क्लब आदि केन्द्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। थोड़ी–सी आहार–विहार की नियमितता तथा योगाभ्यास का जीवन में समावेश, स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मानसिकता देने में सक्षम है। जागरूक महिलाओं को परिवार और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझते हुए इस ओर प्रयास करना ही चाहिए।

चित्र 10.3: महिलाओं के लिए योगाभ्यास

आइए, महिलाओं को कराये जाने वाले योगाभ्यास के बारे में जानते हैं:

अभ्यास : महिलाओं की शारीरिक क्षमता एवं शरीर के लचीलेपन को ध्यान में रखते हुए धीरे–धीरे योगाभ्यास कराये जाते हैं। निम्न ***यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, प्राणायाम व ध्यान*** महिलाओं को कराये जा सकते हैं:

आसन : संधि संचालन श्वास–प्रश्वास के तालमेल के साथ, सूर्यनमस्कार (3–4 चक्र), शवासन 15 मिनट। उदर संचालन एवं शक्ति संवर्धन के अभ्यास, विपरीतकरणी आसन, शवासन पुनः 5 मिनट, भुजंगासन, शलभासन, ताड़ासन आदि।

प्राणायाम : अनुलोम–विलोम, नाड़ीशोधन, उज्जायी, और भ्रामरी।

क्रियाएं : जलनेति (सप्ताह में 1 बार), कपालभाति (25 से 50 चक्र नियमित), वमन (सप्ताह में 1 बार), लघु–शंखप्रक्षालन (महीने में 1 बार)।

टिप्पणी

विशेष : योगनिद्रा, स्वदर्शन, गायत्री मंत्र या ओम मन्त्रोच्चारण(चैन्टिंग)।

अन्य निर्देश

- सुबह सूर्योदय से पहले शय्या त्यागें;
- पेट को स्वस्थ रखने के लिए ऊषापान एवं प्रातः भ्रमण का क्रम बनाएं;
- दिन भर कुछ–कुछ खाने की आदत त्यागें, मसालों एवं बासी भोजन की उपेक्षा करें;
- मन को कुविचारों से बचाए रखने के लिए, स्वाध्याय या सत्संग–भजन आदि करें।

मासिक धर्म के समय आसनों के अभ्यास नहीं कराने चाहिए। अपनी क्षमतानुसार योगाभ्यास को संपन्न करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 10.3

1. नारी का स्वस्थ रहना क्यों आवश्यक है?

   .....

   .....

   .....

2. महिलाओं को कब योगाभ्यास नहीं करने चाहिए?

   .....

   .....

   .....

10.5 वृद्धों के लिए योगाभ्यास

आधुनिक जीवन शैली, यान्त्रिकता एवं उपयोगितावादी मानसिकता ने हमारे यहाँ आदरणीय माने जाने वाले समाज के बुर्जुगों की उपेक्षा सी कर दी है। उनकी उपलब्धियों को भुला दिया है, तथा उन्हें बेकार समझा जाने लगा है। शारीरिक रुप से वे इतने दुर्बल नहीं हैं, जितने मानसिक रुप से हो जाते हैं। जब उनके सम्मान को ठेस पहुंचती है तो उन्हें भी अपनी जिन्दगी बोझ लगने लगती है, जबकि वे अपने अनुभव का लाभ, परिवार व समाज को दे सकते हैं। ऐसे में योग उनके सोचने, समझने और समभावी बनाने में सहायता करता है, साथ ही कमजोर हो रहे स्नायु एवं जोड़ों को सबल बनाने की दिशा में कार्य करता है।

अभ्यास : वृद्धों के लिए योगाभ्यास उनकी मानसिक व शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए कराये जाने चाहिए। वृद्धों को कौन–कौन से अभ्यास कराये जा सकते हैं आइए, जानते हैं–

आसन : संधि संचालन के अभ्यास, पूरी तन्मयता से प्राणिक प्रवाह का अनुभव करते हुए सूर्य नमस्कार (यदि संभव हो तो 1 से 4 चक्र), शवासन या मकरासन 15 मिनट। मार्जरी आसन (कैट पोज़), वक्रासन, वज्रासन, शशांकासन, भुजंगासन, शलभासन, ताड़ासन, तिर्यकताड़ासन, कटिचक्रासन।

धीरे –धीरे ध्यानात्मकासनों का अभ्यास भी उपयोगी है।

प्राणायाम : नाड़ीशोधन, भ्रामरी, उज्जायी, अनुलोम–विलोम और सूर्यभेदी प्राणायाम।

क्रियाएं : जलनेति, कपालभाति (25से 50 चक्र नियमित), वमन (सप्ताह में 1 बार)।

विशेष : योगनिद्रा, गायत्री मंत्र जप, भजन–कीर्तन आदि।

अन्य सुझाव –

- नियमित रूप से प्रातः व सांय भ्रमण का सुझाव दीजिए;
- समभाव विकसित करने के लिए स्वाध्याय–सत्संग की सलाह दीजिए;
- अकेलापन हटाने के लिए, किसी छोटे–मोटे कार्य में लगे रहने की प्रेरणा दीजिए;
- रात्रि सोने से पहले भ्रामरी प्राणायाम व गायत्री मंत्र जप का क्रम बनाएं रखें, ऐसा विचार दीजिए;
- स्वाध्याय हेतु सद्ग्रंथों का पठन–यूनिटन नियमित रुप से करने का विचार दीजिए।

यूनिटगत प्रश्न 10.4

1. वृद्धों को कराये जाने वाले दो प्राणायाम के नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

2. वृद्धों के लिए विशेष रूप से कराये जाने वाले अभ्यासों का सुझाव दीजिए।

.....

.....

.....

.....

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- स्वास्थ्य ही समग्र सुखों को प्राप्त करने का आधार है। मनुष्य जीवन विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बालपन, किशोरावस्था, व्यस्कावस्था और अंत में वृद्धावस्था आती है। प्रत्येक अवस्था में स्वास्थ्य को बनाए रखना आवश्यक है।
- स्वास्थ्य संबर्धन प्रत्येक मनुष्य की जिम्मेदारी है जिसे योग की विभिन्न तकनीकों जैसे आसन, प्राणायाम और ध्यान आदि को सम्मिलित कर प्राप्त किया जा सकता है।
- प्रत्येक आयु व अवस्था में यौगिक क्रियाओं को किया जा सकता हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि सभी यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, आसन, प्राणायाम आदि को सभी अवस्था या आयु के लोग कर सकते है। अतः इस बात को ध्यान में रखते हुए, आयु व अवस्था के अनुसार योग कराना परम आवश्यक है।
- बच्चों, किशोरों, युवाओं, महिलाओं और वृद्धों को कराये जाने वाले योगाभ्यास को सीखा।

यूनिटांत प्रश्न

1. 'सभी के लिए योग' तथ्य की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा का महत्व बताते हुए विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. युवाओं के समग्र स्वास्थ्य हेतु यौगिक विधियों का सुझाव लिखिए।
4. महिलाओं के लिए योग क्यों आवश्यक है, और कौन–कौन से योगाभ्यास कराये जाने चाहिए?

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक
2. जिस व्यक्ति के दोष, अग्नि, धातु और मलक्रिया में साम्यता हो और इन्द्रिय, मन और आत्मा प्रसन्नता के भाव में हो, उसे स्वास्थ्य कहते हैं।
3. ताड़ासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, भुंजगासन, शलभासन।

10.2

1. ताड़ासन, हलासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, सूर्यनमस्कार
2. जीवेम् शरद् शतम' हम स्वस्थ रहकर आयु के 100 वर्ष पूरे करें।

10.3

1. नारी का स्वस्थ होना इसीलिए आवश्यक है क्योंकि एक स्वस्थ नारी ही स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ परिवार एवं सभ्य समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।
2. महिलाओं को मासिक धर्म के दौरान योगाभ्यास नहीं करने चाहिए।

10.4

1. नाड़ीशोधन, भ्रामरी
2. योगनिद्रा, भजन कीर्तिन, जप